88

जनवरी-जून, 2025

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

ISSN 0974-0066
Peer-reviewed biannual Research Journal
(अंक-88, जनवरी-जून, 2025)

संरक्षक
प्रो. यशवंत सिंह ठाकुर
कुलपति

प्रधान सम्पादक
प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव

सम्पादक
डॉ. अनिल कुमार तिवारी
डॉ. विवेक जायसवाल
डॉ. वंदना राजोरिया
डॉ. संजय शर्मा
डॉ. बबीता यादव

प्रबंध सम्पादक
अभिषेक सक्सेना

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर (मध्यप्रदेश)-470003

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

अंक-88, जनवरी-जून, 2025
ISSN 0974-0066 (पूर्व-समीक्षित अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका)
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

प्रकाशित रचनाओं के अभिमत से डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय , सागर या सम्पादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है तथा यहाँ प्रकाशित आलेखों की 'प्लेजिरिज्म' (Plagiarism) सम्बन्धी शुचिता की जिम्मेदारी लेखकों की है।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार:
मध्य भारती
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर 470003 (म.प्र.)
ई-मेल : madhyabharti_ss@dhsgsu.edu.in

सम्पादकीय परामर्श मण्डल

- प्रो. दिवाकर सिंह राजपूत, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- प्रो. नागेश दुबे, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- प्रो. अशोक अहिरवार, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- प्रो. डी.के. नेमा, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- प्रो. अनुपमा कौशिक, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- प्रो. राजेन्द्र यादव, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

पूर्व समीक्षित मंडल (Peer-review Board)

- प्रो. मुकेश कुमार, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार
- प्रो. नीता एम. खांडपेकर, इतिहास विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई
- प्रो. रमेश प्रसाद पाठक, शिक्षाशास्त्र विभाग, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- प्रो. अरविंद कुमार मिश्रा, जाकिर हुसैन शैक्षिक अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- प्रो. बंदना झा, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- प्रो. प्रद्योत रंजन जेना, मानविकी, सामाजिक विज्ञान एवं प्रबंधन स्कूल, राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मैंगलोर
- प्रो. एल. विजय, दर्शनशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम
- प्रो. सुरजीत भट्टाचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई
- डॉ. ज्ञानेश कुमार तिवारी, मनोविज्ञान विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल
- डॉ. संदीप कुमार तिवारी, अर्थशास्त्र विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब
- डॉ. सुभासिस साहू, समाजशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- डॉ. सुरेंद्र कुमार यादव, स्कूल ऑफ लिबरल आर्ट्स, आईएमएस, यूनिसन यूनिवर्सिटी, देहरादून

अनुक्रम

भौतिकवाद बनाम अध्यात्मवाद 7
किरण आर्या

भारत राष्ट्र : परिकल्पना और भारतबोध के आयाम 12
संजय कुमार

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में अक्षयनीवि की अवधारणा 19
पूनम, जिनेन्द्र जैन

रामचरितमानस में भक्ति : क्या पंचम पुरुषार्थ है? 27
सत्यनारायण देवलिया

गिरमिटिया अनुबंध: 41
श्रम की राजनीति एवं समुद्री यात्रा की चिकित्सा व्यवस्था
विजय प्रकाश सिंह, बी. के. श्रीवास्तव

परंपरागत कृषि में परिवर्तन और 49
रक्ताल्पता: झाबुआ की भील जनजाति का एक अध्ययन
सौम्या पाण्डेय

गरियाबन्द जिले में 59
भुंजिया जनजाति की जीवनशैली का समकालिक विश्लेषण
संजीव रंजन, संजीव कुमार लवानियाँ

भिण्ड अंचल की लोक परम्पराएं एवं मान्यताएँ 70
शालिनी गुप्ता

सरदार वल्लभभाई पटेल और उत्तर- 77
औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिक सद्भाव की राजनीति
अखिल वर्मा, अमीर अली खान

बौद्धकालीन धम्म का स्वरूप 87
सुधा सोनकर

छत्तीसगढ़ के जनजाति समाज में वन आधारित संसाधनों पर पारिस्थितिकीय एवं आजीविका प्रबंधन: कमार जनजाति के विशेष संदर्भ में 96
संदीप कुमार, नीलकंठ पाणिग्राही

Exploring the Significance of Integrating Creativity in Product Design in Industrial Arts Education 106
Susmita Lakhyani, Ragneel Chand

Decoding Future Prospects of Trial Under BNSS: A Comparative Analysis with CrPC 118
Vaibhav Singh Yadav, Vikash Agrawal

Dropout Crisis in Higher Education: Socio-Cultural and Economic Determinants 129
Anamika Chauhan

Deconstructing Female Identity Politics: Philosophical Intersections in the Works of Beauvoir, Wittig, Butler, and Irigaray 143
Ravi Bhatt, Nipun Chaudhary

Eco-critical Consciousness through Vedic Wisdom: Pṛthvī Sūkta and its Contemporary Relevance in Bridging Ecology and Literature 154
Sanjay Verma, Lalit Kumar

Exploring the Therapeutic Dimensions of Saptanga Yoga of Gheranda Samhita 164
Dimpy Kapoor, Praveen Sharma

Comparison of end semester achievement in assessment of learning course of open book and closed book sessional exam groups 176
Preeti Wadhwani

They Long to Belong: Character Conflict in Mahesh Dattani's Dance Like a Man and Final Solutions 185
Prerna Sharma, Nadeem Ahmad Rather

She Research Network in India (SheRNI) of Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya (A Central University), Sagar, Madhya Pradesh: Altmetrics Study 194
Rakhi Khatik, Mahendra Kumar

Justice Delayed, Justice Denied: Analyzing Sexual Violence in Sudan Civil War 206
Bhaswati Bhattacharjee, Rashmi Singh

Working Capital Management, Liquidity and Profitability of Maharatna CPSE in India 220
Gautam Prasad, Garima Dohar, Ankita Rajput

Spatial Identity and Ageing in Goa: Reconstructing the Social Space in Long-Term Care Homes 232
Rakshanda Ramesh Mayekar, Arvind N. Haldankar

Impact of Examination stress on students' academic achievement: A Comparative Analysis 242
Jyoti Sengar

Global Research Trends in Psychological Well-being of Orphans: A Bibliometric Analysis Using Web of Science 255
Sameer Ahmad Wani, Dharmendra Kumar Sarraf

भौतिकवाद बनाम अध्यात्मवाद

किरण आर्या

सारांश

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अध्यात्म का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि अध्यात्म हमारे जीवन का वह श्रेय पक्ष है जो हमें अपने लौकिक पथ से अलौकिक पथ अर्थात् इहलोक से परलोक तक की यात्रा कराने में मुख्य भूमिका निभाता है अध्यात्म हमें लक्ष्य के प्रति सजग रखता है अध्यात्म हमें साक्षात् ईश्वर से संयुक्त रखता है किन्तु इन सबका आधार, श्रेय का आधार, परलोक का आधार, भौतिकता है प्रेय मार्ग है इस संसार में जीवनोपयोगी संसाधनों से युक्त होकर ही हम अध्यात्म मार्ग में अग्रसर हो सकते है। यदि लौकिकता का वरण नहीं करेंगे तो अलौकिकता के महत्त्व से अवगत नहीं हो सकेंगे। लौकिक से अलौकिक की ओर बढ़ना, यह एक शास्त्रीय क्रम है, एक सोपान है, जिस पर यथाक्रम बढ़ना ही बुद्धि मानी है भौतिकता और आध्यात्मिकता से हम शरीर और आत्मा को ले सकते है। भौतिकता का परिचायक शरीर है और आध्यात्मिकता का परिचायक आत्मा तथा परम आत्मा है स्वस्थ शरीर में ही आत्मा का निवास सम्भव है अतः शरीर को स्वस्थ रखना मनुष्य का परम कर्तव्य है क्योंकि यही स्वस्थ शरीर स्वस्थ मन और स्वस्थ आत्मा की स्थिति को बनाये रखेगा और हम आत्मा से परिचित होते हुये परम आत्मा तक के दर्शन कर सकेंगे।

बीज शब्द : भौतिकता, आध्यात्मिकता, अविद्या, श्रेय, प्रेय, परा, अपरा, प्रकृति, वासना।

आज जब हम भारतीय ज्ञान परम्परा की बात कर रहे है तो वाक्यात्मक इस शब्द के प्रयोग से स्वभावतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह परम्परा हमें अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर कर रही है और वर्तमान समाज में केवल अध्यात्मवाद को लेकर चलना हमारे लिये असम्भव है अथवा कह सकते है कि केवल अध्यात्मवाद से यह संसार नहीं चल सकता। इस दृष्टिकोण से भारतीय ज्ञान परम्परा और भौतिकवाद, ये दोनों विरोधाभास से प्रतीत होते है। किन्तु ऐसा नहीं है भारतीय ज्ञान परम्परा का आदि स्रोत वैदिक दृष्टिकोण,ऐसा कदापि नहीं रहा है वैदिक संस्कृति का दृष्टिकोण कोरा आध्यात्मिक नहीं रहा। 'कोरा आध्यात्मिक' से अभिप्राय है ऐसा दृष्टिकोण जिसमें भौतिकवादिता को सर्वथा हेय दृष्टि से देखा जाता हो। वैदिक संस्कृति का दृष्टिकोण वर्तमान प्रचलित विचारधारा की दृष्टि से एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। उस दृष्टिकोण के आधार पर भौतिकवाद और अध्यात्मवाद को समन्वय की दृष्टि से देखा गया है भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद ये दो विचारधारायें पश्चिम देशों में भी रहीं और पूर्व देश में भी। पश्चिम में भी दोनों तरह के विचारक हुये और पूर्व में भी। परन्तु पश्चिम में भौतिकवादी विचारकों की संख्या अधिक रही है और पूर्व में अध्यात्मवादी विचारकों की संख्या अधिक देखने को मिलती रही है पश्चिम में भौतिकवाद को प्रमुखता देते हुये उसे ही जीवन का लक्ष्य का माना गया अतः अध्यात्मवाद गौणरूप में ही रह गया। किन्तु पूर्व में अध्यात्मवाद को प्रमुखता दी गयी और उसे जीवन का परमलक्ष्य माना गया अतः अध्यात्मवाद हमारी पहचान बन गया। परन्तु हमने भौतिक और आध्यात्मिक को समन्वय की दृष्टि से देखा और द्वैत से अद्वैत

की ओर अग्रसर हुये। हमने भौतिक को अध्यात्म का अनुगामी स्वीकार किया न कि अध्यात्म को भौतिक का अनुगामी। हमने स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति की है, न कि सूक्ष्म से स्थूल की ओर। हमने प्रकृति को परमात्मप्राप्ति का साधन बनाया है भौतिकवादी विचारकों की दृष्टि में प्रकृति पर विजय प्राप्त करना उन्नति है पर अध्यात्मवादियों का विचार है कि उन्नति का अर्थ प्रकृति को पा लेना अथवा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेना नहीं अपितु आत्मा पर विजय प्राप्त करना वास्तविक उन्नति है किन्तु यह यथार्थ सत्य है कि हम बिना भौतिकवादी बने अध्यात्मवादी हो ही नहीं सकते। आध्यात्मिकता की सफल प्राप्ति के लिये भौतिकवादी मार्ग का ही चयन करना होगा क्योंकि हम प्रकृति को बिना समझे प्रकृतिकर्ता को नहीं समझ सकते। वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में भौतिकता को अविद्या, माया, अज्ञान, प्रेय, अपराविद्या आदि शब्दों से परिभाषित किया गया है तथा अध्यात्म को विद्या, ज्ञान, श्रेय, पराविद्या आदि शब्दों द्वारा परिभाषित किया गया है उपनिषद् कहती है –

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये ऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।।ऽ[1]

अर्थात् गहन अन्धकार में प्रवेश करते है वे जन, जो अविद्या की, भौतिकता की उपासना में लगे रहते है, भौतिकता में ही संलिप्त रहते है, भौतिकता को सर्वस्व मानते है किन्तु वे तो और घने अन्धकार में जाते है जो केवल विद्या की, अध्यात्म की उपासना में व्यस्त रहते है। किन्तु जो व्यक्ति विद्या और अविद्या दोनों को जानता है, दोनों की उपासना करता है, वह अविद्या द्वारा मृत्युपर्यन्त जीवन यात्रा करके विद्याद्वारा अमृत–मोक्ष को प्राप्त कर चिरन्तन सुख को प्राप्त करता है–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।ऽ[2]

यहां उपनिषद् की यह बात कि अविद्या मनुष्य को घने अन्धकार में ढकेले यह तो ठीक लगती है परन्तु विद्या उससे भी घने अन्धकार में ढकेल दे यह बात समझ से परे लगती है लेकिन यह सत्य है कि जो व्यक्ति भौतिक जगत् की परवाह किये बिना केवल अध्यात्म की ओर गतिशील होते है उनके हाथ कुछ नहीं लगता। भौतिकवाद से कम से कम संसार तो हाथ आता है उपनिषद् का यहां यह तात्पर्य है कि विद्या हमारा ज्ञान पक्ष है अविद्या हमारा व्यावहारिक पक्ष। अतः विद्या को बिना व्यवहार में लाये हम विद्या की वास्तविकता से अवगत नहीं हो सकते–**शास्त्राण्यधीत्यपि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्ऽ**[3]। सांसारिक कर्तव्यों से मुख मोड़कर हम स्वर्ग को प्राप्त नहीं कर सकते। विद्या को भलीप्रकार जानकर ही तद्द्वारा हम अविद्या–सांसारिकता के रहस्य से अवगत होंगे और सांसारिकता से पूर्ण अवगत होने पर ही हम उससे विरक्त होकर तत्स्थित सत्ता को अर्थात् अमृत को समझ सकेंगे। नाशवान् के माध्यम से ही अनाशवान् को समझा जा सकता है पूर्ण भुक्ति ही पूर्ण विरक्ति को जन्म देती है अतः उपनिषद् कहती है कि अविद्या अर्थात् भौतिक विज्ञान की और ध्यान देना भी आवश्यक है विज्ञान द्वारा ही हम शरीर को स्वस्थ रखने का उपाय कर सकते है, विज्ञान द्वारा ही हम ओशधियों का पता लगा सकते है, भूख प्यास को मिटाने का उपाय जान सकते है, आयु को लम्बा कर सकते है। किन्तु शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते, शान्ति के लिये हम पुनः विद्या के निकट पहुचते है। भौतिकता से हम केवल जीवन जी सकते है पर केवल विद्या से जीवन नहीं जिया जा सकता, अतः उपनिषद् दोनों की आवश्यकता को महत्त्व देती है मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि –

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यत् ब्रह्मविदः वदन्ति परा चैव अपरा च।
तत्र अपरा-; ऋग्वेदः यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पः, व्याकरणम्, निरुक्तम्, छन्दः, ज्योतिषम् इति। अथ परा-यया तत् अक्षरम् अधिगम्यते।।[4]

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को दो विद्यायें अवश्य जाननी चाहियें। वे विद्यायें है–परा विद्या और अपरा विद्या। जिसमें अपरा विद्या है–चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) और छह शास्त्र (शिक्षा, व्याकरण,

कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) तथा परा विद्या है–जिसके जानने से वह अक्षर ब्रह्म जाना जाता है यहां अपरा विद्या भौतिक विद्या है तथा परा विद्या अध्यात्म विद्या। छान्दोग्योपनिषद् में नारद और सनत्कुमार की चर्चा मिलती है जिसमें नारद ने सनत्कुमार के पास आकर आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करते हुये कहा है कि भगवन्! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पित्र्य–विद्या, राशिविद्या (गणितविद्या), दैवविद्या, निधिविद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या सभी कुछ पढ़ा है, परन्तु **'सः अहम् भगवः मन्त्रवित्एव अस्मि न आत्मवित्'**[5] मैंने मन्त्रज्ञान तो प्राप्त कर लिया है, आत्मज्ञान नहीं पाया। प्रकृति का ज्ञान मन्त्र ज्ञान है अपना ज्ञान आत्मज्ञान है नारद कहते है–भगवन्! मैंने सुना है **'तरति शोकं आत्मवित्'** जो आत्मतत्त्व को जान लेता है आत्मवित् हो जाता है उसे शान्ति मिल जाती है अतः मुझे आत्मा का उपदेश दीजिये। मुण्डक उपनिषद् में वेद को अपरा इसीलिये कहा गया क्योंकि वेद केवल परा विद्या के ग्रन्थ नहीं है अपितु अपरा के भी है अर्थात् वेद में जहां ब्रह्मविद्या की मूल शिक्षा है वहां युद्ध करने का भी विधान है, चक्रवर्ती राज्य का भी उल्लेख है, धन पैदा करने की भी आज्ञा है यह सब प्राप्त करने पर भी आत्मधन की कमी रह जाती है जिसके लिये पराविद्या की आवश्यकता होती है किन्तु अपरा से सर्वस्व प्राप्ति करने पर ही आत्मधन की आवश्यकता का अनुभव होता है कठोपनिषद् में नचिकेता की कथा का उल्लेख है–यम द्वारा नचिकेता से तीन वर मांगने के लिये कहा जाता है तो नचिकेता का तीन वरों में एक वर यह होता है कि हे यम! आप मुझे आत्मज्ञान का उपदेश दीजिये। तब नचिकेता से यम कहते है कि तुम हाथी, घोड़े, ऐश्वर्य, भोगविलास, प्रकृति पर शासन, जो कुछ चाहे मांग लो पर आत्मज्ञान बड़ा कठिन है इसे मत मांगो। नचिकेता आजकल का युवक नहीं था उसने वैदिक संस्कृति में जन्म लिया था। वह कहता है–भौतिक वासनाएं तोएक जन्म में क्या सैंकड़ों जन्म लेते जाये। तब भी नहीं मिटतीं किन्तु आत्मतत्त्व के दर्शन कर लेने पर भौतिक जगत् स्वयं हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य जब वानप्रस्थी होने लगे तब उन्होंने अपनी भार्या मैत्रेयी को कहा कि तुम्है कुछ सम्पत्ति देता चलूं। मैत्रेयी ने पूछा–**यन्नु म इयं सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् स्यामहं किं तेनामृता स्याम ?**[6] अगर यह सारी पृथिवी के भोग पदार्थ मुझे मिल जाये। तो मेरे आत्मा को शान्ति मिल जायेगी? याज्ञवल्क्य ने कहा कि–**'नेति नेति। यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात्, अमृतत्त्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन'**[7] संसार के प्राकृतिक साधनों के मिलने से तुझे आत्मिक शान्ति तो नहीं मिल पायेगी पर उपकरण अर्थात् साधन सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन जितना सुखी हो सकता है उतना सुखी तुम जरूर हो जाओगी। जब मैत्रेयी ने कहा **'येनाहं नामृता स्याम किं तेन कुर्याम'**[8] जिस वस्तु के प्राप्त करने से मेरे आत्मा को चिरस्थायी शान्ति न मिले उसके पीछे भागकर मैं क्या करूंगी मुझे तो आत्मतत्त्व का उपदेश चाहिये।

वैदिक संस्कृति भौतिक उन्नति को जानती नहीं थी ऐसा नहीं है बस केवल अन्तर यह है कि पहले बैलगाड़ी चलती थी अब कार और विमान चलते है। पहले मिट्टी का दिया जलता था अब बिजली जलने लगी है, पहले जिन बातों के लिये महीनों लग जाते थे उनके लिये अब बटन दबाना काफी है, अनेक प्राकृतिक संसाधनों के माध्यम से मनुष्य प्रकृति का स्वामी बनता जा रहा है किन्तु यदि वह कार पर चढ़कर दूसरे को लूटने लगे, विमान पर चढ़कर दूसरे पर बम बरसाने लगे मशीन के जरिये आग उगलने लगे, प्रकृति का स्वामी बन संसार को भस्म करने लगे तोऐसी विजय किस काम की?।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन मेंएक समय दो मार्ग आते है एक भौतिकवादी मार्ग दूसरा अध्यात्मवादी मार्ग। भौतिकवादी मार्ग का चयन करना प्रेय मार्ग का चयन करना है, जो प्रेय है, प्यारा है, रुचिकर लगता है, सुखप्रद लगता है, जो प्रकृति पर विजय प्राप्त करना सिखाता है अध्यात्मवादी मार्ग श्रेयमार्ग है, कल्याणप्रद मार्ग है, आरम्भ में कठिन लगता है अन्त में भला ही करता है–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्य मेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥'[9]

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य के सामने श्रेय, प्रेय ये दो मार्ग आते है पर विवेकशील व्यक्ति अन्त में

श्रेयमार्ग का ही वरण करता है किन्तु मंदबुद्धि प्रेयमार्ग में जीवन व्यतीत करना चाहता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह केवल इह लोक तक सीमित रहता है यह सत्य है कि व्यक्ति का जीवन प्रेयमार्ग से ही आरम्भ होता है वह संसार को ही सब कुछ समझता है उसे ही पाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील होता है पुनः सद्गुरु के सान्निध्य को प्राप्त कर अथवा सद्ज्ञान को प्राप्त कर वह सांसारिक यथार्थता को समझता है उसके बाद उसके विवेक पर आधारित होता है कि अब वह किस मार्ग का चयन करेगा। आज के भौतिक उन्नति से सम्पन्न जगत् में अब नचिकेता सदृश बालक का जन्म असम्भव है जो श्रेय और प्रेय, विद्या और अविद्या, परा और अपरा का भेद आरम्भ से ही जाने और तदनुसार जीवनचर्या व्यतीत करे। संसार का सम्पूर्ण भौतिक ज्ञान जिसका दूसरा नाम विज्ञान है इसके मूल में अदृश्य को खोज लेना ही अध्यात्म है, श्रेय है दृश्य ही अदृश्य का अनुभव करा सकता है दृश्य साधन है अदृश्य साध्य का। यही वैदिक संस्कृति का सोचा समझा हुआ निष्कर्ष थां। वैदिक संस्कृत भौतिक वाद को जानती थी, अपरा विद्या से परिचित थी, प्रेयमार्ग उसके लिये कोई नया मार्ग नहीं था किन्तु उसे पता था कि केवल इसी मार्ग पर चलते रहने से संसार के भोग तो मिल सकते है लेकिन शाश्वत शान्ति नहीं, अतः वैदिक कालीन लोगों ने प्रेयमार्ग का उतना ही वरण किया जितना श्रेयमार्ग के लिये, आत्मतत्त्व के लिये आवश्यक था। वर्तमान समाज बेतहाषा प्रेयमार्ग की ओर भाग रहा है, प्राचीन लोग भी इस ओर भाग सकते थे लेकिन उन्होंने जानबूझकर इस मार्ग को छोड़ा था। वे जानते थे कि इससे वे भौतिकसम्पन्न हो सकते है पर आत्मदरिद्र भी हो जायेंगे। अतएव यह कहकर उन्होंने इस मार्ग का अवलम्बन नहीं किया कि यह मार्ग लुभावना तो है पर मनुष्य को मनुष्य नहीं बना सकता, आत्मतत्त्व का विकास नहीं कर सकता।

यह संसार और इसके विषय अन्त तक रहने वाले नहीं है। आज जिस वस्तु से हमें अत्यधिक लगाव है कल वही वस्तु हमें अप्रिय लगने लगती है जिन विषयों के प्रति हम आकृष्ट होते है उन्हीं विषयों के प्रति हम उपरत भी होने लगते है। राग के बाद वैराग्य, प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति, भोग के बाद त्याग इस नियम को कोई टाल नहीं सकता, भौतिकता के साथ यह नियम अवश्य संघटित होगा। नित्य द्वारा निर्मित यह संसार सत्य है, इसके विषय भी सत्य है परन्तु हम इतना सांसारिक विषयों में रम जाते है कि उस नित्य को भूल जाते है ऐसी स्थिति में यह संसार भोगते भोगते हमें असत्य प्रतीत होने लगता है और विषयों में स्वयं को खो देने वाले के सामने यह सत्य संसार अपनी असत्यता निःसारता प्रकट करने लगता है जिससे हम स्वयं उससे विराम लेने लगते है। जैसे हम संसार से आकृष्ट होते है वैसे ही संसार से निवृत्त भी होते हैं। संसार से लगाव का अनुभव और अलगाव का अनुभव, दोनों ही हम करते है। इस दृष्टि से भौतिकवाद भी सत्य है और अध्यात्मवाद भी। पूर्ण सत्य न तो भौतिकवाद है और न ही अध्यात्मवाद। अपितु दोनों का समन्वय ही पूर्ण सत्य है संसार को सत्य मान उसमें पूर्णतया रम जाना, पुनः उसकी असत्यता प्रमाणित होने पर उससे विरत हो जाना यही सत्य दृष्टि है व्यावहारिक दृष्टि है इसी दृष्टि से यह संसार चल रहा है यदि संसार की असत्यता को जानकर ही संसार उत्पन्न होता तो यह संसार चल ही नहीं पाता। सभी अध्यात्मवादी हो जाते। संसार का उपभोग कोई नहीं करता, संसार संसरण करता ही नहीं। समाज का व्यवहार नहीं चलता। मनुष्य सामाजिक नहीं होता सभी अध्यात्ममय होते, स्वयं की साधना में लगे रहने वाले होते, पुरुशार्थ चतुष्टय की धारणा व्यर्थ होती, केवल मोक्ष की चर्चा होती क्योंकि धर्म की पूर्णता भी तभी है जब वह अर्थ और काम की ओर प्रेरित करे – **धनात् धर्मः ततः सुखम्**'[10] धन से धर्म की प्राप्ति और धर्म से सुख की प्राप्ति कही गयी है तथा वैदिक संस्कृति में धर्मपूर्वक धन कमाने की बात कही गयी है इस प्रकार धर्म और अर्थ अन्योऽन्याश्रित है। **'शरीरमा। खलु धर्मसाधनम्'***[11] धर्म का साधन शरीर है अतः शरीर को स्वस्थ, सुपुष्ट रखना प्रथम कर्तव्य है और शरीर स्वस्थ रहेगा शरीर के उपयोगी भोग्य वस्तु की प्राप्ति से, इसीलिये कहा कि धन से ही धर्म की प्राप्ति सम्भव है वैदिक संस्कृति अर्थ और काम को जीवन का आवश्यक अंग समझती रही है, सर्वांग नहीं समझती है अतएव पुरुषार्थ चतुष्टय में इन्हे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है धन कमाना साक्षात् भौतिकता को बुलावा देना है धर्म भी धारणीय कर्तव्य का नाम है ब्राह्मण का धर्म यदि अध्ययन अध्यापन है तो साथ ही दान लेना भी है क्षत्रिय का धर्म देशसेवा है, वैश्य का धर्म धनादि व्यापार करना है तथा शूद्र का धर्म संसार सेवा है ये सारे कर्तव्य केवल अध्यात्मवादी

होने पर कहां जायेंगे? धर्माचरण भी तभी भलीप्रकार किया जा सकता है जब उदरपूर्ण हो – **बुभुक्षितः किं न करोति पापम्** '[12] – भूखा व्यक्ति पाप कर्म में प्रेरित हो जाता है भूख भी अनेक प्रकार की हो सकती है अतः उदरपूर्ति हेतु भौतिकता की आवश्यकता है

'अर्थस्य पुरुषो दासः, दासस्त्वर्थो न कस्यचित्'*[13] अर्थात् पुरुष अर्थ का दास है अर्थ के लिये सब कुछ करता है पर अर्थ किसी का दास नहीं, अतः भौतिकवाद सदा से रहा है और इसी भौतिकवाद ने अनेक वादों को जन्म भी दिया है – पूंजीवाद, समाजवाद, धर्मवाद, आदि वाद अर्थ को आधार बनाकर ही सामने आये है। इन अर्थवादों ने जीवन के आदि और अन्त को लक्ष्यविहीन बना दिया है वैदिक संस्कृति ने भौतिकता पर सीमा बांधी थी कि उतना ही कमाओ, उतनी ही आवश्यकता रखो जितना जीवन जीने के लिये आवश्यक हो। सीमा से ज्यादा बढ़ने पर वही भोग विलासिता को जन्म देगी साथ ही अनेक दुर्गुणों को साथ लेकर आयेगी, औरएक दिन ऐसा आयेगा कि हम उस भोग से ऊब भी जायेंगे, स्वयं उससे दूर होते जायेगे किन्तु पूर्व में उसमें रत रहने पर हम कई पापाचार कर चुके होंगे जिसे हमें भोगना ही होगा अतः वैदिक संस्कृति हमें पूर्व से ही संयमित जीवन का सन्देश देती है भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय का उपदेश देती है

यहां यह विचार आवश्यक है कि वस्तुतः क्या कारण है कि कुछ समय पूर्व जो भोग हमें सत्य प्रतीत हो रहा था वह कुछ समय बाद असत्य क्यों प्रतीत होने लगता है? सुन्दर वस्तु को देखकर हमारी घोर प्रीति होती है, राग होता है, समयानन्तर उस सौन्दर्य को नष्ट होते देख उसी से हमें अप्रीति होने लगती है इसका कारण यही है कि सारता के पीछे असारता छिपी रहती है और जब हम सारता के अन्तः में प्रवेश करने लगते हैं तो असारता के दर्शन स्वतः हो जाते है। विचित्र बात यह है कि वह असारता ही सत्यतत्त्व है, ईशतत्त्व है, अध्यात्म है, वहीं से हमारा अध्यात्म मार्ग आरम्भ हो जाता है लेकिन यदि हम सीधे अध्यात्म में प्रवेश करने लगेंगे तो सम्भव है कि हम यदा कदा भौतिकता की ओर स्खलित हों!! अतः भौतिकता के मार्ग से गुजरने पर हमारी सात्त्विक पारलौकिक जीवन यात्रा शुरु हो जाती है संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान्, है, क्षयशील है, विनाशी है किन्तु उसके मूल में जो तत्त्व है वह अक्षय है, अविनाशी है –

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओं खं ब्रह्म॥'[14]

अर्थात् संसाररूपी हिरण्यमय पात्र से, चकाचौंध से वह सत्यरूपी परमात्मा आच्छादित है जैसे ही वह आच्छादन हटता है हमें उसके दर्शन होने लगते है। वह आच्छादक पात्र ही संसार है अतः संसार के अन्तः में प्रवेश करके ही हम उसे पा सकते है। अतः अन्तःस्थ के अन्वेषण के लिये आधार की अत्यन्त आवश्यकता है और वह आधार संसार है संसार को यदि भोगना नहीं था तो संसार बना ही किसलिये? संसार हमारे भोगने के लिये ही उपस्थित है, हमें इसे यथाशक्ति भोगना है किन्तु विवेकपूर्वक। इस दृष्टि को आधार बनाकर ही वैदिक संस्कृति में भौतिक समृद्धि की कामना की जाती रही है–**'वयं स्याम पतयो रयीणाम्'***[15] कहकर जहां वेद हमें धनपतियों का स्वामी बनने का आशीष देता है, वहीं **'छातहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर'***[16] कहकर उस भोग्य वस्तु का दान करने का भी आदेश देता है जिससे मनुष्य **'केवलाघो भवति केवलादी'***[17] अकेला खाने वाला पापी होता है, इस पाप से बचा रहे, यही विवेकदृष्टि है इसीलिये वैदिक काल में सुख ऐश्वर्य के लिये, संसार के प्राकृतिक वैभव के लिये दिल खोलकर प्रयत्न होता था तभी तो यजुर्वेद कहता है–

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्,
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्,
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रथेष्ठाः। सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्
निकामे निकामे नः पर्जन्योऽवर्षतु फलवत्यो न ओषधायः
पच्यन्ताम्, योगक्षेमो नः कल्पताम्॥*[18]

अर्थात् राष्ट्र में तेजस्वी ब्राह्मण हों, शूरवीर क्षत्रिय हों, भरपूर दूध देने वाली गौयें हों, भारी भार ढोने वाले बैल हों, तीव्रधावक घोड़े हों, बुद्धिमती नारियां हो, यजमान के ऐसे युवापुत्र वीर हों, जो जहां जायें वहां विजय का डंका बजायें, रथों पर सवारी करें, सभाओं में भाषण देने वाले हों। जहां हम चाहै वहां बादल बरसें, वनस्पतियों में पके हुये फल लदे हों, हम सबका योगक्षेम हो, कल्याण हो, हम सबकी सब तरह से समृद्धि हो। इस प्रकार वेद में अनेक ऋचायें है जो हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्रेरित करती है। इस संसार में जिस परमात्मा ने हमारे उपभोग के लिये सारे संसाधन उपस्थित किये है उसी परमात्मा के द्वारा प्रदत्त मेधा से मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों से नवीन नवीन आविष्कार करता है नवीन आविष्कार भी इस बात को सिद्ध करते है कि ईश्वर ने अपने पुत्रों के लिये सब कुछ दिया है, हर तरह सुखी रहने के लिये सारे संसाधन प्रकृति रूप में दिये है और उससे विकृति द्वारा अनेक उपसाधन बनाने के निर्देश भी दिये है कि जितना चाहो अपने बुद्धि विवेक से तुम उन साधनों का उपयोग कर सकते हो, लेकिन समन्वयवादी दृष्टि से। भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता को नहीं छोड़ना है, अविद्या के साथ विद्या को बनाये रखना है, अपरा के साथ परा का भी ध्यान रखना है, प्रेय प्राप्ति को श्रेय प्राप्ति का लक्ष्य बनाना है, प्राचीनता को भी नहीं छोड़ना है अर्वाचीनता को भी अपनाना है भौतिकता और आध्यात्मिकता–ये दोनों एक दूसरे के पूरक भी है।एक दूसरे के आधार है। भौतिकता में आध्यात्मिकता को खोज लेना साधुता है और आध्यात्मिकता में भौतिकता ईश्वर की कृपा से स्वतः प्राप्तव्य है, आध्यात्मिक व्यक्ति के पास आवश्यक किसी भी भौतिक वस्तु का अभाव नहीं रहता है इसीलिये वेद हमें योगक्षेम की शिक्षा देता है–जो प्राप्त नहीं है उसे प्राप्त करें और जो प्राप्त है उसकी संरक्षा करें चाहे वह भौतिकता हो या आध्यात्मिकता- **योगक्षेमो नः कल्पताम्।।**

संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म. प्र.
kiranujn14@gmail.com

सन्दर्भः

1. *विद्यामार्तण्ड डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, एकादशोपनिषद्, विजयविजयकृष्ण लखनपाल दिल्ली, 2000, ईशावास्योपनिषद् 1.9।*
2. *वही, ईशावास्योपनिषद् 1.11*
3. *काव्यतीर्थ, नारायण राम आचार्य, हितोपदेश, निर्णयसागर प्रेस मुम्बई, 1949, पृ.–24*
4. *विद्यामार्तण्ड डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, एकादशोपनिषद्, विजयविजयकृष्ण लखनपाल दिल्ली, 2000, मुण्डकोपनिषद् 1.4,5*
5. *विद्यामार्तण्ड डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, एकादषोपनिषद्, विजयकृष्ण लखनपाल दिल्ली, 2000, छान्दोग्योपनिषद् 7.1,2*
6. *वही, बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4,2*
7. *वही, बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4,2*
8. *वही, बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4,2*
9. *वही, कठोपनिषद् .2.1*
10. *काव्यतीर्थ, नारायण राम आचार्य, हितोपदेष, निर्णयसागर प्रेस मुम्बई, 1949, पृ.–6*
11. *मालवीय डॉ. सुधाकर, कुमारसम्भवम्. चौखम्बा विजयकृष्णदास अकादमी वाराणसी 2009, सर्ग–5.33*
12. *काव्यतीर्थ, नारायण राम आचार्य, हितोपदेश, निर्णयसागर प्रेस मुम्बई, 1949, पृ.–60*
13. *महाभारत 6.41.36*
14. *यजुर्वेद, वैदिक पुस्तकालय केसरगंज अजमेर 1993, अध्याय–40.17*
15. *ऋग्वेद वैदिक पुस्तकालय केसरगंज अजमेर 1987, मण्डल–10.121.10*
16. *अथर्ववेद, रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत हरियाणा 2004, काण्ड–3.24.5*
17. *ऋग्वेद 10.117.6*
18. *यजुर्वेद, वैदिक पुस्तकालय केसरगंज अजमेर 1993, अध्याय–22.22*

भारत राष्ट्रःपरिकल्पना और भारतबोध के आयाम

संजय कुमार

सारांश

भारत देश एक राष्ट्र है, यह इसका कोई आधुनिक नाम नहीं है अपितु यह देश की विविधता, सनातनता और स्वतंत्रता का प्रतीक है। जिसके सन्दर्भ महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों में केवल मिलते ही नहीं है बल्कि राष्ट्र की परिकल्पना का बोध भी कराते हैं। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक राष्ट्र की सम्प्रभुता, अखंडता, जनसंख्या, भूभाग, स्वतंत्रता, आध्यात्मिकता आदि के साथ जो सांस्कृतिक चेतना का भाव उदय हुआ है वही इसके राष्ट्र भाव को प्रकट करता है। जहाँ लोग भयरहित होकर सुख, शांति से सौमनस्य भाव से निवास करते है। आपस में राग–द्वेष से दूर होकर स्नेह और प्रेममय जीवन व्यवहार से युक्त होकर रहते है। भारत वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः, ईशा वास्यमिदं सर्वम्, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति और जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि के रूप में प्रतिष्ठित राष्ट्र है। इस देश में रहने वाले सभी के मन में अपनी भौगोलिक सीमा, राष्ट्रीय संसाधन, पर्वत, पठार, समुद्र, नदी, वन और सस्यश्यामला भूमि के संरक्षण–संवर्धन की अटल भावना विद्यमान होती है और यह भावना सर्वस्व त्याग के रूप में परिलक्षित होती है। यहाँ के लोग राम और कृष्ण के जीवन से प्रेरणा लेकर जीवन व्यवहार को अनुशासित करते है। आचरण की सुघरता विधि–निषेध में पल्लवित होती है और अधीतिबोधाचरणप्रचारैः का रूप धारण कर सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान के आलोक से आलोकित करती है जिससे एक सुसज्जित राष्ट्र का बोध होता है। जिसे सबके भरण–पोषण के कारण मां कहा जाता है और संरक्षण के लिए राष्ट्र पुरुष के रूप में अंगीकार किया गया है। यह प्रेम और सौहार्द से सुसज्जित राष्ट्र है। जहाँ भाषा, धर्म, वर्ग का भेद नहीं है, सभी लोग उसी परमात्मा के अंश है, यह मान्यता प्रबलतम है।

बीज शब्द : राष्ट्र, सीमा, पर्वत, समुद्र, नदी, द्वीप, युग, पृथ्वी, शासन, वर्ण, आश्रम, धर्म, दर्शन, कर्म, भरत, भारतवर्ष, राजा।

भारतवर्ष विश्व के प्राचीनतम् सांस्कृतिक राष्ट्रों में से एक है या यह कहें कि श्रेष्ठ है तो कोई अतियुक्ति नहीं होगी। यहां की संस्कृति, आचरण,व्यवहार सबको अनुरंजित करता है, भौगोलिक स्वरूप देश के सौंदर्य का केवल द्योतक नहीं है बल्कि उसके सांस्कृतिक विरासत की गाथा है। यहां के नगर, महानगर, पर्वत, पठार, नदी, समुद्र, जलाशय इत्यादि सभी इस राष्ट्र के समृद्धि के प्रतीक हैं। यदि राष्ट्र शब्द पर विचार किया जाय तो राष्ट्र शब्द राज् और ष्ट्रन् के योग से बना है जिसका अर्थ देश, राज्य और साम्राज्य माना गया है[1]। राष्ट्र को राज्य अर्थ में ग्रहण करते हुए आचार्य मनु भी कहते हैं कि विद्वान् साम आदि चारों उपायों में से सर्वदा राज्य की वृद्धि के लिए दण्ड की प्रशंसा करें।[2] इसी सन्दर्भ में एक स्थल

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 12-18
Peer-reviewed biannual Research Journal

पर वे कहते हैं जो राजा चौर आदि का शासन नहीं करता हुआ, प्रजाओं से कर लेता है, उसके राज्य में निवास करने वाले लोग क्रुद्ध हो जाते है तथा वह राजा स्वर्ग पाने के अधिकार से वंचित हो जाता है[3]। आर्ष काव्यों में इस सांस्कृतिक भारतवर्ष में जन्म लेना और निवास करना दोनों ही परम सौभाग्य माना गया है–

गायन्ति देवाःकिल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।। [4]

अर्थात् देवगण भी निरंतर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्ग भूत भारत वर्ष में जन्म लिया है वह पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है। यानी यह भारत पूण्यभूमि है, यहां पर रहना, जीवन जीना, इसके रस का पान करना और हवाओं में श्वास लेना परम सौभाग्य का विषय है ऐसा माना जाता है कि भारतवर्ष में युग की सत्ता चलती है, यहां सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग नामक चार युग कार्य करते हैं, यह त्याग और तपस्या की भूमि है, यह मोक्ष की भूमि है, यह वह भूमि है जहां ईश्वर भी जन्म लेते हैं। इसे जम्मू दीप के अंतर्गत माना जाता है, इसीलिए विष्णुपुराण में कहा गया है–

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो ही कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः।।[5]

अर्थात् हे महामुने इस जम्बूदीप में भारतवर्ष श्रेष्ठ है क्योंकि यह कर्म भूमि है इसके अतिरिक्त अन्य देश भोग भूमि है। यानी यहां कर्म के द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुंचने की बात स्वीकार की गई है। कर्म ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाता है। इसलिए हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि कर्म करते हुए मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखनी चाहिए। भारत एक जीता जागता राष्ट्र है, यह किसी को हताश और निराश नहीं रखता है बल्कि सबका प्राण–प्रण से पालन करता है वह पालक राजा होता है जो ईश्वरांश के रूप में प्रतिष्ठित रहता है[6]। जब भारत के राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में चिंतन किया जाता है तो विष्णुपुराण की यह पंक्ति अवश्य याद आती है, जिसमें लिखा गया है –

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।[7]

अर्थात् जो समुद्र के उत्तर भाग तथा हिमालय के दक्षिण भाग में स्थित है वह देश भारत वर्ष कहलाता है, उसमें भरत की संतान बसी हुई है इसलिए यह देश भारतवर्ष कहलाता है भारत की जनता ही इसका वैभव है, इसका स्वाभिमान है, यहां के जो निवासी हैं वे विश्व मानवता के प्रतीक पुरुष के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। कालिदास भी अपने कुमारसम्भवम् में भारत की सीमा तय करते हुए दिखाई देते है।[8], किसी भी देश की भौगोलिक सीमा अनिवार्य रूप से होनी चाहिए जब तक उसकी सीमा तय नहीं रहती है तब तक उसका राष्ट्रीय परिपेक्ष ऊभर कर सामने नहीं आता है, यह एक सामान्य बात है कि कोई भी देश अपने मानव संसाधन का उपयोग कहां तक करे, क्या–क्या करे? उसकी एक सीमा होनी चाहिए क्योंकि अपने सीमा में रहकर ही राष्ट्र अपना विकास एवं अपनी अर्थव्यवस्थाओं को संयमित कर सकता है।

इस भारतवर्ष में महैद्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य, और पारियात्र ये सात कुल पर्वत हैं।[9] इस भारतवर्ष के नव भाग हैं–इंद्र द्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व और वारुण।[10]

यह द्वीप उत्तर से दक्षिण तक सहस्त्र योजन में फैला हुआ है इसके पूर्वी भाग में किरात लोग और पश्चिमी भाग में यवन वासी हैं।[11] यज्ञ,युद्ध, व्यापार और सेवा आदि अपने–अपने कर्मों की व्यवस्था के अनुसार आचरण करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण विभागानुसार मध्य में रहते हैं। यहां पर अनेक नदियां प्रवाहित होती हैं जो भारतीय प्राकृतिक सुषमा को केवल उपस्थित ही नहीं करती है बल्कि भारत को धन–धान्य से युक्त भी करती हैं। उसमें है शतद्रू, चंद्रभागा, नर्मदा, सुरसा, तापी, पयोष्णी, निर्विंध्या, गोदावरी, भीमरथी, कृष्णावेणी, कृतमाला, ताम्रपर्णी, त्रिसामा, आर्यकुल्या, ऋषिकुल्या, कुमारी, आदि नदियां राष्ट्रीय वैभव को प्रकाशित करती है।[12] इन नदियों के तट पर कुरु, पांचाल, मध्यदेश, पूर्वदेश,कामरूप, पूण्ड्र, कलिंग, मगध, दक्षिणात्य, अपरांतदेश, सौराष्ट्रगण, शूर, आभीर, अर्बुदगढ़, मालव, पारियात्र, सौवीर, सेंधव, हूण, साल्व, कोशल, माद्र, आराम, अम्बष्ठ और पारसी निवासी रहते हैं।[13] भारतवर्ष में अनेक पर्वत भी है, यथा हिमालय, विन्ध्याचल, ऋक्षगिरी, सह्यपर्वत, मलयाचल, महैद्रगिरी,शुक्तिमान।[14] यह भारत के प्राकृतिक संपदा को अभिव्यक्त करते हैं। यदि भारत शब्द पर विचार किया जाय तो भा यानि प्रकाश अथवा ज्ञान से सत्व गुण र से रजस् और त तमस् गुण। आध्यात्मिक दृष्टि से सत्व ज्ञान का प्रतीक है, रजस् ऐच्छिक शक्ति का तो तमस् क्रियात्मक शक्ति का द्योतक है[15] इस प्रकार यह राष्ट्र ज्ञान, इच्छा और क्रिया का प्रतीक है, जिसका ज्ञान आनंद स्वरूप इच्छा चित् है और द्रव्य का सत्य स्वरूप क्रिया के आधार पर ही दृष्टिगोचर होता है। अतः यह सच्चिदानंद के भाव को व्यक्त करने वाला देश है, जिसका उद्घोष है ईशावास्यमिदं सर्वम्।

साथ ही साथ इस भूमि से यहां के निवासियों के माता का सम्बन्ध है यही पृथ्वी सबका भरण पोषण करती है, संरक्षण प्रदान करती है, यह पृथ्वी ही हमें खाने के लिए अन्न, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए आवास की व्यवस्था करती है। इसलिए यह पृथ्वी सर्वविध सबका पोषण करती है, वह मां स्वरूप है, जिसे भारत माता की संज्ञा से विभूषित किया जाता है अथर्ववेद में कहां भी गया है –

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥[16]

अर्थात् पृथ्वी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ, वही पर्जन्य स्वरूप हमें पार करे। इस प्रकार पृथ्वी से भारतीयों का बहुत ही आत्मीय सम्बन्ध है यह जगत् जननी है विश्व के निराश्रित लोगों को आश्रय प्रदान करने वाली भारत भूमि है ईरान से पारसी लोग धार्मिक उत्पीडन के कारण आये, ईसाई और मुसलमान आये, क्रूर और आक्रान्ता तक आये। सभी यहाँ के अन्न, जल, वायु से पोषित हुए। यद्यपि आने वाले आक्रांताओं ने यहां की संस्कृति, भाषा को बहुत प्रभावित करने का प्रयत्न किया बल्कि यह कहे कि यहां की संस्कृति को नष्ट–भ्रष्ट करने का प्रयास किया, लेकिन भारतीय जीवन शैली अम्लान रही। यहां की संस्कृति उन आक्रांताओं से प्रभावित नहीं हुई। बल्कि इस पंक्ति का लोग उद्घोष करते रहे–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥[17]

अर्थात् इस देश में उत्पन्न विद्वानों से पृथिवी पर सब मनुष्य अपने–अपने चरित्र सीखें, यानि यह भारत भूमि ज्ञान–विज्ञान की भूमि है,यह सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान से आलोकित करने वाली है इसलिए इस भारत भूमि के विषय में कहा गया है–जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी[18]। अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है भारत के राष्ट्रीय स्वरूप में इन्हीं कारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है, यही भारतीयता के प्रमाण है। अतः हम कह सकते हैं कि भारत केवल भौगोलिक रूप से राष्ट्र का द्योतक नहीं है बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी राष्ट्रीय भाव–भावनाओं से ओतप्रोत है। इस देश के कण–कण में ईश्वर का भाव व्याप्त है। इसीलिए शिशुपालवध में कहा गया है –

सा विभूतिरनुभाव सम्पदां भूयसी तव यदायतायति।
एतदूढगुरुभार भारतं वर्षमद्य मम वर्तते वशे।।[19]

अर्थात् हे श्रीकृष्ण विश्वम्भर होने से गुरुतर भार को आप धारण करने वाले हैं। यह भारत वर्ष इस समय बहुत समय तक मेरे वश में है, यह आपके प्रतापश्री का बड़ा फल है। यानि आपके प्रताप के प्रभाव से ही मैं (युधिष्ठिर) इस भारतवर्ष का बहुत समय तक सम्राट बना हुआ हूँ। इसी प्रकार अग्निपुराण में कहा गया है–**कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्ग च गछ्ताम्।**[20] अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष पाने वालों के लिए भारत कर्म भूमि है। यानी यह भारत भूमि ऐश्वर्य तथा आध्यात्मिकता की भूमि है, मनुष्य अपनी इच्छा–अनुसार श्रेय–प्रेय दोनों मार्गों का पथिक बन सकता है, जो भारत देश की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है

यदि हम भारत के पौराणिक नाम पर विचार करें तो अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। लेकिन महाभारत के प्रारम्भ में इस विषय को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा गया है –

महर्षेराश्रमपदे कण्वस्य च तपस्विनः ।
शकुन्तलायां दुष्यान्ताद् भरतश्चापि जज्ञिवान्
यस्य लोकेषु नाम्नेदं प्रथितं भारतं कुलम् ।।[21]

अर्थात् परम तपस्वी महर्षि कण्व के आश्रम में दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के गर्भ से भरत के जन्म की कथा भी इसी में है, उन्हीं महात्मा भरत के नाम से भारत वंश संसार में प्रसिद्ध हुआ। इसी महाभारत में आगे भी इस प्रकार कहा गया है –

स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान् ।
ईजे च बहुभिर्यज्ञैर्यथा शक्रो मरुत्पतिः ।। [22]

अर्थात् महाराज भरतसमस्त भूमण्डल में विख्यात प्रतापी एवं चक्रवर्ती सम्राट थे। उन्होंने देवराज इन्द्र की भांति बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया। यह भरत पुनीत कार्य करने वाले थे, जिनका लोक कल्याण प्रमुख कार्य था। यहीं पर भारत देश के नाम के विषय में भी इस प्रकार कहा गया है –

भरताद् भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ।
अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः ।।[23]

अर्थात् भरत से ही इस भूखण्ड का नाम भारत हुआ, उन्हीं से यह कौरव वंश भारत वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद उस कुल में पहले तथा आज भी जो राजा हुआ वे सभी भारत वंशी कहलाये। यह भारत वह देश है जो आचरण व्यवहार का समुच्चय है, जहां दया, दान, धर्म अपने उच्चतम मूल्य पर स्थापित है करुणा, प्रेम, सद्भाव, जीवन मूल्य के रूप में सबका व्यवहार सामने आता है। सभी सुखी रहें, सभी प्रसन्नचित रहें यही इस देश का ध्येय है। इसीलिए संस्कृत ग्रंथो में भारतवर्ष का नाम बड़ा आदर पूर्वक लिया गया है। बाणभट्ट अपनी कादम्बरी में भारत वर्ष का उस समय उल्लेख करते हैं–जब चन्द्रापीड महाश्वेता से मिलता है तो वहां महाश्वेता चन्द्रापीठ से अपने विषय में बताती हुई कहती है–**इतश्च नातिदूरे तस्यास्नाद्भारतवर्षादुत्तरणान्तरे किम्पुरुषनाम्नि वर्षे वर्षपर्वतोहेमकूटो नाम निवासः।**[24] अर्थात् यहाँ से थोड़ी दूर भारतवर्ष के उत्तर में किंपुरुष नामक देश में हेमकुट नाम का एक पर्वत है भारतवर्ष से तात्पर्य भारत की भूमि या भारतीय उपमहाद्वीप से है, यह केवल भौगोलिक नाम न होकर सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त पवित्र संज्ञा है इतना ही नहीं महाभारत में भी आया है –

यदिदं भारतं वर्ष येत्रदं मुर्च्छितं बलम् ।
यत्रातिमात्रलुब्धोऽयं, पुत्रे दुर्योधानो मम ॥[25]

अर्थात् यह जो भारतवर्ष है जिसमें यह राजाओं की विशाल वाहिनी युद्ध के लिए एकत्र हुई है, जहां एक साम्राज्य प्राप्त करने के लिए मेरा पुत्र दुर्योधन ललचाया हुआ है नाम के सम्बन्ध में विमल चरण लाहा ने बड़े तार्किक विचार किये हैं, वे अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल' में लिखते है कि "पौराणिक संस्कृति विज्ञान के अनुसार भारत नव खण्डों में विभाजित था, जो समुद्रों द्वारा पृथक् और एक दूसरे के लिए अगम्य थे, परन्तु वर्तमान भारतवर्ष जैसा कि हम जानते हैं–न तो देश के भीतर समुद्रों द्वारा अलग है और न तो दूसरों द्वारा अगम्य है। अतएव यह भारतवर्ष वर्तमान भौगोलिक क्षेत्र पर फैला हुआ हमारा भारत नहीं है उसके नव खण्डों में से आठ, वास्तविक भारतवर्ष के भाग के रूप में नहीं निर्दिष्ट हैं। वे भारतवर्ष के अनेक प्रांत नहीं वरन् वृहत्तर भारत के प्रांत, द्वीप और देश है जो भारतीय प्रायद्वीप को परिवेष्टित किये हुए हैं। बहुत पहले अल्बेरुनी और अबुल फजल जैसे विद्वानों ने भी इस तथ्य की सूचना दी थी। नवें द्वीप या खण्ड को पुराणों में समुद्र से परिवेष्टित (सागर–सम्वृतः) कुमारी अथवा कुमारिकाद्वीप बताया गया है इसके पूर्वी सीमांत पर किरात और पश्चिमी सीमांत पर यवन लोग रहते थे और इसके बीच में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र .. हुए थे तथा यही क्षेत्र असली भारत प्रतीत होता है"[26] भारत देश को मानव सभ्यता के उद्‌गम स्थल के रूप में स्वीकार किया जाता है इसीलिए कहा जाता है **सा प्रथमा संस्कृति विश्वारा**[27] अर्थात् विश्व मानव द्वारा वरण करने योग्य यह पहली संस्कृति है, उत्सव, महोत्सव,व्रत,त्यौहार भारत के सांस्कृतिक चेतना की उत्स भूमि है, राष्ट्र के अमर स्वरूप का उद्‌घाटन इन्ही सांस्कृतिक तत्त्वों से होता है जिसके राष्ट्रीय स्वरूप को परिभाषित करते हुए यजुर्वेद में कहा गया है –

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रधह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योतिव्याधी महारथे जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्‌वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे -निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योग- क्षेमो नः कल्पताम्॥ [28]

अर्थात् हे ब्राह्मण इस राष्ट्र ब्रह्मवर्चस् से संपन्न ब्राह्मण तथा पराक्रमी धनुर्विद्या में निपुण शत्रुओं को जीतने वाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों, शीघ्रगामी घोडे. भारवाही बैल, दुग्ध देने वाली गायें नागरिकों को प्राप्त हो, वहां की स्त्रियां सर्वगुण संपन्न और शीलवती हों, रथी वीर पुरुष विजय शील हों, सभा में साधु स्वभाव वाले श्रेष्ठ वक्ता एवं वीर युवा हों, हम जब चाहे तब जलवृष्टि हो, हमारा राष्ट्र फल, औषधि एवं अन्न से समृद्ध हो तथा सदैव सकुशल सुरक्षित रहे। यहां के इतर जीवनचर्या को व्रात्य कहा गया है और कालांतर के परिणाम स्वरूप विखंडित हुए विभिन्न समूहों के क्षेत्र राज्यों के व्यवस्थित रूप में अस्तित्व में आते गए। अतः विश्वव्यापी वैदिक कालीन जीवनचर्या भारत राष्ट्र रूप में आज विद्यमान है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में भी भारतवर्ष की बहुत प्रतिष्ठा है। जिसके सम्बन्ध में डा. बालकृष्ण शर्मा लिखते है –

शारदादेशकश्मीरनीराजितं तुंगकस्तूरिकामोदसंवासितम्।
शम्भुविभ्राजित-चाद्रिराजोर्जितं भातु मे भारतं भासमानं भृशम्॥[29]

अर्थात् शारदा की जन्मभूमि कश्मीर देश द्वारा आरती उतारा जाता हुआ, कस्तूरी की तीक्ष्ण सुगन्ध से महकता हुआ कैलास पर्वत पर विराजमान भगवान् शङ्कर से देदीप्यमान, पर्वतों के राजा हिमालय से ऊर्जावान् मेरा भारत देश निरन्तर चमकता हुआ सुशोभित होता रहे।

किसी भी देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है, सामाजिक व्यवस्था, सहकार, सहयोग सौहार्द, प्रेम, दया, सहानुभूति, क्षमा, धैर्य के तन्तुओं से युक्त एक विशाल वस्त्र के रूप में भारतीय संस्कृति हमारे सामने आती है इसलिए यह देश अनेक होकर भी एक है, यह विभेद नहीं अभेद की संस्कृति का देश है। इसी आधार पर वेदांत दर्शन को प्रतिष्ठा मिली है यहाँ जो भी आये सबको इसने आश्रय प्रदान किया। यहां की जीवन शैली अपनाने में सभी लोग प्रारंभ से ही स्वतंत्र रहे हैं, जिसका प्रमाण सांख्य–योग, न्याय–वैशेषिक, मीमांसा– वेदान्त, जैन–बौद्ध आदि भारतीय दर्शन है। किसी भी दर्शन के सिद्धांत का आपस में विरोध नहीं है, सभी अपने विचार और तर्क को रखने में स्वतंत्र है। यहां तक कि चार्वाक भी भारतीय दर्शन में मान्य दर्शन है, जो पूर्णतः भौतिकवादी दर्शन है। फिर भी भारतीय ज्ञान परम्परा में इसे स्वीकार किया गया है इन सब विषयों का प्रभाव भारतीय जीवन शैली पर भी पड़ा। कोई वैष्णव धर्म की उपासना करने लगा, कोई शैव का, तो कोई शाक्त को अपना आराध्य स्वीकार कर लिया। भक्ति काल में भी नाथ संप्रदाय, रामानंद संप्रदाय, निरंजनी संप्रदाय, कबीर पंथ, दादू पंथ अपने जीवन शैली के कारण प्रसिद्ध हैं। सभी दर्शन और संप्रदाय ज्ञान और आत्म कल्याण के लिए ही प्रयत्न करते हैं। इसी पृष्ठभूमि पर मुस्लिमों और ईसाइयों को देश ने स्वीकार किया। अतः हम कह सकते है कि भारत देश में हिंदू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई धर्म को मानने वाले लोग स्वतंत्रता पूर्वक रहते हैं। जिसके रहवास की परंपरा को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान भी सभी धर्मों के लोगों को संरक्षण प्रदान करता है यह संरक्षण केवल उनके स्वभावगत धार्मिक चेतना पर ही अवलम्बित है, वे जैसा चाहे किसी भी धर्म के अनुयायी बन सकते हैं। यहाँ के निवासी किसी भी धर्म को आचरण व्यवहार के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। उन्हे किसी भी धर्म को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। ऐसा अधिकार संविधान के अनुच्छेद 15, 25, 26, 27 और 28 में दिया गया है। इस प्रकार संविधान केवल धार्मिक स्वतंत्रता की बात करता है, वह किसी भी धर्म की व्याख्या न करता है और न उसको व्यवहारोपयोगी बताता है इस विषय में तत् तत् धर्म के ग्रंथ ही अपने–अपने मूल्यों, व्यवहारों और सिद्धांतों की व्याख्या करते हैं। बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि भारत में व्यवहृत सभी धर्म केवल अपने सिद्धांत की व्याख्या करते हैं, दूसरे धर्म की आलोचना नहीं करते हैं। जिससे यह विदित होता है कि धर्म ग्रंथो में सभी धर्म समान हैं, सबमें मनुष्यों के कल्याण की ही कामना की गयी है, धर्म कभी विभेद या विद्वेष नहीं उत्पन्न करते है बल्कि धर्म सदैव समष्टि में विश्वास रखता है सबका आदर, सबका सम्मान इस देश की विशेषता है। इसलिए तो वरतन्तु शिष्य कौत्स जब रघु के राज दरबार में पहुंचता है तो राजा उसकी समस्या को जानकर उसका समुचित सत्कार करता है और आश्रम का विधिवत समाचार पूछ कर उसे गुरु दक्षिणा के लिए स्वर्ण मुद्राओं से युक्त कर देता है। राम पिता की इच्छा मात्र से वन चले जाते हैं। राजा हरिश्चंद्र स्वप्न में दिए गए राज्य का परित्याग कर देता है कृष्ण अपने मित्र सुदामा को धन्य–धान्य से युक्त कर देते हैं और हम कर्ण को कैसे भूल सकते है जो मित्रता के निर्वाह के लिए कर्तव्य की वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। सीता, तारा, मंदोदरी गांधारी, कुंती, अहिल्या का जीवन भारत बोध के लिए कम है क्या? जिन्होंने अपनी कर्तव्य को आगे रखा और स्व हित पर कभी विचार भी नहीं किया। इसलिए यह भारत चरित्र का देश है, धर्म का देश है। जहाँ अनेक धर्मों के लोग बिना राग द्वेष के रहते हैं। यह विश्व संस्कृति का देश है यह सीमाओं का देश नहीं है, यह संस्कृति का देश है। इसलिए तो यह देश विश्व को अपना कुटुंब मानता है

संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007
s_kumar@sanskrit.du.ac.in

सन्दर्भः

1. आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016, पृष्ठ–856
2. मनुस्मृति, चोखाम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2018, श्लोक–7/109
3. वही, चोखाम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2018, श्लोक –9/254
4. विष्णुपुरण, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक–2/3/24
5. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/22
6. मनुस्मृति, चोखाम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2018, श्लोक –7/4
7. विष्णुपुरण, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/1
8. कुमारसम्भव, चोखाम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी,2018, श्लोक – 1/1
9. विष्णुपुरण, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/3
10. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/6–7
11. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/8–9
12. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/13–14
13. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/15–17
14. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2023, श्लोक –2/3/10–14
15. पाण्डेय ओउम प्रकाश, भारत वैभव, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली, 2020, पृ.9
16. अथर्ववेद, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, 2015, 12/1/12
17. मनुस्मृति, चोखाम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2018, श्लोक –2/20
18. रामायण के रूप में प्रसिद्ध
19. शिशुपालबध, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी,2013, श्लोक 14/5
20. अग्निपुराण, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, 2007 श्लोक 11/8/2
21. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, 2022, आदिपर्व–पर्वसंग्रह, श्लोक –2/95-96
22. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2022, संभव आदिपर्व–पर्व, श्लोक –74/129
23. वही, गीता प्रेस गोरखपुर, 2022,संभव आदिपर्व–पर्व, श्लोक –74/131
24. कादम्बरी, व्याख्याकार रामतेज शास्त्री, चौखम्बा विद्या भवन,वाराणसी,20 19,पृ. 285 .
25. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, 2022, भीष्म पर्व, श्लोक 9/1
26. लाहा बिमल चरण, अनुबादक –द्विवेदी रामकृष्ण, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1972, पृ 16–17
27. यजुर्वेद, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा,2015, मन्त्र 7/4
28. वही, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2015, मन्त्र 22/22
29. भारताभिज्ञानशतकम्, डा. बालकृष्ण शर्मा, अमन प्रकाशन, सागर,म.प्र., 2022, श्लोक –3

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में अक्षयनीवि की अवधारणा

पूनम[1], जिनेन्द्र जैन[2]

सारांश

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में 'अक्षयनीवि' प्राचीन भारतीय राजस्व एवं धनराशि से संबंधित एक परिभाषिक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है–क्षय न होने वाला धन या स्थायी धन या अनुदान। इसके अन्तर्गत प्रदत्त मूल धनराशि को यथावत रखते हुए उसके ब्याज से अनुदान प्राप्तकर्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। अक्षयनीवि भूमि अनुदान एवं नकदी दोनों रूपों में था। प्राचीनकाल में अक्षयनीवि एक पूँजी की तरह धन था जिसे संस्थागत पद्धति के माध्यम से उस धन के एक अंश या धन से प्राप्त ब्याज राशि से जनकल्याणकारी कार्य किए जाते थे साथ ही उसे आधुनिक बैंकिंग प्रणाली की तरह अन्य ग्राहक को ऋण के रूप में उपलब्ध कराया जाता था। उपयोगकर्ता उसे पूँजी के रूप में उपयोग करके अतिरिक्त उत्पादन करके अर्थाजन भी करता था। इसका उल्लेख विभिन्न प्राचीन भारतीय अभिलेखों जैसे नहपान का नासिक अभिलेख, हुविष्क का मथुरा अभिलेख, गुप्तकालीन सांची अभिलेख, बैग्राम ताम्र दान पत्र, बिहार स्तम्भ लेख, दामोदर ताम्र दान पत्र, जगदीशपुर ताम्र दान पत्र, आदि में किया गया है जिसका यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत शोधालेख में किया गया है

बीज शब्द : अक्षयनीवि, प्राचीन, भारतीय, अभिलेख, धन, बैंक, जनकल्याण, श्रेणियाँ, व्यापार

वैदिक काल में व्यापारिक संगठनों के गठन एवं उनकी गतिविधियों की जानकारी अत्यल्प है राधाकुमुद मुखर्जी का मत है कि वैदिक काल में आर्थिक क्षेत्र में संगठनात्मक प्रवृति विद्यमान थी। (मुखर्जी, राधाकुमुद 1919: 42–43) ऋग्वेद में पणि का उल्लेख है जो व्यापारी थे एवं समूह में चलते थे। (मजूमदार, रमेशचन्द 1922: 18–20) राधाकुमुन्द मुखर्जी के अनुसार वैदिक साहित्य में श्रेष्ठिन शब्द का उल्लेख हुआ है अनेक विद्वानों के अनुसार श्रेष्ठिन का उल्लेख आर्थिक परिप्रेक्ष्य में नहीं हुआ है ईसा पूर्व छठी शताब्दी के दौरान गंगा घाटी क्षेत्र एवं कुछ अन्य क्षेत्रों में द्वितीय नगरीकरण हुआ। यह अवधि आर्थिक इतिहास में युगांतकारी थी क्योंकि इसमें महत्त्वपूर्णपरिवर्तन हुए। पहली बार शांति और व्यवस्था की स्थापना के लिए संगठित राज्य अस्तित्व में आए। परिणामस्वरूप, इस अवधि में कृषि, उद्योग और व्यापार का चहुंमुखी विकास देखा गया। सिक्कों की उत्पत्ति दूसरे शहरीकरण से जुड़ी प्रतीत होती है जो ईसा पूर्व छठी शताब्दी के दौरान गंगा घाटी के क्षेत्र में हुई थी। स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए इसकी आवश्यकता थी। विभिन्न उद्देश्यों के लिए लोहे के बढ़ते उपयोग के परिणामस्वरूप धन का अधिशेष अर्जित हुआ। कई नई कला और शिल्प अस्तित्व में आए और वे स्थानीय और वंशानुगत हो गए। निर्वाह और रहने की स्थिति के बेहतर साधनों के आधार पर जीवन स्तर में विकास हुआ और जनसंख्या में वृद्धि हुई है कई शहरी

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 19-26
Peer-reviewed biannual Research Journal

केंद्र अस्तित्व में आए। व्यापार और उद्योग दोनों श्रेणी संगठनों में संगठित हुए, व्यापारी बहुत समृद्ध हुए। जातक अठारह श्रेणियों का उल्लेख करते है लेकिन उनकी संख्या इससे भी अधिक थी। इनमें महाजनों की श्रेणी सबसे महत्त्वपूर्ण थी, उनके वैभव का अनुमान अनाथपिण्डक की सम्पन्नता से लगाया जा सकता है श्रेणी संगठनों ने मुद्रा विनिमय के साथ ही धन को पूँजी के रूप में ऋण उपलब्ध कराने के नियम सृजित कर लिए थे। साहूकारी एवं ऋण उपलब्ध कराने के साथ ही मूलधन को खर्च किए बिना उसी धन से प्राप्त ब्याज का उपयोग समाज कल्याण में किया जाने लगा था जिसे अक्षयनीवि कहा गया। यह मौद्रिक एवं भूमि दोनों प्रकार का हो सकता था।

'अक्षयनीवि' दो शब्दों का संयोजन है–अक्षय (जिसका क्षय नहीं होता), नीवि अर्थात् धन। इस तरह इसका शाब्दिक अर्थ है 'ऐसा धन जिसका कभी क्षय नहीं होता'। प्राचीन भारत के अनेक अभिलेखों में इसका उल्लेख हुआ है जिससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में अक्षयनीवि संस्थागत रूप से ऋण उपलब्ध कराने का बैंकिंग प्रकल्प था। सामान्य तौर पर श्रेणियॉ उस काल में आधुनिक बैंकों की तरह भी कार्य करती थी। वे अपने सदस्यों से धनराशि प्राप्त करती तथा उसको आवश्यकतानुरूप ब्याज उपलब्ध कराती थीं। ये संस्थाऍ विकसित होती चली गयीं तथा साथ में इनकी लाभकारिता में जनता का विश्वास भी बढा। इसकी पुष्टि अभिलेखों से भी होती है लोग नियमित ब्याज पर इनमें अपना धन जमा कराने लगे।

शासकों ने अपने राज्यों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यों के साथ–साथ अपनी प्रजा के कल्याणार्थ भी अनेक कार्यों का भी सम्पादन किया जिससे कि उसकी प्रजा सुरक्षित होने के साथ सुखी एवं सरलतापूर्वक जीवन–यापन भी कर सके। इन शासकों के द्वारा लोक कल्याण से जुड़े कार्यों जैसे उन्होंने नदी–तालाब, झीलों, कूप इत्यादि का निर्माण, जल प्रबन्धन एवं मंदिर का प्रबंधन आदि कार्यों के लिए वह एक निश्चित धन संगठनों को उपलब्ध करा दिया करते थे, संगठन उस धन को सुरक्षित रखते हुए उससे प्राप्त ब्याज को उपलब्ध करा देते थे जिससे जल एवं मंदिर आदि का प्रबंधन का कार्य समयबद्ध होता रहता था। इन सभी कार्यों को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए उस समय राजाओं द्वारा विभिन्न अधिकारियों को नियुक्त किया था या अलग–अलग समूहों अथवा संस्थाओं की स्थापना की गयी थी। मौर्य काल में छः सदस्यों वाली पाँच समितियों का गठन किया गया था जिनके जनकल्याण सहित अनेक अलग–अलग कार्य थे। इसी प्रकार गुप्त काल में भी जन कल्याण तथा प्रशासनिक कार्यों के अलग–अलग पदाधिकारी नियुक्त किये गये थे जैसे कुमारामात्य, महासान्धिकविग्रहिक, महाबालाधिकृत इत्यादि। (श्रीवास्तव, के.सी 2012: 420–421)

अक्षयनीवि के साथ अनेक व्यापारिक संस्थाओं का वर्णन पूर्व गुप्तकाल से लेकर उत्तर गुप्तकाल के प्राचीन ग्रन्थों तथा विभिन्न शासकों के लेखों में प्राप्त होता है प्राचीन भारतीय विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में इन संस्थाओं के अधिकारियों के नियुक्ति सम्बन्धित योग्यताओं के विषय में बताया गया है जैसे 'बृहस्पति स्मृति' से ज्ञात होता है कि ईमानदार, वेदों तथा अपने कर्तव्यों के ज्ञाता, योग्य, आत्मसंयमी और कुलीन व्यक्ति ही इन संस्थाओं के प्रबन्ध अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। इसी प्रकार विभिन्न अभिलेखों में अक्षयनीवि श्रेणी का उल्लेख सीधे तौर पर मिलता है जो ब्याज में प्राप्त धन का प्रयोग जनकल्याण या लोककल्याण में करते है। (श्रीवास्तव, के.सी 2012: 420–421)

अभिलेखों में अक्षयनीवि

प्राचीनकाल में कई प्रकार की श्रेणियाँ कार्यरत थीं जो कि विभिन्न कार्य क्षेत्रों में विभाजित थी। इन श्रेणियों का उल्लेख प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्राप्त होते है। प्रारम्भिक अवस्था से ही श्रेणियाँ (व्यापारिक

संस्था) आर्थिक कार्यों में संलग्न थीं। प्राचीन भारत में व्यापार तथा उद्योग के सुसंगठित कार्य बेहतर आर्थिक जीवन को दर्शाते है। दक्षिण के सातवाहन नरेशों ने श्रेणी संगठनों को बैंकों के रूप में प्रोन्नत कर धन जमा करना प्रारम्भ किया और सूद पर धन लेन–देन की प्रथा प्रारम्भ हुई, जिसके उदाहरण हमें विभिन्न अभिलेखों से प्राप्त होते है। अक्षयनीवि से सामान्य जनकल्याण अथवा किसी समूह विशेष के लोगों के लिए भोजन, वस्त्र एवं आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराकर उन्है लाभान्वित करने का प्रयत्न किया गया है कतिपय प्राचीन भारतीय अभिलेखों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिनमें लोक कल्याणार्थ अक्षयनीवि से प्राप्त धन का उपयोग किया गया हैः–

हुविष्क का मथुरा अभिलेख - उत्तर प्रदेश के मथुरा से प्राप्त यह शिलालेख मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत है अभिलेख ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है एवं भाषा संस्कृत से प्रभावित प्राकृत है इस अभिलेख में संवत 28 का उल्लेख है जो शक संवत के आधार पर 106 ईसवी का माना गया है इस अभिलेख में एक 'अक्षयनीवि' दान का उल्लेख है इस अभिलेख के तीसरी पंक्ति में अक्षयनीवि शब्द का उल्लेख आया है (बाजपेयी, कृष्णदत्त 1992: 135) –

सिद्धं संवतसरे 20, 8 गुर्प्पिये दिवसे अयं पुण्य
शाला प्राचिनीकन सरूकमान–पुत्रेण खरासले
र–पतिन वकन–पतिना **अक्षय-नीवि,** दिन्न ततो वृद्धि।

इस अभिलेख में अक्षय–नीवि के रूप में दिये गये धन का उल्लेख पुराण के रूप में किया गया है उल्लेखित है कि अक्षयनीवि के रूप में दाता ने 1100 पुराण दो श्रेणियों के पास आधा जमा किया था। इस अक्षयनीवि द्वारा माह में एक बार 100 ब्राह्मणों को भोजन कराने के साथ नित्य भूखे–प्यासों को भी भोजन एवं पानी की व्यवस्था की गयी है इसके लिए प्रतिदिन दिन आढ़क ताजा पिसा सत्तू, 1 प्रस्थ लवण, 1 प्रस्थ शुत्त (चटनी या अचार) और ताजी मूली तथा 3 घड़े और 5 थाली (मल्लक) रखने की व्यवस्था की गयी थी। इस अभिलेख में धन का उल्लेख पुराण के रूप में है इसके अतिरिक्त सिक्कों के रूप में पुराण का उल्लेख अन्यत्र केवल मनुस्मृति में आया है इसका तात्पर्य ऐसा लगता है कि चांदी के कार्षापण नामक सिक्के है जो कुषाणकाल में जन सामान्य में प्रचलित थे। (बाजपेयी, कृष्णदत्त 1992: 135–136)

नहपान का नासिक गुहालेख

यह अभिलेख पश्चिमी भारत के क्षहरात वंशी शक क्षत्रप नहपान के जामाता (दामाद) ऋषभदत्त द्वारा उत्कीर्ण कराया गया है इस अभिलेख की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है इस अभिलेख पर संवत 42 (120 ईसवी) अंकित है इस अभिलेख के पूर्वांश से ज्ञात होता है कि ऋषभदत्त (उषावदात) ने इस गुफा का निर्माण देश में प्रचलित सभी संघों के भिक्षुओं के रहने के लिए कराया था। मूल पाठ में अक्षयनीवि का उल्लेख है (गुप्त, पी. एल 2014: 193–194):–

सिधं (11) वसे 40 (+) 2 वेशाख–मासे राजो क्षहरात क्षत्रपस नहपानस जामातरा दीनीक–पुत्रेन उपवदातेन संघस चातुदिसस इमं लेणं नियायितं दत चानेन अक्षय निवि काहापण–सहस्त्रा–नि त्रीणि 3000 संघस चातुदिग्रस ये इर्याग्म लेणे वातान भविसंति चिवरिक कुशाणमून्ने च एते च काहापणा प्रयुता गोवधनम वाथवासु श्रेणिसु कोलिक निकाये 2000 वृधि पडिक शत अपर कोलिक निकाये

इस अभिलेख के मूल पाठ अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुफा निर्माण के साथ–साथ ऋषभदत्त ने 3000 कार्षापण से एक अक्षयनीवि की स्थापना की थी और इस धन को दो श्रेणियों को प्रदान किया

गया था। (गुप्त, पी. एल 2014: 195–196) यह धन एक प्रकार की सवधि जमा राशि थी। वह धन अप्रतिदातव्य था अर्थात् वह श्रेणी, जिनको यह धन दिया गया था, वे इस धन को व्यय नहीं सकते थे। वह उनके पास स्थाई रूप से जमा किया गया था, उसका सूद ही वे प्रदाय कर सकते थे और उस सूद या ब्याज का ही निर्दिष्ट कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता था। इसमें वर्णित है कि ऋषभदत्त ने अपना यह धन दो निकायों को और ब्याज की दो भिन्न दरों पर दिया था।

एक निकाय को दिये गये धन के ब्याज से गुहा में निवासित 20 भिक्षुओं को चीवर देने व्यवस्था थी, तथा इससे मिलने वाला ब्याज 20 कार्षापण था। इसी तरह दूसरे निकाय को दिये गये धन से केवल 7 कार्षापण सूद की उपलब्धि होती थी। इन दोनों अक्षयनीवियों और उनके उपयोग चर्चा के बाद 8000 कार्षापण मूल्य के एक नारियल के बगीचे के दिये जाने का उल्लेख है

इस अभिलेख से एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह स्पष्ट होती है कि दान अथवा नीवि व्यवस्था की घोषणा सभा में की जाती थी और इसका फलक पर आलेखन होता था।

साँची अभिलेख

यह अभिलेख साँची (विदिशा, मध्य प्रदेश) स्थित एक बड़े स्तूप की वेदिका पर बाहर की ओर अंकित है जिसकी भाषा संस्कृत और लिपि ब्राह्मी है केप्टेन एडवर्थ स्मिथ ने इस अभिलेख की खोज की थी और जेम्स प्रिंसेप ने उसका पाठ और अनुवाद प्रकाशित किया। अभिलेख में किसी शासक के नाम का उल्लेख नहीं है, तिथि 131 अंकित है जिसको गुप्त–संवत मानकत फ्लीट ने कुमारगुप्त (प्रथम) अथवा उसके उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त के काल से संबंधित किया है (एफ. जे. फ्लीट 1988: 260)

यह लेख हरिस्वामिनी नाम की बौद्ध–उपासिका द्वारा काकना–दबोट (साँची) स्थित विहार को अक्षयनीवि के रूप में दिये दान की घोषणा है, जिसके मूलपाठ में वर्णित है–

सिद्धम्। उपासक सनसिद्ध भार्य्यया उपासिका हरिस्वामिन्यामाता पितरमुद्दिश्य काकनादबोट महाविहारे चातुर्द्दिशयार्य्य संघाय अक्षयनीवी दत्ता दीनारा द्वादशा।

अर्थात् सिद्धि प्राप्त हो। उपासक सनसिद्ध की पत्नी हरिस्वामिनी ने अपने माता पिता की (पुण्य–वृद्धि) के लिए काकनादबोट–विहार के चारों दिशाओं के आर्य संघ को अक्षय–नीवि के रूप में बारह दीनार दिया। इन दीनारों से प्राप्त होने वाले ब्याज से संघ में आये हुए एक भिक्षु को प्रतिदिन भोजन दिया जाय। इस प्रकार हम देखते है कि लेख में वर्णित अक्षयनीवि से प्राप्त ब्याज वाले धन को लोक कल्याणार्थ खर्च करने का उल्लेख है (गुप्त, पी. एल 2014: 132–134)

बैग्राम ताम्र-लेख

यह ताम्र पत्र उत्तरी बंगाल या बांग्लादेश के बोगरा जिले के वैग्राम नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। इसकी तिथि 128 गुप्त संवत (447 ईसवी) है इसकी भाषा संस्कृत और लिपि उत्तरवर्ती ब्राह्मी है इस दानपत्र में राजा का वर्णन नहीं के बराबर है अभिलेख 25 पंक्तियों में उत्कीर्ण है (उपाध्याय, वसुदेव 1970: 347–349) जिसकी 17 से 21 वीं पंक्ति इस प्रकार हैः–

मेव कुल्यवाप–त्रयं स्थल–द्रोणवाप– द्वयञ्च अक्षयनोव्यास्ताम्र–पट्टेन दत्तम् निन्न–
कुस्थल–द्रोते यूयं स्वकर्षणाविरोधि–स्थाने दव्वि–कर्म–हस्तेनाष्टक–नवक–नलाभ्था–
मपविञ्च्छध चिरकाल–स्थयि–तुषाङ्गारादिना चिह्न श्चातुदिशो नियम्य दास्यथाक्षय–

नीवी–धम्मन च शश्वत्कालमनुपालयिष्यथ वर्त्तमान–भविष्यैश्च संव्यवहार्य्यादि– भिरेत–
द्धम्मपेक्षियानुपालयितव्यमिति उक्तञ्च भगव (ताद्ध वेदव्यास–महात्मना

इस अभिलेख के पंक्ति संख्या 19 और 20 में अक्षयनीवि शब्द का उल्लेख हुआ है इसमें वर्णित है कि बैग्राम के निवासी भोयिल तथा भास्कर ने निवेदन किया है कि उनके पिता शिवनन्दिन द्वारा निर्मित भगवान गोविन्दस्वामिन का मंदिर स्वल्प–वृत्तिक है अर्थात् उसकी आय का पर्याप्त साधन नहीं है इसलिए समुदयब्राह्य (ऐसी भूमि जिसमें अन्न उत्पन्न न होता हो), आद्यस्तम्ब–जंगल–झाड़ियों वाली भूमि, खिले क्षेत्र (बिना जोती गई भूमि), अकिंचित् अप्रतिकर (भूमि जिससे राज्य को किसी प्रकार की आय न होती हो), दो मीनार प्रति कुल्यवाप की दर से, जब तक सूर्य–चन्द्र–तारे रहै तब तक उपभोग के लिए अक्षय–नीवि रूप में उपलब्ध है जिसका प्रयोग मंदिर की मरम्मत तथा उनकी पूजा के लिए गन्ध, धूप, दीप और पुष्प की व्यवस्था के लिए तीन कुल्यवाप खिलक्षेत्र (मकान बनाने के निमित्त भूमि) तथा भास्कर को एक द्रोणवाप स्थल स्थल–भूमि दिये जाने का वर्णन है

जगदीशपुर ताम्रलेख

यह ताम्रपत्र अभिलेख बांग्लादेश से प्राप्त है इसमें गुप्त संवत 128 अर्थात् 447 ईसवी का उल्लेख है दान पत्र किसी शासक का उल्लेख नहीं करता है चूकि यह दान पत्र अतः धार्मिक कार्य हेतु भूमि–विक्रय से ही सम्बन्धित है जिसमें अक्षयनीवी का उल्लेख आया है (गुप्त, पी. एल 2014: 127–131) इस अभिलेख के पंक्ति संख्या 24 में अक्षयनीवि का वर्णन है–

क्ष्याक्षयनीव्यानुपालनीय उक्तञ्च भगवता व्यासेन स्वदत्ता परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरा।

इसमें कहा गया है कि चारो ओर से सीमाबद्ध क्षेत्र का जो भी उस समय विषयपति हो, वे इस भूमिदान (पत्र) को अक्षयनीवि मानकर उसका पालन करें।

इंदौर ताम्रलेख

यह ताम्रलेख गुप्त शासक स्कन्दगुप्त का है जो कि इंदौर (इन्द्रपुर), जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश से प्राप्त है इसकी भाषा संस्कृत तथा लिपि उत्तरवर्ती (5वीं शती ई0 के मध्य) ब्राह्मी है इसकी तिथि 146 गुप्त संवत (465 ईसवी) है (एफ. जे. फ्लीट 1988: 68)। इस लेख में देव विष्णु नामक ब्राह्मण द्वारा इन्द्रपुर के सूर्य मंदिर को अक्षयनीवि दान दिये जाने का उल्लेख है तथा यह लेख सूर्य मंदिर में दीप प्रज्ज्वलन के लिए तेल की व्यवस्था के निमित्त दिये गये मूल्य की (स्थायी दान) की प्रज्ञप्ति है इसके लिए कितना धन दिया गया इसका उल्लेख नहीं है यह धन तैलिकों की श्रेणी को स्थायी सम्पत्ति के रूप में दिया गया था जिसके बदले में उनके द्वारा दो पल तेल दिये जाने की बात की गयी है, किन्तु धन की तरह ही यह नहीं बताया गया है कि तेल की मात्रा कितनी थी तथा कितने अन्तराल में दिया जायेगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह व्यवस्था दैनिक रही होगी।

इस लेख में उल्लेखित इन्द्रपुर (इंदौर) है जहाँ से ताम्रलेख उपलब्ध हुआ है, वह अन्तर्वेदी विषय में स्थित था। यहाँ अन्तर्वेदी का तात्पर्य गंगा–यमुना के बीच का क्षेत्र है, जो प्रयाग से हरिद्वार तक विस्तृत था, ऐसा माना जाता है इस तरह इस लेख में ज्ञात होता है प्राचीनकाल में अक्षयनीवि प्रणाली से जो धन प्रदान किये जाते थे उनका व्यय न केवल सामाजिक, आर्थिक तथा लोककल्याण में होता था, अपितु धार्मिक कार्यों यहाँ तक कि मंदिर में दीप जलाने के लिए तेल इत्यादि के लिए भी होता था जो कि इसमें एक श्रेणी विशेष तैलिक श्रेणी द्वारा दान दिया गया था ऐसा वर्णित है

गढ़वा अभिलेख

यह अभिलेख गढ़वा (तहसील करछना, इलाहाबाद) से प्राप्त है तथा इसका सम्बन्ध स्कन्दगुप्त के काल से है एवं 148 गुप्त संवत का उल्लेख है इस अभिलेख में चित्रकूट–स्वामीपाद मंदिर राम की चरण पादुका रखी होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है इसमें कोष्ठ या कोठार शब्द का विवरण दिया गया है (जिसका अर्थ वह स्थान जहाँ सुरक्षित रूप से सम्पत्ति रखी जाती हो) तथा बताया गया है कि यह शायद एक प्रकार से खजाना रहा होगा क्योंकि प्राचीनकाल में अनेक धार्मिक स्थल आधुनिक बैंकों का काम करते थे जहाँ अक्षयनीवि के रूप में स्थायी रूप से धन जमा किया जाता था और उस धन से प्राप्त सूद को धन जमा करने वाला व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार किसी निश्चित कार्य के लिए व्यय कर सकता था। (गुप्त, पी. एल 2013: 151–153)

बिहार स्तम्भ लेख

यह अभिलेख पटना (बिहार) से प्राप्त है जिसकी भाषा संस्कृत तथा लिपि उत्तरवर्ती ब्राह्मी है आर. सी मजूमदार के अनुसार इसमें शासक पुरुगुप्त–पुत्र का उल्लेख है जबकि फ्लीट ने इसे स्कन्दगुप्त पढा है (पाण्डे, विमलचन्द 2003: 138) इस अभिलेख में उल्लेखित है कि अजपुर नामक ग्राम के निकट अग्रहारिक अक्षयनीवि ग्रामक्षेत्र था, अर्थात् ऐसा क्षेत्र जिसे अक्षयनीवि–धर्म के अनुसार अग्रहार रूप में दिया गया था। अतः इस लेख से यह पता चलता है, अक्षयनीवि केवल मुद्राओं के रूप में ही नहीं थे अपितु भूमि अथवा अन्य वस्तुओं के रूप में भी प्रदान करने का प्रचलन था।

पहाड़पुर ताम्रलेखः–यह अभिलेख राजशाही जिला (बांग्लादेश) के पहाड़पुर नामक स्थान से प्राप्त हुआ है चूंकि इसमें किसी शासक का नाम नहीं आया है बल्कि एक ब्राह्मण नायशती और उसकी पत्नी रामी का वर्णन है इसके मूलपाठ पंक्ति संख्या 4, 9, 19, एवं 20 में अक्षयनीवि का वर्णन किया गया है (उपाध्याय, वसुदेव 1970: 350–351)

पंक्ति संख्या 19 एवं 20 इस प्रकार है– कुल्यवाप (रू) अध्यद्धों क्षय–नीवी धर्म्मँण दत्तः कु द्रोतद्युष्माभिः स्व–कर्षणाविरोधि–स्थाने षट्क–नडैरप–विञ्च्छय दातव्योञ्क्षय–नीवी–धर्मेण च शश्वदा बन्द्राषर्क तारक–काल–मनुपालयितव्य इति सम् 100 (+*) 50 (+)9*

इसमें वर्णित है कि पुण्ड्रवर्धन का आयुक्त नित्वगोहाली के ब्राह्मण एवं महत्तर आदि की कुशल कामना करते हुए सूचित करता है, और विभिन्न प्रकार की भूमिका का वर्णन करते हुए कहता है कि ब्राह्मण नाथशर्मा और उनकी पत्नी रामी ने निवेदन किया है कि नित्वगोहाली में ढाई द्रोण वाप भूमि दी जाय जो कि अक्षयनीवी धर्म के निमित्त हो। अतः यह अभिलेख भी अन्य अभिलेखों के समान ही अक्षयनीवि–धर्म के अन्तर्गत भू–विक्रय की घोषणा है

दामोदरपुर ताम्रलेख

यह अभिलेख बांग्लादेश से प्राप्त पाँच ताम्र लेखों में से तीसरा है जिसमें शासक का नाम उसकी उपाधियों के साथ परदैवत्, परमभट्टारक, महाराजाधिराज श्री बुद्धगुप्त पृथ्वीपति दिया गया है यह लेख भी पूर्वोलिखित अभिलेखों के समान अक्षयनीवि धर्म के अन्तर्गत भूमि विक्रय की घोषणा है

इस अभिलेख में ग्रामिक नाभक द्वारा अपने माता–पिता तथा अपने पुण्य के लिए किसी ब्राह्मण के निवास की व्यवस्था करने के निमित्त ग्राम में प्रचलित मर्यादा के अनुसार मूल्य (जिसे हिरण्य कहा गया है) देकर समुदयब्राह्य अप्रद–खिलक्षेत्र प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की गयी है

यह लेख बांग्लादेश के दामोदरपुर नामक स्थान से प्राप्त पाँच ताम्रलेखों में से तीसरा है तथा पहले दो लेखों के तरह ही इसमें भी भूमि विक्रय सम्बन्धी जानकारी है जो कि अक्षय नीवि धर्म के अनुसार किया गया। इसके प्रारम्भिक अभिलेखों में से प्रथम दामोदरपुर ताम्रलेख जो कि वर्ष 124 का है जो कि कुमारगुप्त प्रथम के समय का है इसका पाठ इस प्रकार है जिसमें अक्षयनीवि का उल्लेख है (उपाध्याय, वसुदेव 1970: 320)–

स (०) 100 (+) 20 (+) 8वैशाख–दि 10 (+) 3 परमदैवपरमभट्टारकमहाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्ते
पृथिवी–पतीतत्पाद–परिगृहीतस्य पुण्ड्र वर्द्धन–भुक्तायुप–रिकचि रात––वसस्य
भोगेना (नुव) ह (मानक) कोटिवर्ष–विषये तन्नियुक्तक–कुमारामात्यवेत्र
वर्मणि अधिष्ठाना घिकर णञ्च नगर श्रेष्ठिधृतिपाल–सार्थवाहवन्धुमित्रप्रथ
मकुलिकधृतिमित्र–(प्रथ) मकायस्थशाम्ब पाल–पुरो गे सम्व्यहर तियतः सकृ
विज्ञापितं अईथ मम पञ्च महायज्ञ–प्रवत्त नायानुवृत्ताप्रदाक्षयनिवी
मर्यादया दातुमिति एतद्विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपालरिसिदत्तजयनन्दिविभुदत्ता–नामव

इसमें भी एक ब्राह्मण कर्प्परिदेव द्वारा यह निवेदन किया गया है कि उसे अग्निहोत के उपयोग के लिए एक कुल्यवाप अप्रद, अहप्रहत, खिल–क्षेत्र (भूमि) तीन दीनार लेकर शाश्वत–काल के लिए, जब तक कि सूर्य, चन्द्र, तारे रहे, भोग के लिए अक्षय–नीवी के अनुसार दिया जाय।

इस अभिलेख में भी अक्षय–नीवि का उल्लेख है जिसका अर्थ बताते हुए मजूमदार, प्रभातकुमार ने लिखा है– ''अक्षयनीवि का साधारण अर्थ मूल–धन है अक्षय नीति के अनुसार निवेदक को भूमि–विक्रय का अधिकार नहीं दिया जाता था, परन्तु इस नियम के आधार पर वह उस भूमि का भोग कर सकता था। भूमि क्रय करने वाले को उस भूमि पर हाट लगाने तथा संचय गृह अथवा भवन निर्माण का अधिकार प्राप्त था। (गुप्त, पी. एल 2013: 173–176)

निष्कर्ष

प्राचीन भारत के वैदिक काल में कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे लेकिन उद्योग–धन्धे, व्यवसाय एवं व्यापार भी पल्लवित एवं पुष्पित हो रहे थे। छठी शती ईसा पूर्व में सुदृढ राजनीतिक व्यवस्था एवं उससे स्थापित शांति व कानून व्यवस्था, लोहे के उपयोग एवं प्रचलन आदि के उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य में वृद्धि हुई परिणामस्वरूप द्वितीय नगरीकरण हुआ। नगरीकरण के कारण पुनः व्यापार को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ एवं मुद्रा का उद्भव एवं उसका प्रचलन बढ गया। व्यवसाय एवं व्यापार में प्रगति हुई एवं इनमें संलग्न व्यवसायियों एवं व्यापारियों ने अपने संगठन बनाये जिन्है श्रेणी कहा गया। अलग–अलग व्यवसाय में संलग्न उद्यमियों एवं व्यापारियों ने अपनी अलग–अलग श्रेणियाँ गठित कीं। श्रेणियों के लिए राजा या शासन की ओर स्वायत्तता प्राप्त थी। यह श्रेणियाँ आधुनिक बैंकों की तरह भी कार्य करती थीं, जिसके अन्तर्गत उनका कार्य धन जमा करना एवं उस पर ब्याज प्रदान करना था। व्यापार एवं वाणिज्य की उन्नति के लिए पूँजी की आवश्यकता महसूस की जाने लगी अतः महाजनों की श्रेणियॉ ऋण उपलब्ध कराती थी। राजा या व्यवसायी श्रेणियों में धन जमा करके मासिक या वार्षिक ब्याज पर अनेक जनकल्याणकारी या धार्मिक कार्य नियमित तौर पर सम्पन्न करवा सकते थे। इसी तरह की व्यवस्था को अक्षयनीवि कहा गया जिसका वर्णन किया है यह व्यवस्था इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि इसका अभिलेखों में वर्णन किया गया है हुविष्क के मथुरा अभिलेख में असहाय एवं निर्धन व्यक्तियों को अन्न दान जैसा लोकोपकारी कार्य अक्षयनीवि से किए जाने का उल्लेख हुआ है नासिक एवं सांची अभिलेख

भिक्षुओं उक्त राशि से सुविधाएं प्रदान करने की जानकारी प्रदान करते है। इन्दौर ताम्रलेख तेल का दान सामाजिक, आर्थिक उन्नति तथा लोककल्याणार्थ किए जाने का उल्लेख करता है इसी तरह बिहार स्तम्भ लेख, पहाड़पुर ताम्रलेख, एवं दामोदरपुर ताम्रलेख अक्षयनीवि से जनकल्याकारी कार्यो का उल्लेख करता है उक्त तथ्य प्राचीन काल में जनकल्याकारी कार्यो के प्रति समाज की रूचि को व्यक्त करते है जो समसामयिक दृष्टि से उपयोगी है।

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजाति विश्वविद्यालय
अमरकंटक, मध्य प्रदेश
[1]poonamk5013@gmail.com
[2]jinendrajainsagar1@gmail.com

सन्दर्भः

1. *मुखर्जी, राधाकुमुद (1919); लोकल गवर्नमेन्ट इन ऐन्शयंट इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली*
2. *मजूमदार, रमेशचन्द (1922); कार्पोरेट लाइफ इन एन्सियन्ट इण्डिया, द ओरीयन्टल बुक ऐजेन्सी, पूना,*
3. *श्रीवास्तव, के.सी. (2002); प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनिवर्सिटी प्रकाशन, नई दिल्ली*
4. *बाजपेयी, कृष्णदत्त (1992); ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पब्लिकेशन स्कीम जयपुर*
5. *गुप्त, पी. एल (2014) ; प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग–1, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, सप्तम संस्करण, वाराणसी*
6. *एफ. जे. फ्लीट (1988): कार्पस इन्स्कृप्शनम् इण्डिकेरम, 3, लेख संख्या 62 गवर्मेन्ट प्रेस, कलकत्ता*
7. *उपाध्याय, वसुदेव (1970); प्राचीन भारतीय अभिलेख, प्रज्ञा प्रकाशन, पटना*
8. *गुप्त, पी. एल (2013); प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग–2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी*
9. *पाण्डे, विमलचन्द (2003), प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद*

रामचरितमानस में भक्ति : क्या पंचम पुरुषार्थ है?

सत्यनारायण देवलिया

सारांश

चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) जीवन के चार लक्ष्यों के रूप में भारतीय नीतिशास्त्र एवं दर्शन में सामान्यतः मान्य है। इन चार पुरुषार्थों के सन्तुलित सेवन से पुरुष होने का अर्थ या उद्देश्य सिद्ध होता है मोक्ष प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य व अन्तिम पुरुषार्थ है मोक्ष अज्ञान से निवृत्ति के साथ दुःखों की आत्यांतिक निवृत्ति के साथ किन्ही दर्शनों के अनुसार चरम आनन्द की अवस्था है चरम पुरुषार्थ मोक्ष से भी आगे पंचम पुरुषार्थ के रूप में ''भक्ति'' की स्थापना भारतीय चिन्तन में निहित है, जिसमें मनुष्य चारों पुरुषार्थों का त्याग कर 'भक्ति' का वरण करना चाहता है वैदिक चिन्तन के वैष्णव मतों में यह स्थापना निहित दिखलाई पड़ती है यहाँ रामचरितमानस के आलोक में इसकी पुष्टि की गई है सामान्यतः भक्ति को भारतीय चिन्तन परम्परा में मनुष्य के चरम पुरुषार्थ मोक्ष का एक साधन या मार्ग बतलाया गया है पर पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित ''भक्ति'' स्वयं साध्य है और मोक्ष उसका अनुगामी है रामचरितमानस में विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न पात्रों के द्वारा 'भक्ति' प्रदान करने की ही प्रार्थना, कामना की गई है वरदान भी भक्ति मांगा गया हो फिर चाहे अविरलभक्ति हो, अनपायनी भक्ति हो। राम से भक्ति का वरदान पाने या भक्ति की याचना, कामना रामचरितमानस के अधिकांश प्रमुख पात्रों के द्वारा की गई है जिनमें प्रमुख है–वशिष्ठ, दशरथ, हनुमान, शबरी, जटायु, काग भुशुण्डि आदि सहित स्वयं मुक्तिदाता भगवान शंकर।

बीज शब्द : पुरुषार्थ, पराभक्ति, अपराभक्ति, अनपायनी भक्ति, अविरल भक्ति, मोक्ष

भारतीय दर्शन में मनुष्य के वास्तविक स्वरूप व उसके चरम लक्ष्य को लेकर पर्याप्त चिन्तन है तदनुरूप भारतीय नीतिशास्त्र एवं हिन्दू धर्म एवं दर्शन में मनुष्य के सर्वांगीण विकास एवं पूर्णता प्राप्ति के दृष्टिगत चार पुरुषार्थों की अवधारणा मान्य है जैसा कि विदित है कि मानव को अपने जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए चार पुरुषार्थों का सेवन करना चाहिए ये चार पुरुषार्थ जीवन के चार लक्ष्य है, जो हैः

1. धर्म (नैतिक मूल्य)
2. अर्थ (आर्थिक मूल्य)
3. काम (मानसिक मूल्य)
4. मोक्ष (आध्यात्मिक मूल्य)

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 27-40
Peer-reviewed biannual Research Journal

उपरोक्त चार पुरुषार्थों के संतुलित सेवन से मानव जीवन एवं समाज में तो संतुलन रहता ही है साथ ही मनुष्य एवं समाज कई व्याधियों व समस्याओं से मुक्त भी हो सकता है चार पुरुषार्थों में धर्म प्रथम पुरुषार्थ है जो मुख्यतः मनुष्य के नैतिक कर्तव्यों के सन्दर्भ में है अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष जीवन का चरम लक्ष्य है जिसे प्राप्त कर मनुष्य पूर्णता को प्राप्त कर सकता है

भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों/मतों में मानव के चरम लक्ष्य का विवेचन है, और चरम साध्य को मोक्ष/मुक्ति/अपवर्ग/केवल्य/निर्वाण/आत्म साक्षात्कार/ब्रह्म साक्षात्कार आदि संज्ञा से विभूषित किया गया है विभिन्न दर्शनों में तत्त्वमीमांसीय व ज्ञानमीमांसीय भेद के चलते चरम साध्य के अलग–अलग नाम व स्वरूप में कुछ भिन्नता अवश्य है पर कुछ सामान्यता है यथा यह अज्ञान निवृत्ति की अवस्था है, यह दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति की अवस्था है और वेदान्त आदि दर्शनों के अनुसार यह परम आनन्द की अवस्था है

पर यहाँ विचारणीय यह है कि क्या चरम पुरुषार्थ मोक्ष से भी आगे कोई पंचम पुरुषार्थ की अवधारणा क्या भारतीय चिन्तन में निहित है? इसे हम गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस के आलोक में देखने का प्रयास करेंगे।

भारतीय ज्ञान-परम्परा का उद्‌गम

प्राचीन काल में भारत में ज्ञान–परम्परा श्रुति परम्परा के रूप में थी। भारतीय ज्ञान–परम्परा साहित्यिक दृष्टि से सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में प्रस्फुटित होती है भारतीय दर्शन का प्रारम्भ भी इस दृष्टि से हम वेदों से ही मानते है जिसकी चरम परिणति वेदान्त में होती है तुलसीकृत रामचरितमानस कालक्रमानुसार साहित्यिक दृष्टि से उपरोक्त के बाद की रचना है पर इसमे वेद, उपनिषद्, पुराण, सूत्र साहित्य आदि सनातन परम्परा के ग्रन्थों व कुछ अन्यत्र से उपलब्ध श्री राम कथा में वर्णित सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति है या अन्य शब्दों में कहै तो इन सभी ग्रन्थों में वर्णित मानवीय मूल्यों व दार्शनिक सिद्धान्तों का निचोड़ या सार रामचरितमानस में निहित है जैसा कि रामचरितमानस में प्रारम्भ में ही तुलसीदास जी लिखते है।

नानापुराणनिगमागम सम्मत यद्।
रामायणे निगदितं क्वदिचन्योतोऽपि।।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।
भाषानिबन्धमतिमञजुलामातनोति।।[1]

अर्थात् अनेक पुराण, वेद और (तन्त्र) शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करता है

इस श्लोक के भाव से स्पष्ट है कि तुलसीदास रामचरितमानस में मनगणन्त नहीं लिख रहे है, वह शास्त्र सम्मत है यहाँ अन्तःकरण के सुख की बात है बाह्य रूप तो हमें बाह्य विषयों से प्राप्त होता है अन्तःकरण का सुख तो अन्तः में विराजमान जो पुरुष है उस पुरुषोत्तम को जानने से ही हो सकता है उन्हीं पुरुषोत्तम श्री राम की यह कथा है ऐसा नहीं कि वेद पुराण आदि में ब्रह्म/ईश्वर की चर्चा नहीं है पर तुलसीदास उसी गूढ़ तत्त्व का वर्णन मनोहर भाषा में निबद्ध कर रहे है, जिससे लोकभाषा में आम जन भी उस रस का आनन्द ले सकें। रामचरितमानस के श्री रामायण जी की आरती में भी यही बात निहित है :

गावत वेद पुरान अष्टदस।
छओं शास्त्र सब ग्रंथन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की।।

यहाँ उपरोक्त सन्दर्भित बातों के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि रामचरितमानस में वर्णित श्री राम कथा एवं कथा प्रसंग में स्थान–स्थान पर वर्णित दार्शनिक, सामाजिक, नैतिक आदि सिद्धान्त जो सहज, सरल एवं मनोहर भाषा में है वे वैदिक काल से चली आ रही शास्त्र एवं ज्ञान–परम्परा से सम्मत है तथा आत्म सुख या आत्म कल्याण के साधक है। कहीं न कहीं सभी दार्शनिक मतों व सिद्धान्तों का समन्वय व सार रामचरितमानस में परिलक्षित है

रामचरितमानस में भी यत्र–तत्र पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा का उल्लेख हमें देखने को मिलता है स्वयं रामचरितमानस के मुख्य पात्र राम व अन्य पात्रों में भी पुरुषार्थ चतुष्टय का उनके व्यावहारिक जीवन में संतुलित सेवन दृष्टिगोचर है

पर क्या कोई ऐसी भी अवस्था है जिसमें व्यक्ति मोक्ष जिसे परम सुख की भी अवस्था कहा गया है उसे भी न चाहकर उससे अलग कुछ चाहता है? या यूँ कहा जाए कि पुरुषार्थ चतुष्टय के अलावा कोई पंचम पुरुषार्थ है? रामचरितमानस के आलोक में इसका उत्तर होगा–हाँ। पुरुषार्थ चतुष्टय के अलावा पंचम पुरुषार्थ है भक्ति। प्रभु की निश्छल भक्ति में जो रस व आनन्द है कि भक्त धर्म, अर्थ एवं काम के साथ मोक्ष को भी वरण नहीं करना चाहता है एवं भक्ति के रस में डूबा रहना चाहता है अतः यहाँ चरम साध्य के रूप में भक्ति की कामना है यहाँ भक्ति की प्राप्ति में ही जीवन की सफलता मानी गई है

भक्ति क्या है?

शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से भक्ति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की भज धातु से हुई है भज धातु का अर्थ है सेवा करना, समर्पित होना। अर्थात् श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक इष्ट के प्रति समर्पण। प्रभु का अनुग्रह निश्छल भक्ति से ही प्राप्त होता है नारद भक्ति सूत्र में देवर्षि नारद भक्ति के लक्षण बतलाते हुए कहते है[2] :

1. अब हम भक्ति की व्याख्या करेंगे।
2. वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है
3. और अमृतस्वरूपा भी है
4. जिसको (परम प्रेमरूपा और अमृतरूपा भक्ति को) पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है (और) तृप्त हो जाता है
5. जिसके (प्रेमस्वरूपा भक्ति के) प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे (विषय–भोगों की प्राप्ति में) उत्साह होता है
6. जिसको (परम प्रेम रूप भक्ति को) जानकर ही मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध (शान्त) हो जाता है और आत्माराम बन जाता है
7. वह (प्रेमा भक्ति) कामनायुक्त नहीं है क्योंकि वह निरोध स्वरूपा है.....

यहाँ भक्ति को परा एवं अपरा रूप में देख सकते है। कहीं न कहीं अपरा भक्ति साधन रूप है, पर परा भक्ति स्वयं साध्य रूप है इसमें मुक्ति को भी त्याग कर केवल ईश्वर के चरणों में प्रेम होता है शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में पराभक्ति के रूप में भक्ति को परिभाषित करते हुए भक्ति सूत्र का प्रारम्भ किया गया है[3]:

1. अथातो भक्तिजिज्ञासा।।
2. अब भक्ति तत्त्व का विचार किया जाता है
3. सा परानुरक्तिरीश्वरे।।
4. वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति परम अनुरागरूपा है (इसे ही पराभक्ति कहा जाता है)
5. तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्।।

क्योंकि ईश्वर में जिसकी संस्थिति (सम्यक निष्ठा–भक्ति) है वह अमृतत्त्व को प्राप्त होता है, ऐसा श्रुति का उपदेश है

हालांकि श्रीमद्भागवद्पुराण व अन्य वैष्णव मतों में भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित होती दिखलाई पड़ती है महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते है कि भागवत से पूर्व धर्मार्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थों की परिकल्पना बहुत अच्छी तरह से प्रस्तुत श्रुति, स्मृति, पुराण आदि में हो गई है, भागवत पहली बार हमको समझाती है कि एक पंचम पुरुषार्थ और रहा है और वो है भक्ति, भक्ति एक अद्भुत पुरुषार्थ है भागवत और श्री वल्लभाचार्य के मत से भक्ति भी पुरुषार्थ है, अतः जो पुरुष धर्मार्थकाममोक्ष भक्ति का समायोजन करता है वो ही अपने सम्प्रदाय में सच्चा 'पुरुष' है

इस आलेख में रामचरितमानस के आलोक में ही भक्ति को पंचम पुरुषार्थ के रूप में देखने का प्रयास किया है जिसकी पुष्टि रामचरितमानस के विभिन्न प्रसंगों से होती है

राम से वन में मिलने जाते हुए भरत रास्ते में तीर्थराज त्रिवेणी संगम से यही प्रार्थना करते है।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।[4]

अर्थात् न अर्थ की रुचि (इच्छा) है, न धर्म की, न काम की और न ही मैं मोक्ष चाहता हूँ। जन्म–जन्म में मेरा श्रीराम जी के चरणों में प्रेम हो, बस यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं। यहाँ चारों पुरुषार्थों की कामना को त्याग कर श्री राम के चरणों में प्रेम ही जीवन की सफलता मानी गयी है भक्ति के कई रूप शास्त्रों में वर्णित है। भेद भक्ति में निश्छल भक्त ईश्वर के साथ सायुज्य नहीं चाहता। वह ईश्वर के चरणों में निरंतर प्रेम के कारण या दास्य भाव आदि के कारण अविरल (निरंतर रहने वाली) भक्ति की कामना करता है

भक्ति प्राप्ति की कामना बालकाण्ड में शतरूपा के द्वारा भी प्रकट की गई है जब कई वर्षों के कठोर तप के बाद ईश्वर प्रगट हुए एवं शतरूपा से वर माँगने को कहा। शतरूपा वर माँगते हुए कहती है :

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।।
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।[5]

अर्थात् हे नाथ! आपके जो निज जन है वे जो (अलौकिक, अखण्ड) सुख पाते है और जिस परम गति को प्राप्त होते है।

हे प्रभो! वही सुख, वही गति वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम वही ज्ञान और वही रहन–सहन कृपा करके हमें दीजिए।

यहाँ भी चरणों में प्रेम एवं भक्ति की कामना है इस कामना में यह भी स्पष्ट है कि भक्ति नीरस नहीं है, भक्ति के साथ ज्ञान भी है यहाँ एक बात और स्पष्ट होती है कि भक्ति साधन भी है और साध्य भी है पुरुषार्थ चतुष्टय में परम साध्य मोक्ष है अलग–अलग गुण स्वभाव के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के मार्ग भी मुख्यतः तीन बतलाये है ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग एवं भक्ति मार्ग। ब्रह्म साक्षात्कार/आत्म साक्षात्कार प्रायः मोक्ष की संज्ञा से विभूषित है

मनुशतरूपा भक्ति मार्ग पर चलते हुए ब्रह्म साक्षात्कार करते है अतः भक्ति साधन रूपा है पर ब्रह्म साक्षात्कार होने पर भी शतरूपा ईश्वर के सगुण स्वरूप की भक्ति एवं चरणों में प्रेम का वरदान माँगती है यह भक्ति साध्यरूपा है जिसे पंचम पुरुषार्थ के रूप में देख सकते है।

ऐसा नहीं कि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का वृतान्त रामचरितमानस में न हो। तुलसीदास भी रामचरितमानस में जीवन के इन मूल्यों को स्वीकारते है। पुरुषार्थ के मूल में धर्म की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि मानते हुए धर्मानुकूल अर्थ एवं काम का श्री राम कथा के प्रसंगों में यथोचित वर्णन है परम गति के रूप में मोक्ष निर्वाण का भी उल्लेख है पर रामचरितमानस में प्रभु के अनुग्रह के बिना मोक्ष भी प्राप्तव्य नहीं है प्रभु का अनुग्रह निश्छल भक्ति से ही प्राप्त होता है भक्ति के कई रूप रामचतिमानस में देखने को मिलते है।

भक्ति के विभिन्न रूपों में कामनाओं का नाश एवं मात्र ईश्वर/प्रभु राम के चरणों में अनुराग है रामचरितमानस में निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म दोनों के सम्बन्ध में विचार है

ब्रह्म सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है पर अनन्य प्रेम के वशीभूत होकर सगुण रूप में प्रकट होता है जो बालकाण्ड की इन चौपाइयों में शम्भू पार्वती जी से कहते है[6] :

जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती।
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ वचन एक कहेऊँ।।
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।
देस काल दिसि विदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।

अतः उपरोक्त संवाद से स्पष्ट है कि भक्ति किसी भी रूप में हो सकती है पर उसमें प्रेम की प्रगाढ़ता होती है भक्त के अनन्य प्रेमवश ब्रह्म सगुण रूप में प्रकट होते है। श्रीमदभगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण कहते है मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूँ। (उन प्राणियों) में न तो मेरा कोई दोषी/अप्रिय है और न कोई प्रिय है परन्तु जो प्रेम पूर्वक मेरा भजन करते है, वे मुझमें है और मैं भी उनमें हूँ।[7]

परा भक्ति के विभिन्न रूप

रामचरितमानस में ऐसी परा भक्ति कई रूपों में दिखायी पड़ती है जिसमें अन्य सभी कामनाओं का त्याग करके भक्त सिर्फ श्रीराम के चरणों में ही प्रेम चाहता है भक्ति यहाँ साध्य है मात्र साधन नहीं। अतः रामचरितमानस में भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित होती दिखलायी पड़ती है

अनपायनी भक्ति : ऐसी भक्ति जिसका कभी अपाय (नाश) न हो। भगवान के चरणों में प्रेम दिनों–दिन बड़ता जाए, कभी घटे नहीं। जो प्रेम क्षण भर में बड़ता है, और क्षण भर में घट जाता है वह वास्तविक प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम तो प्रतिक्षण बड़ता ही रहता है ऐसी प्रेमायुक्त भक्ति

अनपायनी भक्ति है

रामहि केवल प्रेमु पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा।।[8]
सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी प्रभु श्री राम से अनपायनी भक्ति का वर माँगते है:[9]
नाथ भगति अति सुख दायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।

अर्थात् हे नाथ! मुझे अत्यन्त सुख देने वाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिए। हनुमान जी की अत्यन्त सरल वाणी सुनकर हे भवानी! तब प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने एवमस्तु (ऐसा ही हो) कहा।

हनुमानजी द्वारा अनपायनी भक्ति के वर माँगने में कुछ बातें स्पष्टतया निहित है कि यह भक्ति निश्छल है यह भक्ति ईश्वर की कृपा से प्राप्त होती है यह भक्ति अत्यन्त ही सुख देने वाली है तथा सरल हृदय एवं निश्छल प्रेम से कोई भी प्राणी इस अनपायनी भक्ति को ईश्वर अनुग्रह से प्राप्त कर सकता है और यह भक्ति का भाव ईश्वर के स्वभाव या स्वरूप के ज्ञान से ही आता है अर्थात् जिसे ज्ञान हो जाता है उसे फिर भक्ति के बिना कुछ प्राप्तव्य नजर नहीं आता।

उमा रमा सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनि तजि भाव न आवा[10]

अर्थात् हे उमा जिसने श्री राम जी का स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती।

उमापति महादेव स्वयं अनपायनी भक्ति का वर श्रीराम से माँगते है :
बार–बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।। {रामचरितमानस 7.14 (क)}

अर्थात् मैं आपसे बार–बार यही वरदान माँगता हूँ कि मुझे आपके चरणकमलों की अचल भक्ति और आपके भक्तों का सत्सङ सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मी पते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिए।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि यह वर स्वयं उमापति महादेव लक्ष्मीपति श्री राम से माँग रहे है जिनके लिए चारों पुरुषार्थ अगम नहीं है अतः यहाँ भी भक्ति को सर्वोपरि स्थान है मुनि वशिष्ठ भी इसी भक्ति का वर माँगते है :

दोहा :

नाथ एक बर मागऊँ राम कृपा करि देहु।
जन्म–जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।। (रामचरितमानस 7.49)
उत्तरकाण्ड में सनकादिक मुनि भी श्री राम जी से अनपायनी भक्ति का वर माँगते है :
परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्री राम।। (उ.का., दोहा 34)

स्पष्ट है कि यहाँ मन की कामना की परिपूर्णता भक्ति में ही है जो प्रभु की कृपा से प्राप्त होने वाली है अतः इसे परम पुरुषार्थ के रूप में देख सकते है। इस भक्ति की प्राप्ति होने पर क्या घटित होता

है या इस भक्ति के क्या प्रभाव है, यह उत्तरकाण्ड के उपरोक्त दोहे के बाद की चौपाइयों से स्पष्ट होता है :

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिविध ताप भव दाप नसावनि।।
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु।।

अर्थात् हे रघुनाथ जी! आप अपनी अत्यन्त पवित्र करने वाली और तीनों प्रकार के तापों और जन्म–मरण के क्लेशों का नाश करने वाली भक्ति दीजिए। हे शरणागतों की कामना पूर्ण करने के लिए कामधेनु और कल्पवृक्ष प्रभो! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिए।

आस त्रास इरिषादि निवारक। बिनय बिवेक बिरति बिस्तारक।।
भूप मौलि मनि मंडल धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी।।

अर्थात् आप (विषयों की) आशा, भय और ईर्ष्या आदि का निवारण करने वाले है तथा विनय, विवेक और वैराग्य के विस्तार करने वाले है। हे राजाओं के शिरोमणि एवं पृथ्वी के भूषण श्री राम जी! संसृति (जन्म–मृत्यु के प्रवाह) रूपी नदी के लिए नौकारूपी अपनी भक्ति प्रदान कीजिए। उपरोक्त चौपाइयों से स्पष्ट है भक्ति अत्यन्त पावन होती है

प्रेमा भक्ति का एक रूप बालकाण्ड में सीता जी की विनती में देख सकते है :

तौं भगवान सकल उर बासी।
करिहि मोहि रघुबर की दासी।। (श्रीरामचरिमानस 1.258.3)

सत्य-प्रेम के रूप में दशरथ जी को राम के प्रति वात्सल्य प्रेम भाव देख सकते है कि राम के वियोग में प्राण ही त्याग दिए –

बंदऊँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ।। [श्रीरामचरितमानस 1.16]

अर्थात् : मैं अवध के राजा श्री दशरथ जी की वन्दना करता हूँ, जिनका श्री राम जी के चरणों में सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनदयालु प्रभु के बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को मामूली तिनके की तरह त्याग दिया।

अविरल भक्ति : रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास निरंतर प्रेम को अविरल भक्ति का नाम देते है। यह अविरल भक्ति पूर्ण निष्काम होती है इसलिए इसे परम विशुद्ध भक्ति कहते है। पुराण एवं श्रुतियाँ जिसका गान करती है और किसी विरले को ही यह प्राप्त होती है संसार की सभी ऋद्धि एवं सिद्धि यहाँ तक की मोक्ष भी इस भक्ति के समक्ष वांछित नहीं होता है रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में काकभुसुंडि और प्रभु श्री राम के संवाद में यह निहित है :

दो. : सुनि सप्रेम मम बानी देखि देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास।। [उ.का., 83 (क)]

भावार्थ : मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर अपने दास को दीन देखकर रमानिवास श्री राम जी सुखदायक, गम्भीर और कोमल वचन बोले

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि।। [उ.का., 83 (ख)]

हे काकभुशुण्डि! तू मुझे अत्यन्नत प्रसन्न जानकर वर माँग।

अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा सम्पूर्ण सुखों की खान मोक्ष।

उपरोक्त दोहे की बाद की चौपाइयों में सभी तरह के वर का प्रलोभन है। –

ग्यान बिबेक बिरति विज्ञाना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना।
आज देऊँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं।।

अर्थात् ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान (तत्त्वज्ञानद्ध और वे अनेक गुण जो जगत् में मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, ये सब में आज तुझे दूँगा, इसमें संदेह नहीं। जो तेरे मन भावे, सो माँग ले।।

सुनि प्रभु वचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ।।
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही।।

भावार्थ : प्रभु के वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेम में भर गया। तब मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुखों के देने की बात कही, यह तो सत्य है; पर अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।।
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउ खगराजा।।
जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरू नेहू।।
मन भावत बर मागऊँ स्वामी। तुम उदार उर अंतरजामी।।

अगले ही दोहे में हम देखते है कि काकभुसुंड जी अष्ट सिद्धि नव निधि आदि के वर के साथ मोक्ष तक का वर प्रभु राम से नहीं माँगते वे केवल अविरल भक्ति का वर माँगते है जो भक्ति को पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित करता है,

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।। [उ.का., 84 (क)]

भावार्थ : आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य निष्काम) भक्ति को श्रुति और पुराण गाते है जिसे योगीश्वर मुनि खोजते है, और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोई निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।। [उ.का., 84 (ख)]

हे भक्तों के (मन–इच्छित फल देने वाले) कल्पवृक्ष! हे शरणागत हे हितकारी! हे कृपासागर! हे सुखधाम श्री राम जी। दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिए। अरण्यकाण्ड में गीधराज जटायु भी अविरल भक्ति का वर माँगकर देह त्याग करता है :

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।। (अरण्यकाण्ड –32)

नवधा भक्ति : अरण्यकाण्ड में ही श्री राम शबरी को भक्ति महत्त्व साथ भक्ति के नौ भेद (नवधा भक्ति) का निरूपण करते है :

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।। (राम.च.मा.3.34.3)

अर्थात् जाँति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता–इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मुनष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल (शोभाहीन) दिखता है

भक्ति की इस महिमा का वर्णन स्वयं भक्ति प्रदाता श्री राम के द्वारा किया गया है आगे उन्हीं श्री राम के द्वारा भक्ति के नौं भेदों का उपदेश है :

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुन धरू मन नाहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।। (रा.च.मा. 3.34.4)

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधाान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा–प्रसंग में प्रेम।

दो – गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि आन।। (रा.च.मा.3.35)

तीसरी भक्ति है अभिमान रहित होकर गुरू के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करें।

मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।। (रा.च.मा. 3.35.1)

मेरे (राम) मन्त्र का जाप और मुझमें दृड़ विश्वास–यह पांचवीं भक्ति है, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा।। (रा.च.मा.3.35.2)

सातवीं भक्ति है जगतभर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारिपुरुष सचराचर कोई।। (रा.च.मा. 3.35.3)

नवमी भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनको एक भी होती है, वह स्त्री पुरुष, जड़ चेतन को भी हो–

सोई अतिसय प्रिय भाामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भई सोई।। (राम.च.मा.3.35.4)

हे भामिनी! मुझे वही अत्यन्त प्रिय है फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है अतएव जो गति योगियों को दुर्लभ है, वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी है इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि जिसके मन में निश्छल भक्ति प्रभु के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो, नवधा भक्ति में ये भक्ति किसी भी रूप में हो, सच्चा भक्त किसी भी योनि, वर्ण, धर्म, जाति आदि का हो वह योगियों के लिए भी दुर्लभ से दुर्लभ गति को सुलभता से प्राप्त कर लेता है यह भक्ति पंचम पुरुषार्थ है

काकभुशुण्डि ने भी कौए के शरीर में रहते हुए इस दुर्लभ भक्ति को प्राप्त किया था। जिस पर पार्वती को संदेह था। त्रिपुरारी से संवाद के दौरान भक्ति की महिमा व दुर्लभता एवं सच्चे भक्त के लिए सुलभता

उत्तरकाण्ड की अग्रिम चौपाइयों से प्रकट होती है :

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होई धर्म ब्रत धारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई।।

भावार्थ : हे त्रिपुरारी! सुनिये, हजारों मनुष्यों में कोई एक धर्म के व्रत का धारण करने वाला होता है और करोड़ों धर्मात्माओं में कोई विषय से विमुख (विषयों का त्यागी) और वैराग्य परायण होता है

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई।।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।। (उ.का., 53.2)

अर्थात् श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तों में कोई एक ही सम्यक् (यथार्थ) ज्ञान को प्राप्त करता है) और करोड़ों ज्ञानियों में कोई एक ही जीवन्मुक्त होता है जगत् में कोई विरला ही ऐसा (जीवन्मुक्त) होगा।

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लाभ बिग्यानी।।
धर्मशील बिरक्त अरू ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।। (उ.का. 53.3)

हजारों जीवनमुक्तों में भी सब सुखों की खान, ब्रह्म में लीन विज्ञानवान पुरुष और भी दुर्लभ है धर्मात्मा, वैराग्यवान, ज्ञानी, जीवनमुक्त और ब्रह्मलीन –

सब ते सो दुर्लभ सुर राया। राम भगति रत गत मद माया।।
सो हरिभगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई।। (उ.का. 53.4)

अर्थात् इन सबमें भी देवाधिदेव महादेवजी! वह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ है जो मद और माया से रहित होकर श्री राम जी की भक्ति के परायण हों। हे विश्वनाथ! ऐसी दुर्लभ हरिभक्ति को कौआ कैसे पा गया मुझे समझाकर कहिए।

यहाँ स्वयं पार्वती के श्रीमुख से भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में सिद्ध होती है यहाँ पार्वती जी उत्तरोत्तर क्रम में श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर दुर्लभ मनुष्यों के लक्षण को शिव के समक्ष कह रही है अंत में सबसे श्रेष्ठ एवं दुर्लभ भक्त को बतला रही है। पार्वती श्रेष्ठ मनुष्य के रूप में धर्मात्मा आचरण वान व्यक्ति को हजारों में एक बतला रहीं। उससे श्रेष्ठ करोड़ों में कोई एक विषयों में विमुख अर्थात् विषयों का त्यागी, उससे श्रेष्ठ करोड़ों में कोई एक सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करने वाला, उससे श्रेष्ठ करोड़ों ज्ञानियों में कोई एक जीवनमुक्त, उससे श्रेष्ठ हजारों जीवनमुक्त में कोई एक जो सब सुखों की खान है, ब्रह्म में लीन विज्ञानवान पुरुष जो कि दुर्लभ है और इन सभी से दुर्लभ है वह प्राणी जो मद एवं माया से रहित श्री राम जी की भक्ति के परायण हो। अतः भक्ति यहाँ साध्य है और वह मोक्ष से भी सर्वोपरि है अतः भक्ति यहाँ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (जीवनमुक्त एवं ब्रह्मलीन) के आगे पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रमाणित होती है साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि भक्ति रूपी अति दुर्लभ पंचम पुरुषार्थ कोई भी प्राणी प्राप्त कर सकता है मात्र मानव एक सीमित नहीं है हनुमान, जटायु, कागभुसुंडि आदि रामचरितमानस में इसके प्रमाण है।

भक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष में सम्बन्ध

भारतीय दर्शन के प्रायः सभी मतों (चार्वाक को छोड़कर) का इस बात पर मतैक्य है कि अज्ञान या अविधा बन्धन एवं दुःख का कारण है एवं ज्ञान मुक्ति या मोक्ष का कारक है पर मोक्ष के पथगामी का उद्देष्य होता है अज्ञान से निवृत्ति व ज्ञान की प्राप्ति पर भक्त का लक्ष्य होता है प्रभु की अविरल भक्ति की प्राप्ति जिसमें ज्ञान वैराग्य मोक्ष आदि तो एक सच्चे भक्त के अनुगामी हो जाते है।

ज्ञान एवं भक्ति में अन्तर

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान एवं भक्ति का अन्तर बतलाते हुए यह भी सिद्ध किया है कि विज्ञानी मुनि भी सभी सुखों की खान भक्ति की याचना क्यों करते है गरूड़ जी एवं काकभुशुण्डि जी का इस सन्दर्भ में संवाद यहाँ उल्लेखनीय है :

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।
सुनि उरगारि वचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना।। (उ.का., 114.6)

भावार्थ : हे कृपा के धाम! हे प्रभो! ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है? यह सब मुझसे कहिए। गरुड़ जी के वचन सुनकर सुजान काकभुसुण्डि जी ने सुख माना और आदर के साथ कहा :

भगतहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु विहंगवर।। (उ.का., 114.7)

भावार्थ : भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है दोनों ही संसार से उत्पन्न क्लेशों को हर लेते है। हे नाथ! मुनीश्वर इनमें कुछ अन्तर बतलाते है। हे पक्षिश्रेष्ठ! उसे सावधान होकर सुनिए।

ग्यान विराग जोग विग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती।। (उ.का., 114.8)

भावार्थ : हे हरिवाहन! सुनिए ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान–ये सब पुरुष है; पुरुष का प्रताप सब प्रकार से प्रबल होता है अबला (माया) स्वाभाविक ही निर्बल और जाति (जन्म) से ही जड़ मूर्ख होती है

दो. – पुरुष त्यागि सक नारिहि जो विरक्त मतिधीर।
न तु कामी विषयाबस विमुख जो पद रघुवीर।। [उ.का., 115 (क)]

भावार्थ : परन्तु जो वैराग्यवान और धीर पुरुष है वही स्त्री को त्याग सकते है, न कि वे कामी पुरुष, जो विषयों के वेश में है (उनके गुलाम है) और श्री रघुवीर के चरणों से विमुख है।

सो.–सोइ मुनि ग्यान निधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट।। [उ.का, 115 (ख)]

भावार्थ : वे ज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चन्द्रमुखों को देखकर विवश (उसके अधीन) हो जाते है। हे गरुड़ जी! साक्षात् भगवान विष्णु की माया ही स्त्रीरूप से प्रकट है

इहाँ न पच्छपात कहु राखऊँ। वेद पुरान संत मत भाषऊँ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।। (उ.का., 115.1)

अर्थात् : यहाँ में कुछ पक्षपात नहीं रखता। वेद पुराण और संतों का मत (सिद्धान्त) ही कहता हूँ। हे गरुड़ जी! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु निर्तकी बिचारी।। (उ.का., 115.2)

आाप सुनिए, माया और भक्ति–ये दोनों स्त्रीवर्ग की है, यह सब कोई जानते है। फिर श्री रघुवीर को भक्ति पियारी है माया बेचारी तो निश्चय ही नाचने वाली (नटिनीमात्र) है

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।।
राम भगति निरूपम निरूपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी।। (उ.का., 115.3)

भावार्थ : श्री रघुनाथ जी भक्ति के विशेष अनुकूल रहते है। इसी से माया उससे अत्यन्त डरती है जिसके हृदय में उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध) रामभक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक–टोक) के बसती है :

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी।। (उ.का., 115.4)

भावार्थ : उसे देखकर माया सकुचा जाती है उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर (चला) सकती। ऐस विचारकर ही जो विज्ञानी मुनि है, वे भी सब सुखों की खानि भक्ति की ही याचना करते है।

भक्ति की याचना क्यों? या भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में क्यों स्वीकारें, उसकी तार्किक व्याख्या उपरोक्त प्रसंग में निहित है

पुनः ज्ञान और भक्ति के भेद में काकभुसुण्डि जी गरुड़ जी को उपदेश देते है। विस्तार भय से पूरा प्रसंग यहाँ वर्णित नहीं है उत्तरकाण्ड में यह पूरा प्रसंग हम देख सकते है। ज्ञान मार्ग के अनुशासन से कैवल्य जेसा अति दुर्लभ परम पद प्राप्त होता है ज्ञान पंथ की अनुसरण बड़ा ही दुरूह है पर भक्ति में यही पद बिना इच्छा के स्वतः ही प्राप्त हो जाता है जो कागभुसुण्डि एवं गरुड़ संवाद में वर्णित है :

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेश होइ नहिं बारा।।
जे निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई।। (उ.का., 118.1)

अर्थात् ज्ञान का मार्ग कृपाण (दुधारी तलवार) की धार के समान है हे पक्षिराज! इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्बिघ्न निबाह लें जाता है, वही कैवल्य (मोक्ष) रूप परम पद को प्राप्त करता है

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुराना निगम आगम बद।।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई।।

भावार्थ : संत, पुराण, वेद और (तन्त्र आदि) शास्त्र (सब) यह कहते है कि कैवल्यरूप परम पद अत्यन्त दुर्लभ है, किन्तु हे गुसाई! वही (अत्यन्त दुर्लभ) मुक्ति श्री राम जी को भजने से बिना इच्छा किये भी जबरदस्ती आ जाती है

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोहि भाँति कोउ करै उपाई।।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।। (उ.का., 118.3)

अर्थात्–जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ों प्रकार के उपाय क्यों न करे। वैसे ही, हे पक्षिराज! सुनिये, मोक्षसुख भी श्री हरि की भक्ति को छोड़कर नहीं रह सकता।

अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादर भगति लुभाने।।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा।।
संसृति मूल अबिद्या नासा।। (उ.का., 118.4)

ऐसा विचारकर बुद्धिमान हरिभक्त भक्ति पर लुभाए रहकर मुक्ति का तिरस्कार कर देते है। भक्ति करने से संसृति (जन्म–मृत्यु संसार) की जड़ यह अविद्या बिना ही यत्न और परिश्रम के (अपने–आप) वैसे ही नष्ट हो जाती है

भोजन करिअ तृपिति हित लागी।
जिमि सो असन पचवै जठरागी।।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई।
को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।। (उ.का., 118.5)

जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्ति के लिए और उस भोजन को जठराग्नि अपने आप (बिना हमारी चेष्टा के) पचा डालती है, ऐसी सुगम और परम सुख देने वाली हरिभक्ति जिसे न सुहावे, ऐसा मूढ़ कौन होगा?

भक्ति प्राप्ति के साधन

प्रभु के प्रति अविरल, निश्छल एवं प्रगाढ़ प्रेम के रूप में यह अविरल भक्ति/अनपायनी भक्ति आदि संज्ञा से विभूषित है, जो साधना रूप में, सच्ची भक्ति एवं प्रभु की कृपा से प्राप्त होती है नारद भक्ति सूत्र एवं शांडिल्य सूत्र में भक्ति को ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा कहा है अतः भक्ति एवं परम प्रेम में अन्तर नहीं है ईश्वर के प्रति परम प्रेम जब जाग्रत होता है एवं ईश्वर की कृपा होने पर परा–भक्ति भक्त को प्राप्त होती है परा–भक्ति के लिए भक्त को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सभी तरह की कामनाओं का त्याग करना पड़ता है भक्ति रस के आनन्द के लिए अन्य रसों के आनन्द की अभिलाषा को त्यागना पड़ता है

निष्कर्ष

भारतीय सनातन परम्परा के अनुकूल रामचरितमानस में भी पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की अवधारणा निहित है, जिसमें मोक्ष परम पुरुषार्थ है जिसे कैवल्य, निर्वाण, मुक्ति आदि पदों से रामचरितमानस में वर्णित किया गया है जो अति दुर्लभ एवं परम सुख की अवस्था है पर सगुण उपासक उस दुर्लभ पद को भी त्यागते हुए पंचम पुरुषार्थ के रूप में भक्ति का वरण/याचना करते है। क्योंकि परम पद मोक्ष पद तो स्वतः ही बगैर याचना के सच्चे भक्त को प्राप्त हो जाता है अतः रामचरितमानस में, भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित है

दो. – निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि।। (किष्किन्धाकाण्ड, दोहा 26)

देवता पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणों के लिए प्रभु अपनी इच्छा से (किसी कर्मबन्धन से नहीं) अवतार लेते है। यहाँ सगुणोपासक भक्तगण (सालाक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य) सब प्रकार के मोक्षों को त्यागकर उनकी सेवा में साथ रहते है। अविचल भक्ति में अक्षय सुख का परम पद मोक्ष तो प्राप्त स्वतः ही होता है, एवं परिणामस्वरूप कई सद्गुण सिद्धि आदि अपने आप आ जाते है। पर कहीं न कहीं मोक्षानन्द से भी बड़कर रस एवं आनन्द की प्राप्ति भक्ति में है रामचरितमानस के उपरोक्त वर्णित उद्धरणों/संवादों से भक्ति पंचम पुरुषार्थ के रूप में इसलिए भी प्रतिष्ठित होती है क्योंकि यहाँ भक्ति की स्वतंत्र रूप में अभ्यर्थना की गई है जैसा कि पूर्व में ये वर्णित किया है कि भक्ति साधन एवं साध्य की दृष्टि से दो रूप में दिखलाई पड़ती है मोक्ष प्राप्ति के तीन प्रमुख साधनों (ज्ञान, भक्ति एवं कर्म) में भक्ति एक साधन

है इसी आधार पर श्रीमद्भागवद्गीता में ज्ञान योग, कर्मयोग एवं भक्तियोग मानव के गुण एवं स्वभाव के आधार पर वर्गीकृत है। पर साध्य रूप में 'भक्ति' स्वयं एक स्वतंत्र पुरुषार्थ के रूप में भागवत एवं अन्य वैषणव सम्प्रदायों में दिखलाई पड़ती है जो रामचरितमानस के विभिन्न प्रसंगों से भी सिद्ध होती है जहाँ रामचरितमानस में पुरुषार्थ चतुष्टय स्वीकार्य है वहीं रामचरितमानस के अलग–अलग पात्र धर्म, अर्थ, काम यहाँ तक कि मोक्ष का भी त्याग करके भक्ति प्राप्ति की याचना करते है। अतः यहाँ चरम साध्य के रूप में भक्ति ही दिखलाई पड़ती है

अतः, यह निष्कर्ष अनुचित व अप्रामाणिक नहीं होगा कि रामचरितमानस में भक्ति पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के अतिरिक्त एक स्वतंत्र पंचम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित है और यह ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूप भक्ति पुरुषार्थ चतुष्टय से भी सर्वोच्च है रामचरितमानस के अन्तिम दोहे में भी इसी बात की पुष्टि है

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।। [(रा.च.मा., 7.130 (ख)]

दर्शनशास्त्र विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.)

सन्दर्भः

1. *श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास विरचित श्री रामचरितमानस, मझला साइज, टीकाकार–हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2060 तिहत्तरवाँ संस्करण, प्रथम सोपान, प्रारम्भ से श्लोक 1 से 7 तक, पृष्ठ 1–2*
2. *नारद–भक्ति–सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्र : गीताप्रेस गोरखपुर, वर्ष 2025, नारद भक्ति सूत्र, श्लोक (2–7) (पृष्ठ 1–2)*
3. *नारद–भक्ति–सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्र : गीता प्रेस, गोरखपुर, वर्ष 2025, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, प्रथम अध्याय, प्रथम आह्निक श्लोक –1–3, पेज–19–20*
4. *श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस, मझला साइज, टीकाकार–हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2026 तिहत्तरवाँ संस्करण, अयोध्याकाण्ड, दोहा 204, पृष्ठ 467*
5. *वही, बालकाण्ड, दोहा 150, पृष्ठ 132*
6. *वही, बालकाण्ड, दोहा 184 के बाद की चौपाइयाँ, पृष्ठ 159*
7. *श्रीमदभगवद्गीता : गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 9, श्लोक 29*
8. *श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास विरचित श्री रामचरितमानस, मझला साइज, टीकाकार – हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2060, तिहत्तरवाँ संस्करण, अयोध्याकाण्ड, दोहा 136 के बाद पृष्ठ 415*
9. *वही, सुन्दरकाण्ड, दोहा 33 के बाद पृष्ठ 684–685*
10. *वही*
11. *वही, उत्तरकाण्ड, दोहा 83 के बाद की चौपाइयाँ (1–4) पृष्ठ 907–908*

गिरमिटिया अनुबंध :
श्रम की राजनीति एवं समुद्री यात्रा की चिकित्सा व्यवस्था

विजय प्रकाश सिंह[1], बी. के. श्रीवास्तव[2]

सारांश

यह शोध लेख उत्तर भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित गिरमिटिया व्यवस्था के स्वरूप को समझने का प्रयास करता है इसमें प्रवासन के कारणों और आरंभिक गिरमिटिया अधिनियमों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है लेख में, विभिन्न उपनिवेशों के बगानों में हुए गिरमिटिया मजदूरों के प्रवासन की आंकड़ों के साथ–साथ समुद्री यात्राओं के दौरान कुलियों की मृत्यु दर को भी दर्शाया गया है यह शोध पत्र यात्रा के समय उपलब्ध चिकित्सा सुविधाएं एवं मजदूरों के मृत्यु दर में बढ़ोतरी के कारणों की छानबीन करता है यह लेख चिकित्सा रिपोर्टों और प्रवासी श्रमिकों की कृतियों का समीक्षा करता है और तर्क देता है कि शुरुआती दिनों यह व्यवस्था मानवीय कल्याण से प्रेरित न होकर आर्थिक लाभ से प्रेरित थी। साथ ही, श्रमिकों की श्रम दक्षता और शारीरिक नियंत्रण के जटिल अंतर्संबंध पर आधारित थी। प्रस्तुत लेख विभिन्न प्रकार के प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों द्वारा इस धारणाओं की समीक्षा करता है

बीज शब्द : गिरमिटिया, अधिनियम, प्रवासन, अनुबंध, जीविकोपार्जन, करार–प्रथा, दास प्रथा, औपनिवेशिक भारत

प्रस्तावना

दास प्रथा की समाप्ति के बाद औपनिवेशिक बगानों में सस्ते मजदूरों की निरंतर आपूर्ति में कमी हो गई। जिसके कारण बगानों के औद्योगिक व्यापार पर आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। निरंतर श्रम आपूर्ति को बनाए रखने के लिए पूंजीवादियों ने सरकार के सहयोग से एक व्यवस्थित अनुबंध प्रणाली का सूत्रपात किया। जिसे गिरमिटिया व्यवस्था के नाम से जाना जाता है यह व्यवस्था बागान मालिकों और प्रवासी श्रमिकों के बीच एक विशेष अनुबंध पर आधारित थी।

इस व्यवस्था की सफलता मजदूरों के 'श्रम दक्षता' (स्वस्थ शरीर) पर निर्भर करती थी। इसीलिए मजदूरों को बागानों में भेजने से पहले उनका चिकित्सीय परीक्षण किया जाता था। यह परीक्षण नस्लीय दृष्टिकोण से भी प्रभावित था। यहाँ मजदूरों के युवा शरीर अर्थात् सक्षम शरीर का चयन किया जाता था क्योंकि सक्षम शरीर को बगानों की आर्थिक उन्नति के रूप में देखा जाता था।

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 41-48
Peer-reviewed biannual Research Journal

इस व्यवस्था ने चिकित्सीय संरचना को विकसित किया था ताकि शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति को बाहर कर दिया जाए, ऐसे लोगों को आर्थिक हानि की दृष्टि से देखा जाता था। औपनिवेशिक सरकार ने चिकित्सा हस्तक्षेप का उपयोग श्रमिकों को अनुशासित करने, उनकी गतिशीलता को प्रतिबंधित करने और श्रम शक्ति के पुरुत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए किया।[1]

प्रवासन के कारण

मनुष्य अपने जीविकोपार्जन के लिए प्राचीन काल से ही अन्य स्थानों पर प्रवास करता रहा है यह प्रवास सिर्फ भौतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि संस्कृतिक दृष्टिकोण से भी होता है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसीलिए प्रवास के पश्चात् जहाँ वह जाता है वहाँ की संस्कृति के साथ खुद को समायोजित करने का प्रयास करता है सी. जे. लेविस लिखते है "प्रवास एक दोतरफा प्रक्रिया है एक तरफ यह आर्थिक और सामाजिक बदलाव की प्रतिक्रिया है, वहीं दूसरी तरफ एक आने वाले बदलाव की उत्प्रेरक भी, जहां लोग प्रवास कर रहे है और जहां से लोग पलायित हो रहे है।"[2]

भारत में नौकरी के लिए प्रवास करने की संस्कृति बहुत प्राचीन है काम की तलाश में गांव से शहर की ओर भारी संख्या में लोग पलायित करते है। "आनंद यांग ने लिखा है, बिहार के सारण जिले से हर साल मौसमी तौर पर हजारों मजदूरों के पूर्वी बंगाल और कलकत्ता जाने और फिर खेतिहर कामों के आरंभ होने पर वापस गांव लौट आने की परंपरा थी"।[3]

ब्रिटिश काल में भारत से लाखों मजदूरों का प्रवासन विश्व के विभिन्न उपनिवेशों पर सरकार के सहयोग से किया गया। मजदूरों के बड़ी संख्या में प्रवासन के विभिन्न कारण थे। जैसे– औपनिवेशिक नीतियों ने भारत को दयनीय स्थिति में पहुंचा दिया। लगातार अकाल और महामारी के कारण श्रमिकों और मजदूरों की स्थिति बदतर हो गई थी। कृषि बंदोबस्त ने किसानों को कृषि कार्यों से दुर किया जिससे वे अन्यत्र प्रवास करने के लिए मजबूर हो गए। सिंचाई की व्यवस्थित योजना के अभाव में अकाल की समस्या बढ़ी जिससे हजारों भारतीय प्रभावित हुए और वे दूसरी जगहों पर बसने के लिए विवश हो गए।[4] अंग्रेजी आर्थिक नीति ने भारतीय हथकरघा उद्योग को नष्ट किया जिससे हजारों मजदूर बेरोजगार हो गए। ऐसे ही लाखों भारतीय श्रमिक सरकार द्वारा सृजित संकट के कारण अपनी आजीविका के लिए इस प्रवासन में सम्मिलित हुए और गिरमिटिया बन गए।

प्रवासन की शर्तें

औपनिवेशिक भारत से मजदूरों का बड़े पैमाने पर प्रवास 1833 ईस्वी में दास प्रथा पर प्रतिबंध के पश्चात् 1834 ई० से आरंभ हुआ। इसमें प्रवासियों को निश्चित अवधि के लिए एक अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होते थे, यह अनुबंध लगभग पांच वर्ष या दस वर्ष का होता था। इसके अलावा, श्रम अनुबंधों के मुख्य प्रावधानों में बुनियादी 'मुफ्त आवास', सीमित चिकित्सीय सुविधाएँ, घर लौटने के लिए यात्रा का अधिकार, एक निश्चित दैनिक मजदूरी और एक ही मालिक के साथ निरंतर रोजगार शामिल थे। जब उनके पाँच वर्ष के अनुबंध की अवधि समाप्त होती थी, तो भारतीय गिरमिटिया मजदूरों को दोबारा अनुबंध पर काम करने का विकल्प दिया जाता था। इसके बदले में उन्हे स्वदेश वापसी की यात्रा के स्थान पर जमीन के छोटे–छोटे टुकड़े दिए जाते थे।[5] दस वर्ष के बाद जब अनुबंध खत्म होता था तब वे सरकार के पैसों पर घर वापस आ सकते थे। इस अवधि के बीच में करार खत्म नहीं किया जा सकता था। इस समझौते के तहत 1880 तक लगभग 5,06,433 लोग विश्व के विभिन्न उपनिवेशों (जैसे–मॉरीशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम आदि) में भेजे गए,[6] जो निम्न है :–

तालिका – 1

कॉलोनी (उपनिवेश)	भारतीय गिरमिटिया की संख्या
मॉरीशस	2,48,000
डेमेरारा	88,000
त्रिनिदाद	51,000
जमैका	11,000
ग्रेनाडा	1,500
सेंट ल्यूशिया	1,000
सेंट किट्स	200
सेंट विसेंट	2,000
नेविस	300
नेटाल	25,000
फिजी	1,400
सेंट क्रोएक्स	87
रीयूनियन	45,000
सूरीनाम	4,156
ग्वादलूप	13,500
कायेन	4,300
मार्टिनिका	10,000
कुल योग	**5 ,06 ,433**

स्रोत : कुमार, आशुतोष, 2017, कुलीज ऑफ द एम्पायर, पृष्ठ सं. 24–25

मजदूरों की भर्ती करने के लिए सरकार द्वारा एक व्यवस्थित लाइसेंसिंग प्रणाली विकसित की गई थी। इस प्रणाली में बिचौलियों (दलालों) की भूमिका बहुत अहम थी, जो अक्सर गांव के मेले, रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, मंदिर आदि भीड़–भाड़ वाली जगहों से लोगों को अच्छी नौकरी देने का लालच देकर, बहला–फुसलाकर इसमें शामिल करते थे। ऐसे बिचौलियों को उत्तर भारत में 'अरकाटी' तथा दक्षिण भारत में 'मेस्त्री' कहा जाता था।[7] अरकाटी कई मामलों में अपहरण करके मजदूरों को अपने चंगुल में फंसा लेते थे और उन्है कलकत्ता भेज देते थे। अक्टूबर 1836 ई० में पाया गया कि 'सोफिया' नामक प्रवासी जहाज पर दो–तिहाई लोग बिना पुलिस–पास के लाये गये थे। कई अन्य मामलों में, उनसे यात्रा की लंबाई को लेकर झूठ बोला गया, 'लखनऊ की रहने वाली एक भारतीय महिला...एक ऐसे आदमी से मिली जिसने उसे झांसा दिया कि उसे एक यूरोपीय परिवार में बच्चे की देखभाल करने के लिए 25 रुपये महीने की नौकरी मिल सकती है उस आदमी ने बताया कि वह परिवार कलकत्ता से महज 6 घंटे की समुद्री यात्रा की दूरी पर रहता है वह महिला इस भरोसे में जहाज पर चढ़ गई, लेकिन उसे उस बताई गई जगह ले जाने के बजाय, धोखे से नटाल (दक्षिण अफ्रीका) पहुंचा दिया गया।[8] इस तरह हजारों मजदूरों को सरकार के सहयोग से समुद्र के उस पार पहुंचा दिया गया, जिसके बारे में उन्है कुछ भी जानकारी नहीं होती थी।

डीपों की व्यवस्था

मजदूरों को कलकत्ता डीपों तक ले जाने के लिए एक स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था होती थी जो सीधे हावड़ा पहुंचती एवं बीच में कहीं नहीं रुकती थी।[9] कलकत्ता पहुंचने के बाद मजदूरों के लिए अरकाटी द्वारा आवास और भोजन की व्यवस्था की जाती थी और बाहरी दुनिया से उसका संपर्क तोड़ दिया जाता था। उसे किसी से मिलने नहीं दिया जाता और न ही अकेले बाहर निकलने दिया जाता था। कलकत्ता में बगान मालिकों ने अपने–अपने डीपों की स्थापना कर उत्प्रवास एजेंटों को नियुक्त किया था। अरकाटी पुलिस के सहयोग से इन मजदूरों को डीपों लेकर जाते थे। डीपों में मजदूरों का शारीरिक परीक्षण किया जाता था। साथ ही, चिकित्सा जांच के दौरान मजदूरों के श्रम शक्ति को भी परखा जाता था। किसी भी प्रकार के बूढ़े, विकलांग या बीमारीयुक्त व्यक्तियों को इस व्यवस्था में शामिल नहीं किया जाता था। इन डीपों से मजदूरों को पूरी औपचारिकता करने के बाद समुद्री जहाजों से दूर औपनिवेशिक बगानों में भेज दिया जाता था।

दास प्रथा के प्रतिबंध के पश्चात् सर्वप्रथम 1834 ई. में, कलकत्ता की एक फर्म गिलिंडर्स अरबोनेट कंपनी ने भारतीय हिल–कुलियों को मॉरिशस भेजने के लिए भर्ती करने का कार्य किया।[10] 1834 से 1837 तक लगभग सात हजार मजदूर कलकत्ता से मॉरीशस गए, जिसमें अधिकतर हिल कुली थे। इस अवधि में नियमित कानून व्यवस्था नहीं होने के कारण मजदूरों को बहुत सी परेशानियों का सामना करना पड़ता था। इसे दूर करने के उद्देश्य से और इस नयी व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक कमेटी बनाई गई, जिसने 1837 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के अधिनियम 7 के अनुसार निम्न प्रावधान किए गए थे।[11]

- प्रेसीडेंसी के गवर्नर के आदेश के बिना किसी भी प्रवासी को बाहर काम करने के लिए जहाज पर सवार नहीं किया जाएगा।
- परमिट देने से पहले, दोनों पक्षों को अधिकृत अधिकारी के समक्ष एक अनुबंध ज्ञापन (जो अंग्रेजी और 'मूलनिवासी' की मातृभाषा, या उसके द्वारा समझी जाने वाली किसी भाषा में हो, जिसमें सेवा की प्रकृति, शर्तों और मजदूरी का उल्लेख हो) के साथ उपस्थित होना होगा।
- यह अनुबंध पांच साल बाद समाप्त किया जा सकता था, जिसमें उस बंदरगाह पर प्रवासी की वापसी की शर्त भी शामिल थी, जहाँ से वह जहाज पर चढ़ा था।
- अधिकारी के पास दोनों पक्षों की जांच करने और 'मूलनिवासी' को अनुबंध की शर्तें समझाने की शक्ति थी और संतुष्ट होने पर, वह अनुबंध के ज्ञापन को पृष्ठांकित कर सकता था।
- यदि किसी जहाज पर 20 से अधिक प्रवासी सवार होते थे, तो अधिकारी को उचित आवास, भोजन और चिकित्सीय देखभाल सुनिश्चित करने के लिए किए जाने वाले उपायों की जांच करने का अधिकार था। जब तक ये व्यवस्थाएं संतोषजनक नहीं होती, परमिट नहीं दिया जाता था।
- प्रवासियों का एक रजिस्टर रखा जाना था जिसमें मजदूरों का नाम, अनुबंध की अवधि, परमिट की तारीख, स्थान और जिस जहाज पर प्रवासी सवार हुआ था उसका पूरा जानकारी हो।
- अगर किसी जहाज का मालिक नियम तोड़ता है, तो बिना परमिट के जहाज पर चढ़ने वाले हर 'देशी' व्यक्ति के लिए 200 रुपये का जुर्माना या 30 दिन की जेल की सजा दी जाती थी।
- कलकत्ता के पुलिस सुपरिटेंडेंट को परमिट देने वाला अधिकारी नियुक्त किया गया, और उसके मार्गदर्शन के लिए कुछ नियम बनाए गए।

हालांकि ये बस कागजी प्रावधान था और शुरुआती दिनों में केवल कागजों पर ही सिमट कर रह गया। नियम कानून का पालन न अफसर करते थे, न उनके शागिर्द। क्योंकि गिरमिटिया मजदूर सामान्यतः पढ़े लिखे नहीं होते थे और अनुबंध की शर्तों से अनजान होते थे। तोताराम सनाढ्य लिखते है कि जब उनको मजिस्ट्रेट के पास ले जाया गया तो मजिस्ट्रेट ने उनके साथ लगभग एक सौ पैंसठ प्रवासियों का सत्यापन महज बीस मिनट में कर दिया।[12] इस तरह प्रवासन निर्बाध रूप से बिना किसी पर्याप्त जांच व्यवस्था के जारी रहा।

पर्याप्त निरीक्षण व्यवस्था के अभाव में, उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में, समुद्री यात्राओं के दौरान मजदूरों का बीमार पड़ना आम हो गया। यात्रा के समय जहाज पर मजदूरों का जीवन बहुत कठिन था। गिरमिटिया जहाज आधुनिक जहाजों से बिल्कुल भिन्न थे जिसमें नाममात्र की सुविधाएं उपलब्ध होती थी और यात्रा में बहुत अधिक समय लगता था। ह्यूग टिंकर बताते है कि बंधुआ मजदूरों के जहाजों की हालत ट्रांस–अटलांटिक मिडिल पासेज के दौरान अफ्रीकी गुलामों से बेहतर नहीं थी।[13] पर्याप्त मात्रा में सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होने के कारण, शुरुआती दिनों में समुद्री यात्राओं के दौरान मजदूरों की मृत्यु दर काफी अधिक थी, जिसका विभिन्न मानववादी समूहों द्वारा विरोध किया गया। मानववादियों के आंदोलन के दबाव में आकर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने गिरमिटिया व्यवस्था की जांच के लिए 1838 में एक कमीशन गठित किया। जिसने 1840 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत किया। इस रिपोर्ट ने, कुलियों (गिरमिटिया मजदूरों) को प्रवासन में धोखाधड़ी और अपहरण करके भर्ती करने के आरोप को सही पाया। कमीशन ने बताया की मजदूरों को झूठे वादे करके और बेहतर सुविधाओं का लालच देकर भर्ती किया जाता था। उन्है अनुबंध की शर्तों के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं होती थी। इस रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रवासन पर रोक लगा दी गयी। लेकिन यह रोक सीमित अवधि के लिए ही थी। 1842 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक अधिनियम बनाकर इस व्यवस्था को दोबारा शुरू कर दिया।

समुद्री यात्रा

डीपों पर चिकित्सा जांच के बाद मजदूरों को जहाजों पर भेज दिया जाता था। यात्रा के दौरान जहाजों पर मजदूरों की देखभाल के लिए 'सर्जन सुपरिडेंट' की नियुक्ति की जाती थी। वे जहाज पर उपस्थित सबसे बड़े अधिकारी होते थे और जहाज की स्थिति को अनुकूल रखने के लिए जिम्मेदार थे।[14] भारतीय गिरमिटिया मजदूर समुद्री यात्रा में बहुत कम ही खुद को समायोजित कर पाते थे और कुछ ही दिनों में बीमार पड़ जाते थे। हालांकि मजदूरों के बीमार होने में कई कारकों ने योगदान दिया, जिसमें यात्रा के समय का अधिक होना, पर्याप्त मात्रा में राशन की कमी, उचित चिकित्सा सुविधा का नहीं होना और अनुभवहीन चिकित्सा अधिकारी, जो मजदूरों के साथ संवाद करने में प्रायः असमर्थ होते थे। अब्दुल्ला खान, प्रवासी जहाजों पर भारतीय डॉक्टर, ने 1838 में पांच मजदूरों की मृत्यु का कारण अनुभवहीन यूरोपीय सर्जन को बताया है, जो भारतीय बीमारियों को ठीक करने में असमर्थ थे।[15]

प्रवासन के प्रथम चरण में मजदूरों की समुद्री यात्राओं के दौरान मृत्यु दर अधिक थी। ज्यादा–से–ज्यादा मजदूरों को एक साथ लेकर जाने के कारण अक्सर भीड़–भाड़ और गंदगी की स्थिति बनी रहती थी। मजदूरों की अधिक संख्या के कारण पानी, भोजन और शौचालय की कमी होती थी। शुरुआती दिनों में जहाजों पर चिकित्सकीय सुविधाओं का भी नितांत अभाव था। जिसके कारण बीमार पड़ने वाले मजदूरों को, जहाजों पर संक्रमण फैलने के डर से, अलग–थलग कर दिया जाता था और पर्याप्त भोजन से भी वंचित कर दिया जाता था। 1859–1860 में समुद्री यात्राओं के दौरान, कलकत्ता से

वेस्ट इंडीज जाने वाली समुद्री यात्राओं में 1 से 12 वर्ष की आयु के 16.5% बच्चों की यात्रा के दौरान मृत्यु हो गई, जबकि एक वर्ष से कम आयु के 34.5% शिशुओं की भी रास्ते में ही मृत्यु हो गई।[16] कैरेबियन जाने वाले जहाजों पर 1856–57 के मध्य मजदूरों की मृत्यु दर औसतन 17 प्रतिशत थी। मर्चेन्टमैन नामक जहाज पर मरने वालों का उच्चतम प्रतिशत 31.17 था, जबकि वेलेजली नामक जहाज पर सबसे निम्नतम 5.75 प्रतिशत दर्ज किया गया था। औसतन सभी जहाजों की मृत्यु दर 17.27 दर्ज की गयी।[17]

तालिका 2

1856-57 के मध्य कलकत्ता से वेस्टइंडीज जाने वाले जहाजों में मृत्यु दर

जहाज का नाम	व्यस्क पुरुष	व्यस्क महिलायें	लड़के	लड़कियां	शिशु	कुल	मृत्यु	मृत्यु प्रतिशत
वैलेसली	254	84	13	11	20	182	22	5.75
बुसेपबालस	252	84	20	09	15	360	45	11.84
रॉबर्ट सेप्पिंग्स	297	59	13	13	09	291	61	20.96
रोमन साम्राज्य	207	66	14	12	12	313	88	28.11
एडेलाइडो	213	62	10	08	11	304	25	8.22
जॉर्ज सेमोर	238	75	21	05	15	354	36	10.17
एवलिन	231	96	20	17	23	387	72	18.60
मेडस्टोन	268	68	18	10	11	375	92	24.53
मर्चेंटमैन	239	96	18	12	20	385	120	31.17
ग्रानविले	154	100	25	14	16	309	37	11.97
बर्मा	230	58	10	10	18	326	49	15.03
सिंडीयन	154	81	21	14	16	288	60	20.83
कुल	2639	931	203	135	186	4091	707	17.27

स्रोत : (कुमार, आशुतोष (2020) पृष्ठ सं.31)

यह आंकड़े दर्शाते है कि उपलब्ध चिकित्सा व्यवस्था और नियम–कानून होने के बावजूद भी समुद्री यात्राएं मजदूरों के अनुकूल नहीं थीं। जबकि औपनिवेशिक अधिकारियों ने इन मौतों का जिम्मेदार भारतीयों की ही ख़राब रहन–सहन और गंदी आदतों को ठहराया। मानववादियों के विरोध के परिणामस्वरुप ब्रिटिश भारत सरकार ने 1858 में यात्रा के दौरान उच्च मृत्यु दर की जांच के लिए डॉक्टर माउट को नियुक्त किया। उन्होंने भी मृत्यु दर में बढ़ोतरी का कारण जहाजों पर स्वच्छता का अभाव और उपस्थित अनुभवहीन चिकित्सा अधिकारी को माना, जो भारतीय मजदूरों के साथ संवाद करने में असमर्थ थे।[18] डॉ माउट ने अपनी रिपोर्ट में सुझाया की, सर्जन सुपरिडेंट के पद पर उस व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए जो भारतीय बीमारी को ठीक करना जानता हो। माउट ने अपनी जाँच में पाया कि मजूदरों के खाने में बदलाव और जहाज पर पीने के लिए हुगली नदी के पानी का इस्तेमाल, ये प्रमुख कारण थे जिनकी वजह से यात्रा के दौरान मजदूरों में ज़्यादा बीमारी फैली और मौतें हुई।[19] जहाजों पर मुख्य रूप से बुखार, चेचक, पेचिस, हैजा आदि रोग होते थे। इसके अलावा चिंता, अवसाद और

समुद्रीय मौसम भी जिम्मेदार कारक थे। तोताराम कहते है की यात्रा के दौरान जहाज पर भारतीय मजदूर अपने माता, पिता, भाई, बहन इत्यादि के प्रेम में रोते रहते थे। उनके दुखों को सुनने वाला कोई नहीं था।[20] कालापानी (समुद्र) पार करने से उसकी जाति खोने का डर और अनिश्चित भविष्य के कारण उसके मस्तिष्क पर मनोवैज्ञानिक आघात पड़ता था। डॉक्टर बैकवेल, जो त्रिनिडाड के चिकित्सकीय अधिकारी थे, लिखते है:"जहाज का लंबा सफर उन्है शारीरिक रूप से थका देता था और समुद्र पार करने से वह अपनी जाति के बंधनों का उल्लंघन कर रहे थे, जो उनको मानसिक रूप से बेचैन करता था। इस प्रकार की शारीरिक और मानसिक दोनों ही अवस्थाएँ उनकी जीवन शक्ति को कम करती थी। उनकी चिंतन पाचन तथा तंत्रिका तंत्र को अव्यवस्थित कर देते थे।[21] हालांकि इसके अलावा यात्रा के दौरान जहाजों पर मजदूर आत्महत्या भी करते थे। कभी–कभी दर्द से परेशान कुली जहाज से कूद जाते थे तब उन्है पागल समझा जाता था।[22]

जहाजों पर पर्याप्त सुविधाओं और राशन पानी का न होना भी उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता था। "सनाढ्य बताते है कि जहाजों पर मजदूरों को डॉग बिस्कुट खाने के लिए दिया जाता था। जिसको पानी में भिगो कर भी मुस्किल से खाया जा सकता था। यात्रा के समय मजदूरों को पीने के लिए दिन में केवल दो बार एक–एक बोतल पानी दिया जाता था। फिर नहीं मिलता था चाहे प्यासे मरो। खाने के विषय में भी यही बात थी। वहीं मछली पकड़ती थी और भात बनता था। जिससे समुद्री बीमारी से बहुत से आदमी पीड़ित हो गए। कई तो विचार करके इस संसार से सदा के लिए बिदा हो गए। वे समुद्र में फेंक दिए गए।[23] ह्यूग टिंकर ने इन जहाजी यात्राओं को मध्य अटलांटिक सागर के दास व्यापार वाले जहाजों के सामान बताया है और इस व्यवस्था को 'न्यू सिस्टम ऑफ स्लेवरी' यानी गुलामी का नया रूप कहा।[24]

निष्कर्ष

इस प्रकार देखा जा सकता है कि भारतीय गिरमिटिया मजदूरों का प्रवासन उपनिवेशों (बागानों) के आर्थिक विकास के लिए शुरू की गई एक करार–बंध व्यवस्था थी। यह व्यवस्था मजदूरों के शरीर की कीमत पर निर्भर करता था। इसके तहत लगभग तेरह लाख लोग अपना घर को छोड़ कर अन्य देशों में प्रवासित हो गए। विपरीत परिस्थितियों और कड़े सामाजिक अनुबंध के बावजूद लोग काला सागर को पार कर बागानों में काम करने गए। शुरुआत के दिनों में मजदूरों के लिए व्यवस्थित नियम क़ानून नहीं थे जिससे उनकी स्थिति और दयनीय हुई। गिरमिटिया व्यवस्था में चिकित्सा का उपयोग श्रमिकों के कल्याण के लिए नहीं अपितु बगान मालिकों के लिए योग्य श्रम दक्षता आपूर्ति को बनाए रखने के लिए किया गया था। औपनिवेशिक चिकित्सा का उद्देश्य शरीर को 'उत्पादन की मशीन' के रूप में बनाए रखना था। बूढ़े और कमजोर शरीर, जो आर्थिक हानि को दर्शाते थे, को निरंतर इस व्यवस्था से बाहर किया गया। यात्राओं के दौरान उच्च मृत्यु दर ने इस व्यवस्था को बेनकाब किया। बागान मालिकों के अत्याचार और मजदूरों की ख़राब स्थिति के कारण ब्रिटेन में मानववादी समूहों ने और बाद में भारतीय उदारवादी नेताओं ने इसके खिलाफ आवाज उठाई। इसके परिणामस्वरूप यह व्यवस्था 1920 में ब्रिटिश सरकार द्वारा समाप्त कर दी गई।

इतिहास विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
[1]vijayprakashsingh585@gmail.com
[2]shribk2000@gmail.com

सन्दर्भः

1. *Buckingham, J. (2024). Disabling labour: Race, Disability and Indian Indentured labour on Fijian Sugar Plantations 1879-1920. Postcolonial Studies, 27(1), 83-98. https://doi.org/10.1080/13688790.2024.2320088*
2. *Jha, Praveen Kumar. (2019). Coolie lines. Vani Prakashan, New Delhi, p. 18*
3. *Kumar, Ashutosh. (2017). Coolies of the Empire, Cambridge University Press, p.25*
4. *Bisnauth, Dale. (2000). Settlement of Indians in Guyana 1890-1930, Peepal tree, Leeds, pp. 37-38*
5. *Chakravorty. I. (2022). The legacy of Indenture Acknowledgement, Apology & Reparation. Sushruta J Health P; Vol & Opin Vol 15; issue 1: 1-5 Doi https://doi.org/10.38192/15.1.7*
6. *Kumar, (2017). Coolies of the Empire, pp. 24-25*
7. *Panchanan, Saha. (2003). Indians in British Overseas Colonies, Sale Distributors, K.P Bagehi & Co. Kolkata & New Delhi, p. 197*
8. *Anitha, S., & Pearson, P. (2013). Indentured labour from South Asia (1834-1917). Striking Women. https://www.striking-women.org/module/map-major-south-asian-migration-flows/indentured-labour-south-asia-1834-1917?hl=hi-IN/दि. 18/12/2025 को शाम 6:00 बजे देखा गया।*
9. *Sanadhya, Totaram, (2000). Fiji Dwip Me Mere Ikkis Varsh, Bharti Bhavan Firozabad (Agra), p.06*
10. *Bisnauth, Settlement of Indians in Guyana 1890-1930, p. 14*
11. *Kumar, (2017). Coolies of the Empire, p. 57*
12. *Sanadhya (2000), Fiji Dwip Me Mere Ikkis Varsh, p. 05*
13. *Kumar, (2017). Coolies of the Empire, p. 80*
14. *Tinker, Hugh. (1974). A New System of Slavery: The Export of Indian labour Overseas 1830-1920. Oxford University Press, London, p. 147*
15. *Kumar, (2017). Coolies of the Empire. p. 88*
16. *STSC077. (2016, February 16). Overview of Mortality on Ocean Voyages in the 1800s. Sailing the British Empire: The Voyages of the Clarence, 1858-73https://scalar.usc.edu/works/the-voyages-of-the-clarence/overview-of-mortality-on-ocean-voyages-in-the-1800s?hl=hi-IN/ दि.18/12/2025 को शाम 7:00 बजे देखा गया।*
17. *Kumar, A. (2020). Colonial Care: Health and Healing for Indenture Migrants during the Journey from India to the Sugar Colonies 1830-1920. In Menke, H., Gounder, F., Kumar, A., Buckingham, J., Hassankhan, Maurits, S. (eds) Social Aspects of Health, Medicine and Diseases in the Colonial and Post-colonial Era. Manohar Publishers & Distributors, New Delhi, pp. 27-54*
18. *Kumar, (2017). Coolies of the Empire, p. 87*
19. *Kumar, (2020). Colonial Care, pp. 27-57*
20. *Sanadhya (2000), Fiji Dwip Me Mere Ikkis Varsh, p. 09*
21. *Kumar (2017), Coolies of the Empire, p. 89*
22. *Hurgobin, Y., (2016). Making Medical Ideologies: Indenture labour in Mauritius. In Winterbottom, A., Tesfaye, F.(eds) Histories of Medicine and Healing in the Indian Ocean World. Palgrave series in Indian Ocean World Studies. Palgrave Macmillan, New York. pp. 1-26 https://doi.org/10.1057/9781137567581_1*
23. *Sanadhya (2000), Fiji Dwip Me Mere Ikkis Varsh, pp. 11-12*
24. *Jha, (2019). Coolie lines, p. 19*

परंपरागत कृषि में परिवर्तन और रक्ताल्पता झाबुआ की भील जनजाति का एक अध्ययन

सौम्या पाण्डेय

सारांश

इस अध्ययन का उद्देश्य मध्यप्रदेश के झाबुआ में भील आदिवासी समुदाय की पोषण स्थिति एवं पारंपरिक कृषि में परिवर्तनों के प्रभाव का पता लगाना है। मोटे अनाज, जिन्हे स्थानीय फसलें भी कहा जाता है, ये स्थानीय जलवायु के अनुकूल होते हैं और इनमें उच्च पोषण गुण पाया जाता है। ये फसलें विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि आदिवासी समुदायों के भोजन में इनका महत्वपूर्ण स्थान था, लेकिन हाल के वर्षों में आधुनिक कृषि पद्धतियों और बाजार आधारित फसलों के कारण इनकी खेती में गिरावट आई है। इस गिरावट का प्रतिकूल प्रभाव आदिवासी आबादी, विशेषकर महिलाओं और बच्चों पर पड़ा है, जो कुपोषण और रक्ताल्पता का शिकार हो रहे हैं। परिणाम स्वरूप शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी समुदायों में पोषण की कमी वाले आहार का सेवन बढ़ गया है। मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले में यह समस्या विशेष रूप से गंभीर है, जहाँ एनीमिया से पीड़ित महिलाओं और कुपोषित बच्चों की दर राष्ट्रीय स्तर पर उच्चतम में से एक है। झाबुआ में कुपोषण की कमी और रक्ताल्पता की उच्च दर के पीछे खेती के तरीकों और घरेलू भोजन उपभोग स्तर में बदलाव एक प्रमुख कारक है। शोध से पता चलता है कि पारंपरिक मोटे अनाजों की खेती में कमी और कुपोषण तथा रक्ताल्पता में वृद्धि के बीच सीधा संबंध है।

बीज शब्द : मोटे अनाज, जनजातीय समुदाय, पोषण की कमी, कृषि परिवर्तन, रक्ताल्पता

प्रस्तावना

भारत में हरित क्रान्ति ग्रामीण समुदायों के सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक ताने–बाने में एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतिनिधित्व करती है। यह विकासात्मक प्रतिमान उत्तर औपनिवेशिक देशों की "उच्च आधुनिकतावाद" के विचारों के तहत "माल्थसियन कमी" से निपटने और कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के संसाधनों को अपनाने पर जोर देता है। पारंपरिक कृषि सामाजिक संरचना और प्रथाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए आधुनिक राज्य ने "सहकारिता" की "फौकॉल्डियन विचारधारा" को अपनाते हुए पारंपरिक "ग्रामीणता" को पुनर्गठित करने का प्रयास किया। यह विकासात्मक प्रयास ही भारत में हरित क्रांति की सफलता की कहानी थी।

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 49-58
Peer-reviewed biannual Research Journal

नब्बे के दशक से संचालित इस क्रांति ने न केवल आदिवासी संस्कृति बल्कि अर्थव्यवस्था को भी बदल दिया। व्यापारिक खेती की ओर उन्मुख बदलाव ने कृषि की स्थानीय प्रणालियों को बाधित कर, पारंपरिक प्रथाओं और ज्ञान पद्धतियों को नष्ट कर दिया। आदिवासी खाद्य संप्रभुता और सांस्कृतिक पहचान का केंद्र रही मोटे अनाज की खेती के स्थान पर सोयाबीन और संकर कपास जैसी बाजार उन्मुख फसलों को प्रतिस्थापित किया गया। कृषि के इस बाजारीकरण ने न केवल खाद्य असुरक्षा को बढ़ाया है, बल्कि सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को भी मजबूत किया, जिससे आदिवासी परिवारों में पलायन की स्थिति बढ़ गई।

पंचवर्षीय योजनाओं की स्थापना के बाद से, भारत में कृषि उद्योग ने कई बदलावों का अनुभव किया है। हरित क्रांति के दौरान, कृषि में होने वाले विस्तार को कृषि–आधारित विकास का एक उल्लेखनीय उदाहरण माना गया (Bhalla et al, 1992)। भारत सरकार ने हाल ही में कृषि की स्थिरता के मुद्दे को संबोधित करने के लिए कई पहल शुरू की हैं। ग्रामीण और परंपरागत सिंचाई योजना जिसका उद्देश्य सिंचाई पहुंच और जल उपयोग दक्षता में सुधार करना है तथा कृषि विकास योजना, जो जैविक खेती का समर्थन करती है (GOI, 2016)। भारत के उत्तर–पश्चिम में, कृषि में विकास–उन्मुख सुधार अधिक स्पष्ट थे। भारतीय कृषि में इन महत्वपूर्ण प्रगति तक पहुँच से वंचित होने के अलावा, पूर्वी, मध्य और पश्चिमी क्षेत्रों की कृषि प्रणालियाँ, विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्र, निर्वाह–उन्मुख बनी हुई हैं। इसके अलावा, हरित क्रांति के समय में, इन स्थानों पर किए गए निवेश की मात्रा अपेक्षाकृत सीमित थी (Nayak, 2015)।
2011 की जनगणना के अनुसार देश में सबसे बड़ी अनुसूचित जनजाति की आबादी 15.3 मिलियन है। अनुसूचित जनजातियाँ मध्य प्रदेश की कुल आबादी का 21.1 प्रतिशत हिस्सा हैं (भारत 8.6 प्रतिशत)। भारत में आदिवासी समुदायों के प्रमुख वर्ग पहाड़ी क्षेत्रों एवं जंगल से जुड़े मैदानी इलाकों में शुष्क और अर्ध–शुष्क जलवायु स्थिति में रहते हैं। हालाँकि, भारत में आदिवासी समुदायों के बीच कृषि पद्धतियाँ पारंपरिक रूप से झूम खेती पर आधारित थीं, लेकिन कुछ सरकारी प्रतिबंधों के कारण, एकल फसल के साथ वैज्ञानिक आधारित कृषि पद्धतियों की उन्नति और बाजार आधारित नकदी फसल प्रणाली के कारण, पारंपरिक मोटे अनाज की फसलों के लुप्त होने और आदिवासी आबादी के बीच जलवायु–उन्मुख खाद्य उपभोग स्तर के साथ स्थानांतरित कृषि प्रणाली लगभग लुप्त हो गई है। बाहरी हस्तक्षेपों (जैसे खाद्य उत्पादन और खाद्य वितरण पर सरकारी नीतियां और कार्यक्रम, मिट्टी परीक्षण के माध्यम से खेती का वैज्ञानिक तरीका और नकदी फसल की खेती में तेजी से वृद्धि) के माध्यम से स्थापित कृषि पद्धतियों ने कृषि वैज्ञानिक ज्ञानमीमांसा (Kumar, 2016) के प्रचार के तहत 'प्रकृति के कार्य' (Baskin, 1997) सम्बंधित स्थानीय ज्ञान एवं स्थानीय समझ पर आधारित कौशल पर हावी हो गई है। मुख्य रूप से मैदानी इलाकों में कई जनजातीय संस्कृतियों द्वारा स्थानांतरित कृषि का अभ्यास किया जाता है। उदाहरण के लिए, यह देखा गया है कि गुजरात और मध्य प्रदेश में भील जनजातियाँ वैज्ञानिक खेती तकनीकों को लागू करने के लिए अधिक खुली हैं (Hiremath and Patel, 2004)।

एक वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य प्राथमिकता के रूप मे खाद्य सुरक्षा, जिसे पर्याप्त और पौष्टिक भोजन प्राप्ति की कमी के रूप में परिभाषित किया जाता है, आदिवासी समुदाय औपनिवेशिक काल से ही पोषण संबंधी भोजन के सेवन की कमी के साथ खाद्य असुरक्षा की उच्च दर का अनुभव करते हैं। फिर से, आदिवासी समुदाय के बीच कुपोषण एक गंभीर समस्या बन गई जिसमें हरित क्रांति के प्रभाव में रक्ताल्पता से पीड़ित आदिवासी आबादी की उच्च दर और एकल फसल की संस्कृति व नगदी फसल प्रोत्साहन के माध्यम से आदिवासी भूमि विशेष का तेजी से व्यावसायीकरण शामिल है। आदिवासी भूमि की भौगोलिक और पारिस्थितिक प्रकृति शुष्क और अर्द्ध–शुष्क प्रकृति के कारण, संकर कपास जैसी नकदी फसल इस

भूमि में प्रमुख कृषि चर्चा बन गई। इस प्रकार, आदिवासी समुदाय एकल फसल खेती और लाभ उन्मुख नकदी फसल खेती के राज्य और बाजार कृषि वैज्ञानिक ज्ञान–मीमांसा दोनों के माध्यम से पीड़ित हो गए। भारत में आदिवासी समुदायों के बीच, दूसरे (1988–90) और तीसरे (2008–09) राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (एनएनएमबी) सर्वेक्षणों के बीच प्रतिदिन प्रति उपभोग इकाई (जी/सीय/दिन) 3 ग्राम प्रोटीन का सेवन कम हुआ। सर्वेक्षण के अनुसार, "इस अवधि में सभी आयु समूहों में प्रोटीन–कैलोरी पर्याप्तता वाले व्यक्तियों का अनुपात कम हुआ। प्रोटीन, ऊर्जा और कैलोरी के मामले में पर्याप्त आहार लेने वाली आबादी का अनुपात अलग–अलग आयु समूहों के 29–32 प्रतिशत बच्चों, 63–74 प्रतिशत वयस्कों और 25 प्रतिशत गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के बीच कम रहा।" रिपोर्ट में दो अध्ययनों के माध्यम से कहा गया है कि आज, उनके आहार में मुख्य रूप से गेहूं, दाल और चावल के साथ कभी–कभी मौसमी सब्जियाँ भी जिनका वे वहन कर सकते हैं। बाजरा और अनाज की खपत में लगभग 50 ग्राम/सीयू/दिन की कमी आई है, विटामिन ए का सेवन 117 माइक्रोग्राम/सीयू/दिन कम हुआ है और ऊर्जा का सेवन 150 किलोकैलोरी/सीयू/दिन कम हुआ है।

मोटे अनाज की खपत में गिरावट और जनजातीय स्वास्थ्य स्थिति

कुपोषण के दोहरे बोझ के बारे में चिंता बढ़ रही है या देश, उप–राष्ट्रीय क्षेत्र, सामाजिक समूह, परिवार या यहाँ तक कि व्यक्ति भी इससे पीड़ित हैं, उदाहरण के लिए कैलोरी के मामले में पर्याप्त पोषण होना लेकिन अन्य पोषण संबंधी कमियाँ होना (FAO et-al, 2018)। विकासशील देशों में बड़ी आबादी विशेष रूप से जनजातीय आदिवासी समुदाय पोषण असंतुलन और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की व्यापकता से पीड़ित हैं (Singh, 2012)। हरित क्रांति के प्रभाव में आदिवासी समुदाय के बीच कुपोषण एक गंभीर समस्या बन गई, जिसमें एकल फसल की संस्कृति और भूमि के तेजी से व्यावसायीकरण, विशेष रूप से नकदी फसल खेती के माध्यम से आदिवासी भूमि के साथ एनीमिया की उच्च दर थी। आदिवासी बहुल क्षेत्रों कि शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क भौगोलिक परिस्थितियों के कारण पारंपरिक कृषि में उत्पादन सीमित रहा है। अधिक आर्थिक लाभ की आकांक्षा ने आदिवासी समुदायों को बहुफसली कृषि से हटाकर एकल एवं नगदी फसलों जैसे संकर कपास की ओर उन्मुख किया। परिणामस्वरूप वे राज्य–निर्देशित नीतियों, बाजार तंत्र और वैज्ञानिक कृषि ज्ञान पर निर्भर होते गए जिससे पारंपरिक ज्ञान एवं पारिस्थितिकीय संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा (Shiva, 1993)।

दुनिया भर में अनुमानित 476 मिलियन जनजातीय लोग हैं, जिनके पास अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विशेषताएँ हैं और भौगोलिक रूप से विशिष्ट पारंपरिक आवास (ILO, 2021) के साथ निवासरत है। भारत में, जनजातीय आबादी कुल राष्ट्रीय आबादी का 8.6 प्रतिशत है, जो 705 अलग–अलग जनजातीय समुदायों में विभाजित है। अपने पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान (आईटीके), जैव–विविध संसाधनों तक पहुँच और आदिवासी कल्याण योजनाओं से निरंतर समर्थन के बावजूद, भारत में आदिवासी समुदायों की पोषण संबंधी स्थिति खराब है और जीवन की गुणवत्ता निराशाजनक है, ऐसा भौगोलिक अलगाव, वित्तीय असुरक्षा, खराब साक्षरता, उप–इष्टतम रहने की स्थिति, कर्ज और प्रवास और स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं तक अपर्याप्त पहुँच जैसे कारकों के कारण है (Kuhnlein, 2013; Bishwas and Kapoor, 2003)। इन कारकों का प्रभाव भारतीय आदिवासी समुदायों के विशेष रूप से छोटे बच्चों और प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं में खराब स्वास्थ्य और पोषण संबंधी स्थिति में परिलक्षित होता है, (Ghosh, 2013)। आदिवासी क्षेत्रों में भूमि अधिग्रहण, बिचौलियों के माध्यम से वाणिज्यिक खेती का प्रभाव और गरीबी की बढ़ती दर आदिवासी परिवारों में खाद्य असुरक्षा की उच्च दर को जन्म देती है।

मोटे अनाज की खेती में गिरावट के लिए ध्यान देने योग्य कारक नकदी फसलों जैसे संकर कपास और सोयाबीन की खेती के माध्यम से गैर–टिकाऊ आर्थिक लाभ है जो पारंपरिक भोजन, खेती और प्रसंस्करण संबंधी ज्ञान में कमी लाते हैं (Kanade and Bhosale, 2013)। इस प्रकार, भारत में आदिवासी समुदायों के बीच जनजातीय खाद्य फसलों के संरक्षण की तत्काल आवश्यकता है। साथ ही, समुदाय में व्यापक कुपोषण को दूर करने हेतु खाद्य–आधारित रणनीतियों के निर्माण में इन फसलों के पोषक तत्वों संबंधी आँकड़ों को भी शामिल किया जाना आवश्यक है (Nair, 2016)। पीढ़ियों से, आदिवासी लोगों की पारंपरिक खाद्य प्रणाली ने मानव स्वास्थ्य और प्राकृतिक पर्यावरण को बनाए रखा है (Browne, 2020), लेकिन विज्ञान, बाजार और मोनो–क्रॉपिंग की अधिकता के कारण आदिवासी समुदाय अपनी जनजातीय खेती और भोजन की आदत को भूलते जा रहे हैं (Scoon, 2006)।

डाउन टू अर्थ पत्रिका की रिपोर्ट–24 मई 2022 के अनुसार, मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले की आदिवासी आबादी में, सभी आयु समूहों में प्रोटीन–कैलोरी पर्याप्तता वाले व्यक्तियों का अनुपात इस अवधि में कम हुआ है, 'प्रोटीन, ऊर्जा और कैलोरी के मामले में पर्याप्त आहार लेने वाली आबादी का अनुपात कम रहा। विभिन्न आयु समूहों के 29–32 प्रतिशत बच्चे, 63–74 प्रतिशत वयस्क और साथ ही 25 प्रतिशत गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाए।' रिपोर्ट के अनुसार "आदिवासी समुदाय का संस्कृतिकरण उनके आहार और उनके स्वास्थ्य की स्थिति में बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"

उद्देश्य

1. अध्ययन क्षेत्र के जनजातीय परिवारों में वर्तमान आहार प्रथाओं और उसकी पोषण स्थिति को जानना।
2. प्रमुख फसल के स्तरों और उसकी सामाजिक–आर्थिक प्रासंगिकता को जानना।

अनुसंधान क्रियाविधि/अध्ययन

शोध प्रश्नों और उद्देश्यों के अनुसार, अध्ययन में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक दोनों तरह के शोध प्रारूप का पालन किया गया। वर्णनात्मक शोध का उपयोग अध्ययन के विश्व की जनसांख्यिकीय और सामाजिक–आर्थिक रूपरेखा पर सांख्यिकीय जानकारी, स्वास्थ्य स्थिति, आहार प्रथाओं, विभिन्न स्थानीय फसलों/मोटे अनाज की फसलों और अध्ययन क्षेत्र में बदलते फसल स्तर पर संख्यात्मक जानकारी एकत्र करने के लिए किया गया था। विश्लेषणात्मक शोध प्रारूप का उपयोग मोटे अनाज की फसलों पर स्थानीय समझ, धारणा और जागरूकता, खाद्य फसलों और इसकी पोषण स्थिति पर लोगों की धारणा और इन फसलों की खेती में गिरावट और अध्ययन क्षेत्र में आदिवासी आबादी की खराब स्वास्थ्य स्थिति के साथ इसके संबंधों का पता लगाने के लिए किया गया।

अध्ययन क्षेत्र

यह अध्ययन मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले में किया गया। मध्य प्रदेश के इस जिले में भील आबादी की बहुलता है और इस जिले को राज्य में सबसे कम पोषण वाले तथा रक्ताल्पता से पीड़ित क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। झाबुआ जिले के तीन तहसीलों में पांच दिवसीय पायलट अध्ययन किया गया, ताकि भील जनजाति के बीच खेती के बदलते स्तर एवं आहार प्रथाओं के साथ इसके संबंधों की क्षेत्रीय परिवर्तनशीलता की पूरी जानकारी मिल सके, जिसके कारण भील समुदाय में बड़ी संख्या में कुपोषण होता है। झाबुआ तहसील में, तीन गांवों भागोर, शांथला और डुंगरधन्ना में पायलट अध्ययन किया गया। वास्तविक अध्ययन के लिए झाबुआ तहसील में डुंगरधन्ना का चयन किया गया। राणापुर तहसील (जो झाबुआ के मुख्य शहर से 30 कि.मी. दूर स्थित है) में, दो गांवों अर्थात पाडलवा और मोटाशुआ पर पायलट

अध्ययन किया गया। पाडलवा में बड़ी संख्या में आदिवासी कृषक परिवार रहते हैं और राणापुर के मुख्य बाजार क्षेत्र से इसकी निकटता और गांव में आदिवासी युवाओं के बीच बड़ी संख्या में प्रवासन के कारण, इस गांव को परियोजना कार्य के लिए वास्तविक अध्ययन हेतु चुना गया। पेटलाबाद तहसील (जो झाबुआ के मुख्य शहर से 40 कि.मी. से अधिक दूर स्थित है) में, दो गांवों अर्थात रावटी और अंबापाड़ा में पायलट अध्ययन किया गया। सामाजिक–आर्थिक महत्व, बदलती कृषि प्रथाओं और भील आबादी (पुरुष और महिला दोनों) के बीच पोषण की स्थिति को देखते हुए, अंबापाड़ा गांव को वास्तविक अध्ययन के लिए चुना गया।

नमूना आकार और डेटा संग्रह की तकनीक

पायलट अध्ययन के आधार पर, वास्तविक अध्ययन तीन गांवों (अर्थात डूंगरधन्ना, पाडलवा और अम्बापाड़ा)। डूंगरधन्ना गांव में 309 आदिवासी परिवार हैं, जिनमें से 150 परिवारों को अध्ययन के लिए यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से चुना गया था। पाडलवा गांव स्वयं एक ग्राम पंचायत है जिसमें पांच फलिया (गांव का वार्ड) हैं और प्रत्येक फलिया में परिवारों की औसत संख्या 60 है। पांच फलिया के बीच यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से 150 परिवारों को अध्ययन के लिए चुना गया था। अंबापाड़ा गांव में 350 परिवार हैं और अध्ययन के लिए यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से 150 परिवारों का चयन किया गया था। आंकड़ों के संकलन के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तकनीकों का उपयोग किया गया। जनसांख्यिकीय विवरण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य की स्थिति, मोटे अनाज की किस्मों, प्रमुख फसल चक्र और शोध विषय से संबंधित अध्ययन क्षेत्रों में सरकार द्वारा चलाई जा रहीं नीतियों और योजनाओं पर जानकारी प्राप्त करने के लिए मात्रात्मक तकनीक का उपयोग किया गया।

साक्षात्कार कार्यक्रम के अलावा, चयनित गांवों में मोटे अनाज की फसलों के प्रति किसानों के ज्ञान, दृष्टिकोण और धारणा के बारे में जानकारी एकत्र करने के लिए एक केंद्रित समूह चर्चा की गई। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य के अनुसार, तीन पीढ़ियों (दादा, पिता और पुत्र) के खाद्य उपभोग वस्तुओं और उनकी पोषण संबंधी धारणा, घरेलू आबादी और उनकी स्वास्थ्य स्थिति के बारे में अर्ध–संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से जानकारी एकत्र की गई। कुछ मामलों में, उत्तरदाताओं को अपनी पिछली पीढ़ी से पूछी गई जानकारी के बारे में पता नहीं था, इस मामले में, परिवार के अन्य वृद्ध सदस्यों से जानकारी देने के लिए कहा गया।

कृषि व्यवहार और जनजातीय स्वास्थ्य में परिवर्तन

झाबुआ जिले में 6 साल से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण की समस्या सबसे ज्यादा है। बच्चों में कुपोषण की उच्च दर वाले सबसे अधिक प्रभावित तहसील पेटलाबाद, झाबुआ, मेघनगर और राणापुर हैं। अधिकांश साहित्य इस तथ्य को उजागर करते हैं कि आदिवासी परिवारों के बीच बदलते खाद्य व्यवहार और आदिवासी क्षेत्रों में गरीबी की उच्च दर भारत में आदिवासी आबादी के बीच बड़ी संख्या में कुपोषित बच्चों के लिए अत्यधिक जिम्मेदार है। झाबुआ जिले में 0–6 वर्ष की आयु के बच्चों में कुपोषण की उच्च दर भी इसी तथ्य को दर्शाती है। झाबुआ जिले के गांवों में औसतन 30 प्रतिशत से अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। वे अपनी उम्र और ऊंचाई के हिसाब से कम वजन के हैं। हालांकि, झाबुआ तहसील के डूंगरधन्ना, राणापुर के पाडलवा और पेटलाबाद के अंबापाड़ा में अलग–अलग सामाजिक–आर्थिक और साक्षरता दर है, लेकिन बच्चों में कुपोषण और विशेष रूप से 30 वर्ष से कम उम्र की महिलाओं में रक्ताल्पता की उच्च दर के मामले में अध्ययन किए गए, तीनों गांवों में समान समस्या का पता चलता

है। तीनों गांवों की आदिवासी आबादी के बीच स्वास्थ्य की स्थिति के आंकड़ों के विश्लेषण से यह तथ्य सामने आता है कि साक्षरता और घरों में आर्थिक स्थिति बच्चों और महिलाओं की गंभीर स्वास्थ्य स्थिति के साथ प्रासंगिक नहीं है। बच्चों और महिलाओं के बीच खराब स्वास्थ्य स्थिति के पीछे मुख्य कारक भील परिवारों द्वारा भोजन उपभोग का वर्तमान स्तर और भोजन के संबंध में स्वास्थ्य जागरूकता की कमी है।

साक्षात्कार में शामिल लगभग सभी आदिवासी कृषक परिवारों ने जानकारी दी कि गेहूं और मक्का दैनिक पारिवारिक भोजन उपभोग का प्रमुख हिस्सा है। अध्ययन किए गए गांवों में बच्चों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने में आंगनवाड़ी एकमात्र स्रोत है। 98 प्रतिशत से अधिक आदिवासी कृषक परिवारों ने कहा कि उन्होंने अपने बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों को केवल तभी फल या दूध दिया जब वे बीमार पड़ गए या जब डॉक्टर ने इन खाद्य पदार्थों को लेने की सलाह दी। किसानों के साथ एक केंद्रित समूह चर्चा और तीनों गांवों में बुजुर्ग किसानों के साथ अनौपचारिक चर्चा के माध्यम से यह पाया गया कि परिवार की खाद्य आदतों के व्यवहार की वजह से उनकी पीढ़ी में बच्चों में कुपोषण या आदिवासी आबादी में रक्ताल्पता बहुत कम था। स्थानीय वृद्धजनों की धारणा के अनुसार अनाज (बाजरा की फसलें) जैसे कोदो, कुल्थी, कुटकी, ज्वार, बाजरा और रागी जैसे मोटे अनाज बहुत पौष्टिक होते थे और जलवायु परिस्थितियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखते थे। इसलिए उनकी पीढ़ी के लोगों को आज की पीढ़ी की तरह स्वास्थ्य संबंधी इतनी समस्याएँ नहीं थीं। इन बुजुर्ग किसानों ने बताया कि उनके समय में रोजमर्रा के खाने में कई तरह के खाद्य पदार्थ शामिल थे। वे तरह–तरह के मोटे अनाज खाते थे। उनके लिए आजकल केवल गेहूं और मक्का खाने के लिए उपलब्ध है। ये खाद्य पदार्थ पारंपरिक मोटे अनाज की तुलना में कम पौष्टिक हैं।

अधिकांश भील परिवार दिन में केवल दो बार भोजन करते हैं। झाबुआ से परिवार के खान–पान की जानकारी डूंगर–धन्ना, पाडलवा और अंबापाड़ा के सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आया है कि 80 प्रतिशत से अधिक भील परिवार दिन में दो बार भोजन करते हैं और गेहूं, मक्का और चावल उनके दैनिक भोजन की प्रमुख सामग्री है। डूँगरधन्ना के 75 प्रतिशत से अधिक भील परिवार दिन में दो बार भोजन करते हैं और 25 प्रतिशत से अधिक भील परिवार दिन में तीन बार भोजन करते हैं क्योंकि इस गाँव के परिवारों की आर्थिक स्थिति अन्य दो गाँवों की तुलना में मजबूत है। लेकिन इन तीनों गाँवों की प्रमुख खाद्य सामग्री एक जैसी है। पारिवारिक ऋण भी अपने परिवार के सदस्यों को कम पौष्टिक भोजन प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पाडलवा के किसानों ने बताया कि वे केवल बाजार के लिए खेती करने के बारे में सोचते हैं ताकि हमारा पारिवारिक ऋण जल्द से जल्द चुकाया जा सके। इसलिए, वे अपने बच्चों या परिवार के किसी भी सदस्य के लिए किसी भी अतिरिक्त पौष्टिक भोजन के बारे में नहीं सोचते हैं। खेती के लिए उनकी फसलों का चयन परिवार के ऋण की प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है न कि परिवार द्वारा भोजन की आवश्यकता से।

पेटलाबाद तहसील के अंबापाड़ा गांव में भले ही अन्य दो गांवों की तुलना में साक्षरता दर अच्छी है, लेकिन इस गांव में 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में 42 प्रतिशत से अधिक कुपोषण है, जो अन्य दो गांवों में पाए जाने वाले कुपोषण के प्रतिशत से अधिक है। डूँगरधन्ना में 6 साल से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण का प्रतिशत 30.6 प्रतिशत है और पाडलवा में यह 38 प्रतिशत है। सबसे बड़ा सामाजिक विरोधाभास यह है कि इन तीनों गांवों में कुपोषण के आंकड़े यह तथ्य प्रदान करते हैं कि लड़कियों की तुलना में लड़कों में कुपोषण का प्रतिशत अधिक है। डूंगरधन्ना में 41.30 प्रतिशत लड़के और 47.30 प्रतिशत लड़कियाँ कुपोषित हैं। पाडलवा में 52.63 प्रतिशत लड़के और 47.37 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का सामना कर रहे

हैं और अंबापाड़ा में 53.96 प्रतिशत लड़के और 46.07 प्रतिशत लड़कियाँ कुपोषित हैं। इससे आदिवासी विशेषताओं का पता चलता है कि पुरुष व बच्चों को अतिरिक्त देखभाल एवं अतिरिक्त पोषण उन्मुख भोजन सुविधाएं प्रदान करने में पितृसत्ता का अभाव है, लेकिन जब रक्ताल्पता वाले व्यक्ति के प्रतिशत की बात आती है, तो पुरुष रक्ताल्पता वाले व्यक्ति की तुलना में महिला रक्ताल्पता बहुत अधिक है। लिंग स्वास्थ्य की स्थिति पर भील परिवार की यह विरोधाभासी प्रकृति भील परिवार में पितृसत्तात्मक प्रथाओं के कारण नहीं है, बल्कि यह परिवार की खान–पान की आदतों के कारण है जहां महिला आबादी ज्यादातर परिवार के अंदर ही खाती है, लेकिन पुरुष आबादी ज्यादातर सप्ताह में कम से कम एक बार परिवार के बाहर खाना खाते है, जहां वे मांसाहारी भोजन या उच्च पौष्टिक भोजन लेते हैं।

परिवार के खान-पान के व्यवहार में परिवर्तन और एनीमिया की स्थिति:-

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (मध्य प्रदेश सरकार) के अनुसार, मध्य प्रदेश में पांच जिले के बच्चे (6–59 महीने) और महिलायें (15–49 वर्ष) रक्ताल्पता से गंभीर रूप से प्रभावित हैं। झाबुआ उन पांच जिलों में से एक है, जहां बड़ी संख्या में एनीमिया से पीड़ित बच्चे और महिला आबादी (15–49 वर्ष) के साथ रक्ताल्पता से पीड़ित है। मध्य प्रदेश में महिलाओं की कम उम्र में शादी रक्ताल्पता की उच्च दर से जुड़ी है क्योंकि राज्य के अधिकांश आदिवासी जिलों में कम उम्र में शादी आम बात है। झाबुआ जिले में भील (जनजाति) आबादी का प्रभुत्व है और भील समुदाय द्वारा कम उम्र में विवाह बड़े पैमाने पर किया जाता है। एनएफएचएस–5 (2019–21) सर्वेक्षण से पता चलता है कि 6–59 महीने की उम्र के बच्चे जो रक्ताल्पता से पीड़ित हैं, उनकी संख्या एनएफएचएस–4 (2015–16) सर्वेक्षण में 72.4 प्रतिशत से बढ़कर 80.1 प्रतिशत हो गई है। इसी तरह 15–49 वर्ष की आयु की सभी महिलाएं जो रक्ताल्पता से पीड़ित हैं, एनएफएचएस–5 और एनएफएचएस–4 सर्वेक्षण में 58.8 प्रतिशत पर स्थिर हैं।

झाबुआ में भील जनजाति के बच्चों और महिलाओं में रक्ताल्पता के उच्च प्रतिशत के पीछे प्रमुख कारण झाबुआ जिले में परिवार के भोजन व्यवहार में विविधतापूर्ण स्थानीय रूप से उगाई जाने वाली बाजरा फसलों से लेकर गेहूं और मक्का जैसे सीमित खाद्य पदार्थों के उपभोग तक का बदलाव है। झाबुआ में आदिवासी लोगों के बीच वर्तमान भोजन की खपत उनके भोजन की खपत का पारंपरिक तरीका नहीं था। स्थानीय मोटे अनाज की फसलों की खेती में कमी, वाणिज्यिक फसलों की बढ़ती दर और पीडीएस (सार्वजनिक वितरण प्रणाली) पर परिवार की निर्भरता ने भील परिवार के बीच रोजमर्रा के भोजन की जरूरत के व्यवहार को बदल दिया है। महिला आबादी द्वारा खाद्य किस्मों तक सीमित पहुंच से रक्ताल्पता का दुष्चक्र शुरू हो जाता है, जहां रक्ताल्पता से पीड़ित मां रक्ताल्पता से पीड़ित बच्चे को जन्म देती है। इसलिए, भील समुदाय में बच्चों (6–59 महीने) का प्रतिशत अधिक पाया जाता है। चूंकि पुरुष आबादी के पास विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों तक पहुंच है (विवरण ऊपर के अनुभाग में चर्चा की गई है), 15 वर्ष से अधिक उम्र की पुरुष आबादी में रक्ताल्पता बहुत कम है (डूँगरधन्ना और अम्बापाड़ा) ने इस तथ्य को उजागर किया है कि पीढ़ियों के बीच बदलता पारिवारिक भोजन व्यवहार परिवार के सदस्यों की स्वास्थ्य स्थिति से अत्यधिक जुड़ा हुआ है।

अध्ययन में तीन अलग–अलग तहसीलों के तीन गांवों में परिवार की तीन पीढ़ियों के बीच भोजन की खपत के स्तर और परिवार के सदस्यों में रक्ताल्पता के साथ इसके संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गई। चार अलग–अलग आयु समूहों से परिवार के भोजन की खपत के स्तर और परिवार के सदस्यों में रक्ताल्पता की स्थिति के बारे में जानकारी एकत्र की गई। किसानों के आयु समूह को इस प्रकार विभाजित किया गयाःअ) 25–35 वर्ष की आयु ब) 36–45 वर्ष की आयु स) 46–55 वर्ष

की आयु और द) 56 वर्ष और उससे अधिक आयु। विभिन्न आयु समूहों से जानकारी एकत्र करने के पीछे का तर्क विभिन्न आयु समूहों द्वारा उनके जीवनकाल में भोजन की खपत की किस्मों और उनके स्वास्थ्य की स्थिति के साथ इसके संबंध के बीच संबंध प्रदान करेगा। विभिन्न आयु समूह के किसानों से उनके परिवार के सदस्यों द्वारा वर्तमान समय में उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों और परिवार के सदस्यों में रक्ताल्पता की स्थिति, उनके पिता की पीढ़ी में उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों और उनके पिता के समय में परिवार के सदस्यों में रक्ताल्पता की स्थिति और उनके दादा के समय में उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उपभोग किए जाने वाले खाद्य पदार्थों और उनके दादा के समय में परिवार के सदस्यों में एनीमिया की स्थिति के बारे में जानकारी एकत्र की गई। अध्ययन किए गए तीनों गांवों में तीन पीढ़ियों के बीच पारिवारिक खाद्य उपभोग व्यवहार पर आंकड़ों का विश्लेषण यह तथ्य प्रदान करता है कि जिस पीढ़ी ने बाजरा की फसल खाई है (कम से कम एक किस्म और अधिक) उस पीढ़ी में रक्ताल्पता की दर कम है।

निष्कर्ष: विभिन्न आयु समूहों में एनीमिया के रुझान

कुल जनसंख्या में से विभिन्न आयु समूहों में परिवार के सदस्यों में रक्ताल्पता की प्रवृत्ति अलग–अलग प्रकृति को दर्शाती है। यह पाया गया है कि 25–35 आयु समूह के बीच परिवार के सदस्यों में रक्ताल्पता का प्रतिशत बहुत अधिक है और यह आयु समूह के बढ़ने के साथ घटता है। बढ़ती आयु समूह के साथ रक्ताल्पता वाले व्यक्तियों के प्रतिशत में इस घटती प्रकृति के पीछे एक कारण वे खाद्य पदार्थ हैं जो विभिन्न आयु समूहों द्वारा अपने जीवनकाल में खाए जाते हैं। 25–35 आयु समूह के लगभग सभी किसानों ने कहा कि उन्होंने अपने भोजन के रूप में केवल गेहूं और मक्का खाया है। इस आयु समूह में, पुरुष बाहर का खाना खाने और मांसाहारी खाद्य पदार्थों सहित विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को खाने के बहुत इच्छुक होते हैं, इसलिए इस आयु समूह के पुरुषों में रक्ताल्पता की दर बहुत कम है। लड़कियों की कम उम्र में शादी और रोजमर्रा के भोजन की सीमित उपभोग (केवल गेहूं और मक्का) के कारण, इस आयु समूह की महिला आबादी में रक्ताल्पता की दर अधिक पाई जाती है। जिन किसानों से साक्षात्कार किया गया, उनकी आयु समूह की बढ़ती उम्र के साथ उन्होंने कहा कि उन्होंने और उनके परिवार के सदस्यों ने बचपन में बाजरा, ज्वार, कोदो, कुटकी, कुल्थी और रागी (स्थानीय मोटे अनाज) जैसी फसलें खाई हैं। पीढ़ी के बीच विविध स्थानीय मोटे अनाज फसलों से केवल गेहूं और मक्का के भोजन के व्यवहार में परिवर्तन की यह प्रवृत्ति और तीन अलग–अलग पीढ़ियों की आबादी के बीच रक्ताल्पता की स्थिति और अलग प्रकृति इस तथ्य को उजागर करती है कि मोटे अनाज फसलों के उत्पादन में गिरावट और झाबुआ जिले के भील जनजाति के बीच वाणिज्यिक नकदी फसलों की खेती की बढ़ती दर से बाजरा फसलों की खपत में कमी आई है, जिससे वर्तमान परिदृश्य में विशेष रूप से महिला आबादी और कुपोषित बच्चों में रक्ताल्पता का प्रतिशत अधिक है।

समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग
डॉ हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश)
psomya691@gmail.com

सन्दर्भः

1. *Baskin, Y. (1997). The work of nature: How the diversity of life sustains us. Washington, DC: Island Press.*
2. *Banerjee, P., &Maitra, S. (2020). The role of small millets as functional food to combat malnutrition in developing countries.Indian Journal of Natural Sciences, 10.*
3. *Bhalla, G. S., et al. (1990). Agricultural growth and structural change in the Punjab economy: An input-output analysis (Research Report-82). Washington, DC: International Food Policy Research Institute.*
4. *Bishwas, R. K., &Kapoor, A. K. (2003).Age at menarche and menopause among Shaharia women. The Anthropologist, 7(2).*
5. *Browne, J., et al. (2020). Effects of food policy actions on indigenous peoples' nutrition-related outcomes: A systematic review. BMJ Global Health, 5(8).*
6. *Cline, W. R. (2007).Global warming and agriculture: Impact estimates by country. Washington, DC: Center for Global Development and Peterson Institute for International Economics.*
7. *Corbridge, S., &Harriss, J. (2000).Reinventing India: Liberalization, Hindu nationalism and popular democracy. New Delhi: Oxford University Press.*
8. *Deol, T. (2022, May 24). Do tribal lives matter? Life expectancy, health indicators stay poor in Madhya Pradesh. Down to Earth.*
9. *FAO, IFAD, UNICEF, WFP, & WHO. (2018). The state of food security and nutrition in the world 2018: Building climate resilience for food security and nutrition (pp. 1–26). Rome: FAO.*
10. *Ghosh-Jerath, S., et al. (2013). Dimensions of nutritional vulnerability: Assessment of women and children in Sahariya tribal community of Madhya Pradesh in India. Indian Journal of Public Health, 57(4), 360–367.*
11. *Government of India.(2016). Annual report 2015–16. New Delhi: Department of Agriculture and Cooperation and Farmers Welfare, Ministry of Agriculture and Farmers' Welfare.*
12. *Gull, A., et al. (2014). Significance of finger millet in nutrition, health and value-added products: A review. Journal of Environmental Science, Computer Science and Engineering & Technology, 3(3), 1601–1608.*
13. *Hiremath, R., & P. (2004).Technology adoption and farm management in rural livelihood systems in Gujarat.In R. Baumgartner & R. Hogger (Eds.), In search of sustainable livelihood system (pp. xxx–xxx). New Delhi: Sage Publishers.*
14. *Hrideek, T. K., &Nampoothiri, K. U. K. (2018).Millets as an integral part of nutritional diet in India. In S. Benjamin (Ed.), The development, regulation, and consumption of functional foods (pp. xxx–xxx). USA: IGI Global.*
15. *International Labour Organization. (2021). Who are the indigenous and tribal peoples? Indigenous and Tribal Peoples Convention, No. 189.*
16. *Kanade, A. M., &Bhosale, R. S. (2013).Decline in traditional millet farming in tribal trace areas of AmbegaonTaluka.Advances in Plant Sciences, 26(2), 211–212.*
17. *Kuhnlein, H. V., et al. (2013). Indigenous peoples' food systems and well-being: Interventions and policies for healthy communities. Rome: Food and Agriculture Organization of the United Nations.*

18. *Kumar, A., et al. (2018). Millets: A solution to agrarian and nutritional challenges. Agriculture & Food Security, 7, 31.*

19. *Kumar, R. (2016). Rethinking revolutions: Soybean, choupals, and the changing countryside in Central India. New Delhi: Oxford University Press.*

20. *Muthamilarasan, M., & Prasad, M. (2021). Small millets for enduring food security amidst pandemics.Trends in Plant Science, 26(1), 33–40.*

21. *Nair, M. K. (2016). Food-based interventions to modify diet quality and diversity to address multiple micronutrient efficiency.Frontiers in Public Health, 3(277).*

22. *Nayak, B. S. (2015). From 'needs-based development' to 'desired-development': Locating the Freudian idea in the social and economic development of tribals following the new economic reforms in India. International Critical Thought, 3(1), 59–67.*

23. *Newmaster, S. G., et al. (2013). Valorization of the fine scale classification of small millet landraces in southern India.Genome, 56(2), 123–127.*

24. *Pramitha Lydia, J., et al. (2021). Small millets: Exploring the hidden potential. Delhi: Scripown Publications.*

25. *Rawat, J. M., et al. (2021). Preparation of alcoholic beverages by tribal communities in the Indian Himalayan region: A review on traditional and ethnic consideration. Frontiers in Sustainable Food Systems, 5, 672411.*

26. *Satyarthi, K. S., et al. (2018). Traditional food grain crops of Himachal Pradesh. Shimla, Himachal Pradesh: Himachal Pradesh Council for Science, Technology and Environment, Bemole.*

27. *Scoones, I. (2001). Dynamics and diversity: Soil fertility management and farming livelihoods in Africa: Case studies from Ethiopia, Mali and Zimbabwe. London: DFID.*

28. *Scoones, I. (2006). Science, agriculture, and the politics of policy: The case of biotechnology in India. Hyderabad: Orient Longman.*

29. *Shiva, V. (1993).Monocultures of mind. Trumpeter: Research Foundation for Science.*

30. *Singh, P. (2012). Finger millet for food and nutritional security.African Journal of Food Science, 6(4), 77–84.*

31. *Tester, M. P. (2010).Breeding technologies to increase crop production in a changing world.Science, 327, 818–822.*

32. *Venkatesan, P., et al. (2015). Ethno-taxonomical classification of little millet (Panicumsumatrense) by the tribal people in Tamil Nadu, India.Eco.Env. Cons., 21, 215–222.*

33. *Vetriventhan, M., &Upadhyaya, H. D. (2018).Diversity and trait-specific sources for productivity and nutritional traits in the global proso millet (Panicummiliaceum L.) germplasm collection.Crop Journal, 6(5), 451–456.*

भुंजिया जनजाति की जीवनशैली का समकालिक विश्लेषण

संजीव रंजन[1], संजीव कुमार लवानियाँ[2]

सारांश

जनजातियों की जीवन शैली खासकर उनका सामाजिक ताना–बाना बाहरी जगत को हमेशा आकर्षित करता रहा है सामाजिक विज्ञान के अध्येता उनके जीवन में पीढ़ियों से चली आ रही परंपरा की विवेचना व अध्ययन करते है। इस शोधपत्र का उद्देश्य छत्तीसगढ़ के गरियाबन्द जिले की मुख्य आदिम जनजाति भुंजिया की उत्पत्ति के साथ उनके विभिन्न सामाजिक पहलूओं, सांस्कृतिक परम्पराओं और आधुनिक आर्थिक दशा पर प्रकाश डालना है आज के समय में अनेक सरकारी और गैर–सरकारी संगठन उनकी दशा सुधारने के लिए निरंतर कार्यरत है। इस प्रयास के पीछे जिन संवैधानिक प्रावधानों की भूमिका है उनका भी उल्लेख किया गया है भुंजिया जनजाति के जीवन पर विभिन्न सरकारी योजनाओं के प्रभाव का उल्लेख करते हुये क्या कुछ और किया जा सकता है इसका विश्लेषणपूर्वक सुझाव दिया गया है

बीज शब्द: जनजाति, नक्सल, लाल बंगला, अनुसूचित जनजाति, जनजाति अभिकरण, गरियाबन्द

छत्तीसगढ़ जब 01 नवम्बर 2000 को मध्यप्रदेश से 1,35,192 वर्ग कि०मी० का भू–भाग लेकर एक नया राज्य बना तो उसके हिस्से कई रिकॉर्ड स्वतः आए। यह देश का 26वाँ राज्य बना। यह दसवाँ सबसे बड़ा राज्य था। इसके हिस्से देश के कुल क्षेत्रफल का 4.11 प्रतिशत भौगोलिक भू–भाग आया, जो पठार, उपजाऊ मैदान, नदियाँ, वन इत्यादि से भरा था । इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश, उत्तर–पश्चिम में मध्य प्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र, दक्षिण–पश्चिम में तेलंगाना, दक्षिण में आंध्रप्रदेश, दक्षिण–पूर्व एवं पूर्व में उड़ीसा, और उत्तर–पूर्व में झारखण्ड सहित सात राज्य पड़ोसी के रूप में मिले। 16 जिलों की जवाबदेही मिली जो 2022 में बढ़कर 33 प्रशासनिक जिले, 5 संभाग, 117 अनुविभाग, 251 तहसीलें, 146 ब्लॉक और 5050 ग्राम पंचायतों व 146 ब्लॉक में 85 आदिवासी विकासखंड की विशाल श्रृंखला हो गयी है छत्तीसगढ़ के मैदानी भाग, उत्तर का पठार व बस्तर पठार इन तीन मुख्य भौगोलिक पट्टियों में पूरा छत्तीसगढ़ फैला हुआ है इसके संभाग क्रमशः सरगुजा, बिलासपुर, दुर्ग, रायपुर और बस्तर हुए। जनजाति समाज की बड़ी श्रृंखला व संख्या इस राज्य के हिस्से आयी, जो सभी संभाग के जिलों में फैलने के साथ–साथ कई पड़ोसी राज्यों तक विस्तृत है[1] पण्डो और भुंजिया छत्तीसगढ़ राज्य की दो प्रमुख जनजातियाँ है। पण्डो जनजाति मुख्य रूप से सरगुजा, सूरजपुर और बलरामपुर जिलों में पाई जाती है, जबकि भुंजिया जनजाति मुख्य रूप से गरियाबंद और धमतरी जिलों में पाई जाती है पण्डो अपना पूर्वज पांडवों को मानते है जो अज्ञातवास के दौरान जनजातियों के बीच चुप–चाप खेती करते हुए रहते थे। पण्डो समाज के साथ एक

अन्य रोचक तथ्य यह है कि आजादी के बाद तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद 22 नवम्बर 1952 को सरगुजा के महाराजा रामानुजशरण सिंहदेव, जिन्हे अंग्रेजी सरकार ने उनके प्रथम विश्वयुद्ध में सहयोग देने के चलते कमांडर ऑफ दि ब्रिटिश इम्परर की उपाधि दी थी, के साथ एक बार पण्डो क्षेत्र में पहुँचे और एक कुटिया में रात बिताकर पण्डो जनजाति के प्रति अपना अनुराग व संवेदनशीलता दर्शायी। पण्डो लोगों की बदहाली देखकर उन्होंने उसे गोद लिया और तबसे पण्डो विकास अभिकरण सूरजपुर व अन्य एजेंसियों के माध्यम से सरकार उनके विकास हेतु कार्य कर रही है[2]

पण्डो की भाँति भुंजिया जनजाति भी सांस्कृतिक रूप से समृद्ध और रोचक है उदाहरण के लिए इनका प्रसिद्ध लाल बंगला कोई बड़ा बंगला या महल नहीं होकर घास–फूस, खपरैल, लकड़ी का बना एक छोटा–सा घर होता है जहाँ उनका खाना पकता है और यह विशेषरूप से चोकटिया भुंजिया जनजाति के लोगों का खास स्थान है इसके रामायणकालीन संदर्भ है सीताहरण के बाद राम और लक्ष्मण उन्हे खोजने के क्रम में भुंजिया वनवासियों के पास गए, जहाँ इन लोगों ने उनकी सहायता की। इस समाज ने जब उनके साथ हुए हादसे को सुना तो अपने परिवार की औरतों की सुरक्षा को लेकर चिन्तित भी हो गया। भुंजिया महिलाओ ने लक्ष्मण से उनके लिए भी सुरक्षा रेखा खींचने की विनती करती है, और तभी से उनके समाज में यह प्रथा रही है कि उनका रसोईघर लाल बंगला[3] लक्ष्मण रेखा के सुरक्षा घेरे में होता है लाल बंगला परिवार के पुरुष और महिलाओं के लिए बनाये गए घर तथा पूजाघर से अलग संरचना होती है दीवारें प्रायः बांस या ईंट की और छत घास–फूस और बाँस–बल्ली से बनाते है। इसकी छत कभी–कभी खपरैल होती है, खपड़े वे स्थानीय स्तर पर ही पकाकर तैयार करते है। महिलायें गोबर से इसकी लिपायी करती है और खाना पकाने के लिए चूल्हा बनाती है। यह ग्यारह स्तंभों या खूंटो पर बना करीब 10 फीट ऊँचा दीवार का ढाँचा होता है जो लाल रंग से रंगा होता है[4] इसमें केवल एक प्रवेश द्वार होता है इस प्रकार यह साधारण ढाँचा भुंजिया जनजाति के जीवन, खासकर गृहस्थ या दाम्पत्य जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी है खाना पकाने के कारण इस लाल बंगला को रंघनी घर या रंघनी कुरिया भी कहते है।

छत्तीसगढ़ सरकार ने जनजातियों की उत्पत्ति, सामाजिक स्थिति व संगठन, राजनैतिक, धार्मिक, पारिवारिक परम्पराओं व सामाजिक रीतियों से परिचय कराने के लिए नौ जनजातियों पर विस्तृत अध्ययन करवाकर एक मोनोग्राफ के रूप में प्रकाशित किया है छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, नवा रायपुर की प्रमुख एवं आदिम जाति तथा अनुसूचित जाति विकास, छत्तीसगढ़ की आयुक्त शम्मी आबिदी[5] ने बताया कि ये मोनोग्राफ किसी एक खास विषय या जनजातीय समुदाय पर विद्वतापूर्ण शोध कार्य है जिनका उद्देश्य इसमें शामिल बौद्धिक जानकारी को विद्वानों और अगली पीढ़ियों के लिए सहेजकर रखना है इस अध्ययन में इन जनजातियों के जीवन के सभी पहलूओं के साथ उनकी विशेष पहचान को खास ढंग से प्रस्तुत कर उन्है भविष्य के लिए दस्तावेजों के रुप में सुरक्षित किया गया है इसमें सबसे पुरानी व बड़ी जनजाति गोंड के परम्परागत नियम–कानून, हल्बा के जनजातीय कानून, पहाड़ी कोरबा, कमार, मझवार, खडिया के पारंपरिक मान्यताओं, उराँव के सरना उत्सव व सांस्कृतिक परिवर्तन, मडई जनजाति नारायणपुर की मावली, बैगा के गोदना, भुंजिया के लाल–बंगला, कमार के बाँस बर्तन निर्माण, खैरवार के कत्था निर्माण, हडिया के सरगुजा क्षेत्र में मद्य निर्माण विधि को समाहित किया गया है

भुंजिया जनजाति का प्रमुख क्षेत्र गरियाबंद रायपुर से करीब एक सौ किमी है गरियाबन्द 'गिरि' शब्द से बना है जिसका अर्थ पहाड़ी होता है पठारों की अधिकता के कारण यह क्षेत्र गरियाबन्द कहलाता है जिसकी सीमा उड़ीसा के साथ दुरूह क्षेत्र से मिलती है इसी जिले में दूसरे जनजाति कमार का

उद्‌गम देवडोगरी में है व जिसकी जीवन शैली भुंजिया से मिलती है व उनका भी पितृवंशीय समाज है[6] गरियाबन्द से सटे उड़ीसा का भाग नुआपाड़ा जिले का सुनाबेड़ा है जो इस जनजाति का मूल प्रदेश व जन्मस्थान है यहाँ सुनादेई देवी[7] का प्रसिद्ध मंदिर है अंग्रेजों के समय यह महासमुन्द तहसील में था। प्रारंभ में बिन्द्रानवागढ़ तहसील के नाम से इस जिले का अस्तित्व था। चूँकि भुंजिया जनजाति मूलरूप से इसी जिले के विभिन्न गाँवों में निवासरत है, अतः शोध का केन्द्र गरियाबन्द जिला है गरियाबन्द जिले में कुल 306 ग्राम पंचायत व 710 गाँव है। इस जिले में 67% वन है और यहाँ जंगली भैंसे के प्रजनन व संवर्धन का केन्द्र है उदन्ती–सीतानदी टाईगर रिजर्व यहीं है हीरा, कोरेण्डम जैसे बहुमूल्य रत्न व अन्य धातु यहाँ उपलब्ध है कृषि की दशा सिंचाई के चलते उन्नत है यहाँ महानदी, सोन्ढूर और पेरी नदी के संगम पर राजिम में कुम्भ आयोजित होता है यहाँ स्थित राजीवलोचन मंदिर व कुलेश्वर महादेव मंदिर अति प्राचीन है। यह जगह प्राचीन धार्मिक स्थलों राजिम त्रिवेणी संगम, लोमश ऋषि आश्रम, सिहावा आदि के अलावा ऐतिहासिक अवशेष, पाण्डुका डोकयार्ड, धनी संस्कृति, उन्नत सामाजिक व्यवस्था, समृद्ध वन एवं वन उत्पाद आदि के लिए जानी जाती है[8] भुंजिया की आबादी 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 7500 है जो छत्तीसगढ़ की जनजाति जनसंख्या का 0.8 प्रतिशत है ये प्रमुखतः छत्तीसगढ़ राज्य के गरियाबन्द जिले के तहसील बिन्द्रानवागढ के विकासखण्ड, गरियाबन्द, मैनपुर, छुरा, राजिम, फिंगेश्वर में निवासरत है। इसी गरियाबंद के मधुवन, डोगापथार, महानदी तट, लीदर, रूद्री ग्राम होकर श्रीराम प्राचीन दण्डकारण्य में वन गमन कर नजदीकी सिहावा पहुँचे थे जहां आज यह आदिम जनजाति रहती है[9] बिन्द्रानवागढ़ का क्षेत्र पहले नवगढ़ कहलाता था, जहाँ 500 वर्ष पूर्व धुरवा नामक राजा राज करता था।

प्रकृति की गोद में जीवन जीने वाले भुंजिया सीधे–साधे लोग है। चौकुटिया, चिंदा और खोलारझिया इनके तीन उपजाति है जबकि इनके टाईटिल नेताम, मरकाम, सोनवानी, बोकरा, बधवा, चितवा, सुआ है और ये अपने को कछिन (कछुआ) वंश या नेताम वंश या मेचका (मेंढक) वंश या मरकाम वंश के मानते है।[10] इनका पितृसत्तात्मक समाज है जहाँ महिलाएँ परिवार की देखभाल और खेती में मदद करती है। भुंजिया पुरूषों की औसत ऊंचाई 5 फिट 4 इंच व महिलाओं की 5 फिट 1 इंच होती है इनकी शारीरिक बनावट गोंड जनजाति से मिलती है इन्हे प्रोटो आस्ट्रेलायड प्रजाति का माना गया है इनकी भाषा को भुंजियाई कहा जाता है, जिसमे हल्वी, गोंडी व उड़िया भाषा के प्रभाव होते है भुंजिया बाहरी लोगों के साथ अवधी मिश्रित हिन्दी व छत्तीसगढ़ी बोलते है। अपनी भाषायी संस्कृति पर इन्हे गर्व है और अपने पारंपरिक वेशभूषा व तीर–धनुष इत्यादि के साथ ये कार्यालयों व मतदान केन्द्रों तक जाते है।[11] भाषाशास्त्री डा० भोलानाथ तिवारी (1964) ने तो अपने भाषायी वर्गीकरण में भुंजिया जनजाति की भाषा को मुण्डा सदृश भाषा कहा है

भुंजिया में मजबूत पारिवारिक कड़ी की परंपरा है जहाँ बेटा पिता के साथ वन उत्पाद संग्रह में लगता है और लड़कियां घरेलू कामों में। आधुनिक शिक्षा की पहुँच के बाद अब उन्है स्कूल जाने का अवसर मिलता है दिनवारी (वैवाहिक पंडित), महालाकरिया (वैवाहिक कार्य करने वाली स्त्रियाँ) तथा सोनवानी (मृत्यु संस्कार कराने वाला) तथा फैसले व न्याय करने वाले पंचों की उपलब्धता व महत्ता है जो सामाजिक बंधन को सुदृढ़ रखता है रोचक बात यह है कि सारे मसले समाज के स्तर पर हल हो जाते है और इसलिए अदालत की उन्हे शायद ही जरूरत पड़ती है ये पूर्वजों का सम्मान करते है। आत्मा के अस्तित्व में इनका दृढ़ विश्वास है इनके देवी–देवता ठाकुर देव, शीतलामाता, माटीदार आदि है। नवाखायी (नये फसल), डूमा पितर (पूर्वजों का सम्मान) व देवारी (पशु–पूजा) इनके प्रमुख त्योहार है।

चूड़ी विवाह, पैठू विवाह, पलायन, लमसेना, कांड विवाह, दूध लौटाना इस समाज की शादी की विधियाँ है।[12] वैवाहिक संबंध नजदीक होने से इनका सामाजिक एवं पारिवारिक संगठन मजबूत होता है तथा वे आपस में घनिष्ठ बंधन में बंधे रहते है। ये जीवन साथी के चयन में लड़की की सुन्दरता पर अधिक जोर नहीं देते है, बल्कि सभी कलाओं को समान महत्त्व देते है। सादा व साफ पोशाक के अलावा इस जनजाति के लोग पारंपरिक केश श्रृंगार, जेवर, पोलका, धोती साड़ी आदि पहनते है।[13] पंचायत व्यवस्था प्रमुख है जो आपसी झगड़ों के निपटारे के साथ अर्थ व श्रम दण्ड तक देती है जादू–टोना, झाड़–फूँक के साथ तपते लोहे से इस जनजाति के लोग बीमारी का इलाज करते है। यद्यपि भुंजिया जनजाति अपनी संस्कृति को तमाम प्रतिकूलता के बावजूद सुरक्षित रखी है लेकिन समय के साथ मोबाईल और टी.वी के चलते इनपर भी आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ रहा है[14] भुंजिया समाज में सामूहिकता का वर्चस्व है, खेती–बाड़ी, उत्सव, पूजा–त्योहार, फसल, सुख–दुःख सबमें सब मिलजुलकर काम करते है। मुख्य फसल चावल, कोदो, मूडूवा, मकई, मोटा अनाज उपजाने के साथ ये निरामिश भोजन करते है। शिक्षा के चलते आए बदलाव से वे वनोपज छोड़कर अन्य छोटे मोटे कार्य जैसे मिस्त्री, किराने सहित अन्य दूकान, कुटीर उद्योग इत्यादि में भागीदारी करते है। यह जागरूकता उन्हे रोड की कमी के बावजूद पैदल चलकर मतदान केन्द्र तक पहुँचने व अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए प्रोत्साहित करती है[15] सच कहा जाये तो बढ़ती पढ़ाई–लिखाई उनमें नवीन सामाजीकरण व संस्कृतिकरण कर रही है जन्म नामकरण आदि से जुड़े संस्कार उनमें है। अब उनमें आधुनिक नाम भी रखा जाता है शादी संस्कार में भी आधुनिकता का समावेश हुआ है औरतें मेहनती होती है और गोदना व जेवर का इस्तेमाल करती है। गाय, बैल, कछुआ, तुलसी, पीपल की पूजा के साथ ये प्रकृति की पूजा करते है। मृत्यु संस्कार में भी परिवर्तन हुआ है–मृतक भोज का विरोध होने लगा है मृतक को दफनाने व दाह संस्कार, अस्थि संगम विसर्जन, शांति भोज, पंडाल कुर्सी व हिन्दू रीतियों का अनुसरण करते मिल जायेंगे। गोत्र का पालन सख्ती से करते है। भुंजिया जनजाति अपनी संस्कृति का बचाव दृढ़ता से करते है जो अरूणाचल प्रदेश के जीरो घाटी के अपातानी[16] जनजाति की याद दिलाता है, जो शत्रु के आक्रमण के समय अपनी औरतों के बचाव के लिए टेटू के जरिये उनका चेहरा कुरूप कर देते थे। भुंजिया ऐसा तो नहीं करती किन्तु अपने सामाजिक नियमों का पालन कठोरता से करती है, ताकि उनकी संस्कृति और उनका अस्तित्व सुरक्षित रहै भुंजिया का शाब्दिक अर्थ आग में पक या भून जाना है और यह शुद्धीकरण की भी प्रक्रिया है जिस कारण ये जनजाति अपने को पवित्र मानती है एवं जीवन में स्वच्छता के प्रतीक उजले कपड़े का इस्तेमाल करती है पारिवारिक वंशावली पुरूष की चलती है पितृसत्तात्मक होने के कारण निर्णय पुरूष, पंचायत–पुरूष, प्रधान प्रायः पुरुष बनते रहे है, परंतु अब भुंजिया परिवार की औरतें पंच व शिक्षिका बन रहीं है। गरियाबंद पंचायत की भूतपूर्व अध्यक्षा कुमारी बाई भुंजिया औरतों के सामाजिक स्थिति में बदलाव की प्रतीक है।[17] संयुक्त परिवार की तुलना में एकाकी परिवार ज्यादा मिलते है। पढ़ाई के चलते परिवार की सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो रहा है शासन द्वारा प्रचारित–प्रसारित शिक्षा व नियमों के चलते इनके यहाँ भी स्त्रीधन, पति–पत्नी संबंध, बच्चों का भरण–पोषण, अधिकार, सजगता, स्वास्थ्य की चर्चा अब होने लगी है केन्द्र व राज्य सरकारी की विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं से जनजातीय समाज की प्रगति हो रही है इन बदलाओं के पीछे संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता रही है जिन्होंने सदियों से उपेक्षित, प्रताड़ित और अविकसित जनजाति समाज की कल्याण व विकास की बातों को प्राथमिकता देते हुए संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किए:

अनुच्छेद–15 (4) राज्य सरकारो को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के उन्मूलन हेतु विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है

अनुच्छेद–16 (4) राज्य सरकार की सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण प्रदान करने की अनुमति देता है

अनुच्छेद–16 (4ए) राज्यों को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए पदोन्नति में आरक्षण के प्रावधान की अनुमति देता है

अनुच्छेद–16 (4बी) अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के लिए आरक्षित रिक्तियों को एक वर्ष से अगले वर्ष तक आगे बढ़ाने की अनुमति देता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि ये रिक्तियाँ नष्ट न हों और बाद के वर्षों में भरी जा सकें। यह प्रावधान आरक्षित पदों के किसी भी लंबित मामले को संबोधित करते हुए, किसी दिए गए वर्ष में 50% आरक्षण सीमा को पार होने से रोकता है

अनुच्छेद–23 बंधुआ मजदूरी की समाप्ति की घोषणा करता है

अनुच्छेद–24 बाल श्रम प्रतिबंधित करता है (14 साल से कम)।

अनुच्छेद–29 अनुसूचित जनजाति को अपनी भाषा, बोली एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार देता है

अनुच्छेद–46 अनुसूचित जनजाति के शैक्षणिक व आर्थिक विकास की सुरक्षा सुनिश्चित करता है

अनुच्छेद–164 (ए) छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, झारखण्ड में अनुसूचित क्षेत्रों के राज्यों में जनजाति मंत्री का प्रावधान करता है

अनुच्छेद–244 अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन हेतु पाँचवीं अनुसूची और छठी अनुसूची के प्रावधानों को लागू करता है

अनुच्छेद–244 (ए) छठी अनुसूची के तहत् असम, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा के अलावा अन्य राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों में जनजाति के प्रशासन व नियंत्रण हेतु पाँचवी अनुसूची के प्रावधानों को लागू करता है

अनुच्छेद–275 जनजाति क्षेत्र के लिए विशेष अनुदान की व्यवस्था करता है

अनुच्छेद–275 (1) अनुसूचित जनजाति के कल्याण हेतु भारत की संचित निधि से अनुदान सहायता प्रदान करने का प्रावधान करता है

अनुच्छेद–330 यह लोकसभा के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था करता है

अनुच्छेद–332 यह राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है

अनुच्छेद–338 (ए) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन का प्रावधान करता है

अनुच्छेद–341 अनुसूचित जाति की पहचान का प्रावधान करता है

अनुच्छेद–342 अनुसूचित जनजाति की पहचान का प्रावधान करता है

अनुच्छेद–342(ए) अनुसूचित जनजाति के अधिकारों व हितों की रक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान, अनुसूचित जनजाति हेतु सेवा, सुरक्षा उपाय, आर्थिक अधिकार, सामाजिक अधिकार, शैक्षिणक अधिकार व सांस्कृतिक अधिकार की व्यवस्था करता है

अनुच्छेद–350 विशिष्ट भाषाओं, लिपियों या संस्कृतियों के संरक्षण के अधिकारों का प्रावधान करता है

उपर्युक्त अनुच्छेदों के अनुरूप और उनकी अनुपालन में छत्तीसगढ़ में जनजातियों के विकास व सुरक्षा हेतु विभिन्न योजनाएँ, अभिकरण और प्रकोष्ठ गठित कर उनके समग्र विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है

केन्द्र सरकार द्वारा आदिम जनजातियों के कल्याण हेतु निम्नलिखत योजनाएँ चलायी जा रही हैः छात्रावास, शिक्षा, रोजगार बढ़ोतरी हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षण, कोचिंग, छात्रवृत्ति, राजीव गाँधी राष्ट्रीय फेलोशिप, अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के बीच शिक्षा, आश्रम विद्यालय की स्थापना, एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय, जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, वनबंधु कल्याण योजना, अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों के अनुरुप योजना, न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से लघु वनोपज योजना, जनजातीय उत्पादों के विकास हेतु संस्थागत समर्थन, लघु वनोपज योजना, विश्व बैंक परियोजना, अनुसंधान सूचना, शिक्षा, जनजातीय महोत्सव, शिक्षा के व्यापक योजना, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त व विकास निगम, आदिवासी महिला सशक्तिकरण योजना (SMSY), सावधि ऋण योजना, माइक्रो क्रेडिट योजना, आदिवासी शिक्षा ऋण योजना, जनजातीय वनवासी सशक्तिकरण योजना, ट्राइफेड के पैनल में शामिल कारीगरों की मद्द आदि देशव्यापी कल्याणकारी योजनाएँ से केन्द्र सरकार जनजातीय समाज के कल्याण के लिए कार्य कर रही है और सत्स प्रयत्नशील है प्रधानमंत्री का जनजाति आदिवासी न्याय महाअभियान (पी.एम–जनमन) सर्वाधिक बजट वाला कार्यक्रम है

छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा आदिम जनजातियों के विकास हेतु चलायी जा रही कल्याणकारी योजनाएँ[18]: राजीव गांधी किसान योजना, 2500 रूपया धान का समर्थन मूल्य, सहकारी नीति से सुगम हुई खेती, राजीव गांधी भूमिहीन कृषि मजदूर न्याय योजना, तेन्दू पत्ता संग्रहण और लघुवनोपज की खरीदी नीति, छत्तीसगढ़ सरकार की बिजली बिल हाफ योजना, किसानों के सिंचाई पम्पों का निःशुल्क एवं रियायती दर पर बिजली, डॉ० खूबचन्द बघेल स्वास्थ्य सहायता योजना, मुख्यमंत्री विशेष स्वास्थ्य योजना, गोधन न्याय योजना से रोजगार और आत्मनिर्भरता, श्री धनवंतरी मेडिकल स्टोर योजना, सुरजी व गोधन न्याय योजना, नरवा, गरवा, घुरवा, बाड़ी विकास कार्यक्रम, छत्तीसगढ़ में मछली पालन, लाख और रेशम कीट पालन और मधुमक्खी पालन सहायता योजना, छत्तीसगढ़ मिलेट मिशन और कोदो–कुटकी, रागी की समर्थन मूल्य पर खरीदी, 17.82 लाख किसानों का 9270 करोड़ रूपए कृषि ऋण माफ योजना और 13.62 लाख किसानों को 6067 करोड़ रूपये का कृषि ऋण वितरण योजना सफलीभूत किया गया। गरियाबंद की विमला बाई के साथ विशेष पिछड़ी जनजाति की 64 दीदियों को सरकार ने इंडिगो जहाज से दिल्ली राष्ट्रपति भवन भेजा व उन्हे प्रोत्साहन पाने का अवसर दिया। इन प्रयासों ने जनजाति महिला समूह के सशक्तिकरण व कल्याण के लिए उत्साहवर्धन किया।[19] जनजातीय समाज की मर्यादा व गौरव बढ़ाने के लिए राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री गरियाबंद के आदिम जनजाति से मिलते व संवाद करते है।[20]

छत्तीसगढ़ हस्त विकास बोर्ड द्वारा संचालित योजनाएं और ऐसी अन्य कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से छत्तीसगढ़ सरकार जनजातियों के लिए और खासकर गरियाबन्द जिले के भुंजिया जनजाति के कल्याणार्थ चल रही योजनाओं का विवरण निम्नानुसार हैः

क्रम संख्या	योजना नाम	वर्ष	उद्देश्य
01	बेरोजगारी भत्ता	1 अप्रैल 2023	युवाओं को आर्थिक सहायता के रूप में 113 करोड़ का भुगतान
02	छत्तीसगढ़ असंगठित कर्मकार राज्य सामाजिक सुरक्षा मंडल योजनाएं	मुख्य रूप से 2008 के अधिनियम और 2011 में मंडल के गठन के बाद से संचालित हो रही हैं। विशेष रूप से, मुख्यमंत्री असंगठित कर्मकार सहभागिता सहायता योजना 28 अप्रैल 2012 को और मुख्यमंत्री निर्माण श्रमिक दीर्घायु सहायता योजना 11 जनवरी 2012 को शुरू की गई थी।	श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना
03	स्व-सहायता समूह	15 अगस्त 2003	महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना (13 लाख+ महिलाएं)
04	छत्तीसगढ़ धनवंतरी योजना	20 अक्टूबर 2021	स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना
05	वृद्धा पेंशन योजना	वित्तीय वर्ष 2018-19 में शुरू की गई थी।	वृद्ध नागरिकों को पेंशन सहायता देना
06	मुख्यमंत्री ज्ञान प्रोत्साहन योजना	2019 में शुरू हुई थी।	छात्रों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देना
07	मुख्यमंत्री सक्षम सुरक्षा योजना	वर्ष 2009-10 से शुरू हुई है।	समाज की सुरक्षा और सशक्तिकरण
08	छत्तीसगढ़ पोनी पसारी योजना	5 दिसंबर 2020 को विडीयो कान्फ्रेंस के माध्यम से पौनी पसारी योजना की घोषणा किया गया था।	स्थानीय व्यवसायों को बढ़ावा देना
09	मोर जमीन–मोर कमान योजना	छत्तीसगढ़ में "मोर जमीन–मोर मकान योजना" के शुरू होने की कोई स्पष्ट तारीख उपलब्ध नहीं है, लेकिन यह प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत शुरू की गई थी, जिसका उद्देश्य 2022 तक सबके लिए आवास उपलब्ध कराना था। यह योजना उन लोगों के लिए है जिनके पास 800 वर्ग फीट जमीन है और जो अपना घर बनाना चाहते हैं	भूमि अधिकार सुनिश्चित करना
10	मोर मकान–मोर आस	2025	घर निर्माण के लिए सहायता
11	सार्वभौम पीडीएस योजना	2 अक्तूबर 2019 (गांधी जी की 150 वीं जयंती पर)	सभी के लिए खाद्यान्न वितरण
12	चना वितरण योजना	24 अगस्त 2019	चना (Pulses) वितरण करना
13	मधुर गुड़ योजना	वित्तीय वर्ष 2019-20	गुड़ वितरण हेतु योजना
14	छत्तीसगढ़ महिला कोष ऋण योजना	2009-10 में शुरू की गई थी	महिलाओं को ऋण सुविधा देना
15	लघु सिंचाई योजना	2015-16	लघु सिंचाई सुविधाओं का विकास
16	सौर ऊर्जा योजनाएं	2017	सौर ऊर्जा को बढ़ावा देना

17	राज्य डेयरी उद्यमिता विकास योजना	01/09/2010	दुग्ध व्यवसाय को बढ़ावा देना
18	मुख्यमंत्री उच्च शिक्षा ऋण ब्याज अनुदान योजना	2009-10	उच्च शिक्षा हेतु लिए गए ऋण पर ब्याज में अनुदान
19	राष्ट्रीय शिक्षा प्रशिक्षण योजना	2009-10	शिक्षा क्षेत्र में प्रशिक्षण कार्यक्रम
20	मुख्यमंत्री कौशल स्वरोजगार योजना	1 अप्रैल 2018	युवाओं को कौशल विकास और स्वरोजगार
21	स्वयं का रोजगार स्थापित करने का ऋण	2013	खुद का व्यवसाय शुरू करने हेतु ऋण सहायता
22	दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना	25 सितंबर, 2014	ग्रामीण युवाओं को रोजगारपरक प्रशिक्षण
23	रोशनी कार्यक्रम योजना	7 जून, 2013	आदिवासी युवाओं को रोजगार
24	स्वामी विवेकानंद युवा प्रोत्साहन योजना	20 जून 2013	युवाओं को प्रोत्साहन देना
25	मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना	2014-15	स्वरोजगार को बढ़ावा देना
26	समग्र हथकरघा विकास योजना	1 दिसंबर 2016	हथकरघा क्षेत्र का विकास
27	छत्तीसगढ़ हस्त शिल्प विकास बोर्ड योजनाएं	2001	हस्तशिल्पियों को प्रोत्साहन एवं सहायता

उपर्युक्त प्रयासों से भुंजिया जनजाति के सामाजिक और आर्थिक विकास को नई दिशा मिल रही है तथा उन्है समाज की मुख्य धारा में समन्वित करने का प्रयास हो रहा है इसके साथ ही उनके परंपरागत सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का भी संरक्षण किया जा रहा है

निष्कर्ष

भुंजिया जनजाति मूलतः गरियाबन्द जिले में ही केन्द्रित है, सादगी व संतुष्टि के साथ जीवन व्यतीत करती है विभिन्न सरकारी योजनाओं के चलते उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ है सारी समस्याओं के समाधान में शिक्षा का विशेष महत्व है और यह जनजाति शिक्षा को अब धीरे–धीरे प्राथमिकता देने लगी है किसी भी 12वीं पास इस जनजाति के युवा को जिला प्रशासन द्वारा सरकारी नौकरी दे दी जाती है यह बहुत ही उत्साहजनक व्यवस्था है जो उनकी सामाजिक व आर्थिक विकास को गति प्रदान करती है खेल–कूद, कुटीर उद्योग हास्टल, जनजाति केन्द्र, सिलाई आदि के साथ कृषि उपकरण, उन्नत बीज, कला–कौशल की उपलब्धता उन्है आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाती है आज भी उनके गाँव से गुजरते वक्त साईकिल से विद्यालय जाते लड़के व लड़कियां आपको गुड मोर्निंग/नमस्ते बोलते मिल जाएंगे, जो एक सुखद अनुभूति है धरातल पर इन योजनाओं को लागू करने में भुंजिया विकास अभिकरण के कार्यकर्ताओं की अहम भूमिका है जो तमाम सरकारी योजनाओं को लागू कर उनके जीवन में सामाजिक व आर्थिक बदलाव लाता है अभिकरण कार्यालय में यह पाया गया कि विभिन्न गाँवों के भुंजिया समुदाय वहाँ नियमित रूप से पहुंचते है, योजनाओं की जानकारी लेते है व उनपर पूरा भरोसा करते है।

उनमें स्वास्थ्य संबंधी सजगता भी बढ़ रही है झाड़–फूँक, ओझागुनी के बजाय वे अब प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की ओर रुख करते है। पहले जहाँ वे एलोपैथी चिकित्सा को शंका की दृष्टि से देखते थे, परंतु अब उन्है सरकार एवं चिकित्सा व्यवस्था पर भरोसा हुआ है और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता व हेल्थ सेन्टर

तक वे अपनी पहुंच बनाते है और उस धारणा को भी तोड़ते है कि जनजाति लोग चिकित्सा सुविधा से वंचित रहते है। इस तरह नक्सल प्रभावित छत्तीसगढ़ के गरियाबन्द जिले में सदियों से भुंजिया जनजाति अपनी तमाम पिछड़ापन और दिक्कतों के बावजूद निवासरत है चूंकि यह क्षेत्र उड़ीसा सीमा के दुरूह वन और पठार क्षेत्र से सटे होने के साथ गृह मंत्रालय के नक्सलग्रस्त जिलों अर्थात् डिस्ट्रिक्ट ऑफ कनसर्न[21] में सम्मलित है, अतः यहाँ सरकारी योजना व भुंजिया जनजाति के विकास कार्यक्रमों के घरातल पर कार्यान्वयन अन्य जिलों की तरह सरल और सहज ना होकर जटिल और दिक्कतभरा है विभिन्न नक्सल ग्रुपों के द्वारा लेवी और कमीशन लिये जाने के चलते व्यवहारिक कार्यान्वयन व लाभार्थी की संख्या भी कम है वर्तमान में पुलिस व प्रशासन के तौर तरीकों में व्यापक सुधार से नक्सलवाद को खत्म किया जा रहा है फलतरू अब इस क्षेत्र में योजनाएं सही ढंग से लागू हो रही है।[22] आज का भुंजिया समाज पहले की तुलना में बेहतर स्थिति में है लोग गाँव में स्वच्छ जल, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र के साथ–साथ कला कौशल, उन्नत खाद, बीज, कृषियंत्र, जीवनोपयोगी गृह–उपकरण, मनोरंजन के साधन इत्यादि का इस्तेमाल करते है, किन्तु अभी भी उनके जीवन में काफी पिछड़ापन है, और भी उपाय किये जाने की जरूरत है अभी हाल ही में सरकार ने 321 जनजातियों के लिए पक्के मकान बनाकर उन्हे आवास सुविधा दी जो एक बड़ा कदम माना जा सकता है[23] भुंजिया समाज की दशा को और उन्नत करने के लिए नीचे कुछ सुझाव दिये गए है, इनपर एक सकारात्मक दृष्टिकोण से विचार करके लागू करने से स्थिति अवश्य बेहतर होगी:

उनके जीवन से पिछड़ापन को दूर करने के लिए वर्तमान शिक्षा की पहुँच को बढ़ाने की जरूरत है शिक्षा का स्तर ज्योंहि इस जनजाति के दूर–दराज के गाँव–समाज में पहुंच जाएगा, भुजिया समाज अन्य समाजों की तरह समुन्नत हो जाएगा।

लड़कियों की साक्षरता को और बढ़ाये जाने की जरूरत है एक भुंजिया बालिका के पढ़ने और साक्षर हो जाने से कई परिवार विकास के दायरे में आ जायेंगे। वर्तमान में महिला साक्षरता काफी कम 48.76% ही है, जबकि उनकी संख्या पुरूषों से ज्यादा है[24]

सीमित खेती के दायरे को धीरे–धीरे बढ़ाया जा रहा है अभिकरण द्वारा कृषि–यंत्रों व बीजों का वितरण किया जा रहा है उसे और बढ़ाये जाने की आवश्यकता है, जो अन्ततः भुंजिया के आर्थिक पिछड़ापन को दूर करेगा और उनकी सामाजिक प्रगति सुनिश्चित हो जाएगी।

पारंपरिक कला–कौशल, उत्पाद, काष्ट कला आदि को पर्याप्त कौशल देकर उन्है एक अच्छा बाजार दिया जा सकता है

अभिकरणों के कार्मिकों द्वारा भुंजिया जनजाति के लिए कल्याणकारी योजना लागू तो किया जा रहा है किन्तु इसमें और समर्पित और प्रशिक्षित स्टाफ की जरूरत है, जहाँ भुंजिया समाज अपने से संबंधित लाभार्थी योजना को सरलता व सहजता से जान सके। वर्तमान में राज्य सरकार के छः अभिकरण और 10 प्रकोष्ठ में से एक–एक गरियाबंद जिले में भी स्थापित व कार्यशील है[25]

भुंजिया जनजाति के पारंपरिक समाज में ढेर सारी कुरीतियां व अंधविश्वास है, जैसे बलिप्रथा, नशाखोरी, बहुतपत्नी प्रथा, दकियानूसी, कम उम्र का कांडा विवाह आदि।[26] शिक्षा के प्रसार और सामुदायिक कार्यक्रमों के जरिये उनके पिछड़ेपन को दूर करने का प्रयास किया जा सकता है

ऋणग्रस्तता अन्य समाज की तरह भुंजिया समाज को भी अपने चुंगल में लिये है जहाँ साहूकार इनके कृषि उत्पाद आदि को सस्ते में लेकर इनका शोषण करते है स्वसहायता ग्रुप के जरिये इनका निवारण

कर इन्हे बहुत हद तक ऋणमुक्त किया जा सकता है बैंक, सहकारी संस्था और जिला प्रशासन, विकास आयुक्त, विभिन्न प्रोजेक्ट डायरेक्टरों, स्वशासी संस्थाओं द्वारा भुंजिया जनजाति को ऋण ग्रस्तता से मुक्ति दिलायी जा सकती है इस संबंध में गरियाबंद जिले में पूर्व से कार्यरत कमार विकास अभिकरण में भुंजिया विकास अभिकरण वर्ष 2003 में स्थापित किया गया और इस क्षेत्र में दोनों ही जनजाति निवासरत है इन दोनों सम्मिलित अभिकरण को और मजबूत कर भुंजिया जनजाति की समस्याओं का निदान बड़े स्तर पर किया जा सकता है[27] विदित है कि गरियाबंद के इसी क्षेत्र में कमार और भुंजिया जनजातियाँ सदियों से भाईचारे से रहती चली आ रही है।[28]

चूंकि भुंजिया जनजाति के लोग छोटे कृषि उत्पाद पर अपनी जीविका के लिए निर्भर होते है, उनके लिए बिचौलिए मुक्त बाजार या गैर–जनजातीय लोगों से मुक्त बाजार उपलब्ध कराकर उनकी स्थिति बेहतर की जा सकती है वन उत्पादों के साथ–साथ बाँस की चटाई, टोकरी, कृषि उत्पादों से जुड़ी अन्य चीजों के बाजार की उचित व्यवस्था उनके विकास के लिए आवश्यक है

उनके लिए सरकार द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी देकर उनके संवैधानिक अधिकारों को बताकर, उन्है स्वास्थ्य, सफाई, पीने के स्वच्छ जल, शिक्षा, उन्नत कृषि, बागवानी, सामाजिक मूल्य, बालिका शिक्षा, केरियर, नौकरी, राष्ट्र निर्माण आदि विषयों पर बताकर उनका सर्वांगीण विकास किया जा सकता है चूँकि भुंजिया जनजाति को छत्तीसगढ़ शासन ने गोद लिया है अत: इसे मुख्य धारा में लाने की अपार संभावना है[29] जनजाति विकास में दक्ष मुरली देवांगन कहते है कि भुंजिया बहुत पिछड़े नहीं है, बल्कि वे संकोच करते है, उनके विकास के लिए थोड़े प्रयास भी अच्छे परिणाम देंगे।[30]

राम वनगमन मार्ग में दण्डकारण्य जैसे छत्तीसगढ़ के क्षेत्रों का विकास भुंजिया की दशा अवश्य सुधारेगा। छत्तीसगढ़ के क्षेत्रों ने वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत, मौर्य, सातवाहन, चेदि, वाकाटक, गुप्त, नलवंश, पाण्डू, कलचुरि, है हयवंशी साम्राज्य के शासन को देखा है, इनसे जुड़े पौराणिक और ऐतिहासिक स्थलों के विकास की असीम संभावना है सरकार और गैर–सरकारी संस्थाओं के सहयोग से भुंजिया जनजाति सहित समग्र छत्तीसगढ़ का विकास विकासशील भारत को विकसित भारत बनाने में सहयोगी होगा।[31]

समाजशास्त्र विभाग
पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय
छत्तीसगढ़, बिलासपुर
[1]sanjeevranjan4014@gmail.com
[2]smart_sanjiv1@yahoo.com

सन्दर्भ:

1. *पटेल, हरिराम (2024), छत्तीसगढ़ विशिष्ट अध्ययन, रायगढ़: हरिराम प्रकाशन छत्तीसगढ़*
2. *पांडे, मणिश, दैनिक जागरण, दैनिक अखबार, 03/07/2020*
3. *जायसवाल, नीरज (2023), भुंजिया जनजातिः कल और आज, जपला, झारखंड: अरण्यवाणी प्रकाशन, पेज–30*
4. *वर्मा, दिनेश, हरिभूमि, जनजाति विशेष, दैनिक अखबार, रायपुर, छत्तीसगढ़, 08/11/23*
5. *आबिदी, शम्मी (2020), भुंजिया एक विशेष पिछड़ी जनजाति, आदिम जनजाति एवं प्रशिक्षण संस्थान, नवा रायपुर, पेज–4*

6. रंजन, संजीव (2024), कमार जनजातिः एक परिचय आज के परिप्रेक्ष्य में, जपला, झारखंड, अरण्यवाणी प्रकाशन, पेज 12–14, रजिस्टर्ड नं0 2020/79760
7. खान, अली अहमद (2007), सुनादेई: दि एपि सेन्टर ऑफ भुंजिया लाईफ, उडीसा रिव्यू, सितम्बर–अक्टूबर, पेज–18–20
8. यदु, हेमु, छत्तीसगढ़ पर्यटन में राम वन गमन पथ, बी आर पब्लिसिंग कार्पोरेशन दिल्ली, पेज–98
9. यदु, मन्नू लाल (प्रधान संपादक), छत्तीसगढ़ की रामायण 2017, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान रायपुर, पेज–548
10. रिपोर्ट ट्राइबल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट, छत्तीसगढ़ सरकार, 2023, पेज–2
11. पत्रिका धमतरी, दैनिक अखबार, रायपुर, छत्तीसगढ़, 27/04/24
12. विरूलकर, अनिल (2020), भुंजिया जनजाति का मानवशास्त्रीय अध्ययन, आदिम जनजाति एवं शिक्षण संस्थान, नवा रायपुर, पेज–38
13. यदु, हेमु (2018), छत्तीसगढ़ के पारंपरिक आभूषण एवं पोशाक, बी.आर पब्लीशिंग कारपोरेशन दिल्ली
14. सोनवानी, तुलसिंह (2019), भुंजिया जनजाति पर आधुनिकीकरण का प्रभाव, दिल्ली: अखण्ड पब्लिसिंग हाउस, पेज–224
15. हरिभूमि 21/04/25, दैनिक अखबार, रायपुर, छत्तीसगढ़ व पत्रिका, 27/04/25, दैनिक अखबार, रायपुर
16. रंजन, संजीव (2013), डिस्कवरी ऑफ पूर्वोत्तर, दिल्ली: विजयाबुक्स, पेज–7
17. दास, गुप्तेश्वर (2005), छत्तीसगढ़ के भुंजिया जनजाति में सामाजिक परिवर्तन एक अध्ययन, क्षेत्रीय अध्ययन एवं अनुसंधान शाला रायपुर, पेज–28
18. नवभारत दैनिक, सरकार की संजीवनी योजनाएं, 27/08/23, दैनिक अखबार, रायपुर, छत्तीसगढ़
19. नवभारत, 08/03/24, दैनिक अखबार, रायपुर व दैनिक भास्कर, 08/03/24 दैनिक अखबार रायपुर
20. नवभारत, 12/01/24, दैनिक अखबार, रायपुर, छत्तीसगढ़
21. एल.डब्लू.ई. डिवीजन, भारत सरकार, दीक्षित वाई मोहन–11/03/24 की नक्सल जिले पर रिपोर्ट
22. सिंह, वीरेन्द्र (2014), नक्सलवाद और कारपोरेट कनेक्शन, इंडिया डिजिटल पब्लीशर्स, नई दिल्ली, पेज–28
23. दैनिक भास्कर, दैनिक अखबार, रायपुर, छत्तीसगढ़, 22/01/25
24. अली सफ्कत (2021), भुंजिया जनजाति की स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, पण्डित रविशंकर शुक्ला, विश्वविद्यालय, रायपुर
25. सिंह, डी.डी. व आबिदी, शम्मी (2020), कमार एक पिछड़ी जनजाति, प्रशासकीय प्रतिवेदन, पेज–28
26. कोसरिया, सत्यजीत सिंह (2014), छत्तीसगढ़ की चौखुटिया भुंजिया जनजाति विवाह एवं दामपत्य, पत्रिका आर.आई.एम.एस.एच, रायपुर
27. संक्षिप्त टीप, भुंजिया विकास अभिकरण गरियाबंद, जिला गरियाबंद, छत्तीसगढ़–पेज (1–4)
28. शर्मा, आशीष (2021), आथर–आदिम जनजाति कमार पर आधुनिकता का प्रभाव, आयरा पीयर रिव्यु जनर्रल, 08/30] जनवरी–मार्च
29. मरकाम, खगेश्वर (2020), उड़ीसा का गुडाराज थाने के भुंजिया आदिवासियों के जीवन की झलक, https://www-youthkiawaaz-com/2020/05/उड़ीसा–का–गुडाराज–थाने–के/ (21 जनवरी 2025 को देखा)
30. गिरी, रवि, भुंजिया जनजाति की उत्पत्ति, 12/02/24, ए.बी.पी न्यूज रिपोर्ट
31. यदु, हेमू (2006), छत्तीसगढ़ का गौरवशाली इतिहास, दिल्ली: बी.आर पब्लिसिंग कारपोरेशन, पेज–03

भिण्ड अंचल की लोक परम्पराएं एवं मान्यताएं

शालिनी गुप्ता

सारांश

भिंड अंचल, मध्यप्रदेश के उत्तर–पूर्वी भाग में स्थित एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध क्षेत्र है यहाँ की भूमि वीरों की भूमि मानी जाती है,जो लोक संस्कृति, धार्मिक आस्थाओं, परंपराओं और सामाजिक मान्यताओं से ओतप्रोत है यह अंचल न केवल अपने शौर्य गाथाओं के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि इसकी लोक परंपराएं और मान्यताएं जन–जन के जीवन में गहराई से रची–बसी है। भिंड अंचल की लोक परंपराएं एवं मान्यताएं वहाँ की जीवनशैली, आस्था, और सामाजिक संरचना का आईना है। ये परंपराएं न केवल सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखती है, बल्कि समाज को एकजुट रखने में भी सहायक होती है। आधुनिकता के इस युग में भी इन परंपराओं की अहमियत कम नहीं हुई है, ये आज भी ग्रामीण जीवन की आत्मा है।

बीज शब्द : लोकदेवता, सुअटा, झिंझिया, टेसू, रक्कस, सोहरे, दादरे, जुगिया, बधाई, बन्ना–बन्नी।

प्रस्तावना

भिंड का नाम महान तपस्वी भिण्डी या विभाण्डक ऋषि के नाम पर है[1] प्राप्त शोधों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भिंड क्षेत्र का वर्णन पुराणों में पाया जाता है उस समय यह क्षेत्र सूरसेन के नाम से जाना जाता था। सूरसेन प्रदेश का पूर्वी भाग भदावर प्रदेश कहलाता था। रामायण, महाभारत पौराणिक युग में सूरसेन के साथ भद्रके या भद्रकार स्थानों का उल्लेख मिलता है किष्किंधा के वानर राज सुग्रीव ने अपने दूतों को माता सीता की खोज में भेजते समय सूरसेन प्रदेश और भद्र प्रदेशों में जाने को कहा था।[2]

समाज का सांस्कृतिक रूप प्रचलित परम्पराओं और विश्वासों पर ही आधारित होता है जन–जीवन इसी से चलता है ये परम्परायें और मान्यतायें समाज में विरासतन हस्तांतरित होती रहती है इनकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई यह एक जटिल प्रश्न है, पर इतना निश्चित है कि जब समाज ने संगठित होकर रहना सीखा होगा, तभी से कुछ मान्यतायें निर्धारित कर लीं होगी। वे ही कालान्तर में विकसित हो गई। अपनी–अपनी आस्था, रूचि और विश्वास के आधार पर हर समाज और प्रत्येक धर्म की निजी परम्पराएं है। इन्हे समाज ने स्वतः ही स्वीकृति दे दी। स्त्री और पुरूष दोनों ही इन परम्पराओं और मान्यताओं का पालन करते चले आ रहे है। भिण्ड जिले में जिस प्रकार हिन्दु परम्परा ने समाज को आधार प्रदान किये है वैसे ही मुसलमान लोग भी झांड–फूंक, मंत्र–तंत्र, ताबीज अपनाते है। मुर्हरम में फकीरी डोरा

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 70-76
Peer-reviewed biannual Research Journal

पहनते है, रोजा, नमाज, सैयद दरगाह पर धूप लोभान देते है, प्रसाद आदि बाँटते है। गाँव की परम्पराएं वैदिक कालीन थी जिनके अनुसार हिन्दु–मुस्लिम त्यौहारों के अलावा मेले एवं लोक देवताओं में लोगो का विश्वास था। बालक के जन्म के उपरांत चरूआ और सौर उठाने की प्रथा थी। सौरे वराहरे उठाती थी। खसिया और भांड खुशियां मनाने आते थे। कन्या के जन्म पर खुशियां नहीं मनाते थे। शिशु के बड़े होने पर विद्यारम्भ एवं यज्ञोपवित्र (उपनयन का जनेऊ) संस्कार होते थे।ये प्रथाएं सभी जातियों में प्रचलित थी। जनेऊ मुख्यतः ब्राह्मणों में होता था। भिण्ड अंचल में कुछ विशिष्ट परम्परायें प्रचलित थीं जो आज भी देखने को मिलती है सुआटा, टेसू, झिंझिया, बन्ना–बन्नी, दादरे, बधाईयाँ,एवं कुआँ पूजन आदि प्रमुख परम्परायें प्रचलित है।

साहित्य का सर्वेक्षणः-

डॉ.प्रभाकर दुबे ने "चंबल अंचल की लोकसंस्कृति" पुस्तक में भिंड क्षेत्र की सामाजिक परंपराओं पर प्रकाश डाला है डॉ. श्यामसुंदर शर्मा ने भिंड–चंबल क्षेत्र के लोकगीतों और नाट्य परंपरा पर अध्ययन किया। भारतीय लोककला संस्थान, भोपाल ने क्षेत्रीय लोक संस्कृति पर कई दस्तावेज तैयार किए है। शिवकुमार तिवारी ने चंबल घाटी की वीरगाथाओं, डकैत कथाओं और जनमानस की कहानियों को एकत्र कर शोध कार्य किया है

लोक देवताः-

अंचल में देवता,धमानी पूजने की परम्परा प्रारम्भ से ही प्रचलित थी। कालका, सती, बीजासेन, कारसदेव, सूर्यपात, नारसिंह, प्रीतम बाबा, गोंड बाबा, हरदौल, रामजूबाबा घटोरिया, अघोरी, दबरे बाबा की पूजा अर्जन किया जाता था। कालका, सती व वहरे बाबा ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में पूजे जाते थे जिनकी पूजा विशेष अवसरों (विवाह, संतानोत्पत्ति) पर सवईया के साथ की जाती थी। कारस एवं बीजासेन, घटोरिया की पूजा गाँव–गाँव में प्रचलित थी जिनके स्थापित स्थान आज भी पुरातत्वीय अवशेष है। सैयद एवं सिद्धों के बहुतायत में स्थान अंकित है जिनसे स्पष्ट होता है कि अंचल के लोगों में लोक देवताओं में अधिक आस्था रही।

सुअटाः-

ऐसा माना जाता है कि जब दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने गढ़ कुण्डार पर आक्रमण किया। उसने यह कदम सुंदरियों की लूट से प्रेरित होकर उठाया था। उसने राजकुमारी केशरदे को देने का प्रस्ताव भेजा था जिसे गढ़कुण्डार के राजा ने अस्वीकार कर दिया था। जिसके परिणामस्वरूप मोहम्मद तुगलक ने 1346–47 ई. में उस पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में हजारों सैनिक वीरगति को प्राप्त हो गये।3

नारे सुअटा गीत के गायन में युद्ध में वीरगति प्राप्त हुए योद्धाओं को और जौहर में सम्मिलित वीरांगनाओं, सतीओं की हुतात्माओं का तर्पण कर पूजन किया जाता है चूंकि हर जाति के वीरों ने इस युद्ध में भाग लिया था और हर जाति की नारियों ने जौहर किया था इसलिये हर वर्ग और जाति की कन्याओं द्वारा तर्पण और पूजन किया जाता है सुअटा कन्याओं का खेल नहीं था अपितु एक राष्ट्रीय परम्परा थी। विवाह होने पर बालिका सुअटा नहीं खेल सकती है उसे गाजे–बाजे से पुरोहित द्वारा बतलाये मंत्रों से इसका उद्यापन करना होता है इसे सुअटा उजारना कहते है इसका अर्थ यह होता है कि बालिका अपने ससुराल में भी राष्ट्र–प्रेम के विचारों को मानेगी। जब किसी बालिका के मायके की बारात उसकी ससुराल में आती है तो बारात भेंट के साथ बालिका से मिलने जाया करती है इस रस्म को धैरचपा कहते है इसका अर्थ

यह है कि उसकी ससुराल वाला राजा या अन्य कोई यदि ऐसा कोई कार्य कर रहा होता, जो राष्ट्र–धर्म के विपरीत है तो इसकी सूचना भी बारात को प्राप्त हो जाती है वह बालिका वधु होते हुये भी अपने मायके के प्रति अपने को जिम्मेदार मानती है भिण्ड अंचल में इस परम्परा का विशेष महत्व है इस अंचल की बालिकायें बरसात के बाद इस खेल को खेलती है और अपने राष्ट्र–प्रेम की भावना को दर्शाती है इस अवसर पर बालिकाएं सुअटा गीत गाती है

1. चौकी बनी चारऊ खूंट नारे सुअटा, चौकी के चारऊ खूंट ।
चौकी पे बैंठे भईया डेढ़ सौ नारे सुअटा
उनमें से सूरजमल भईया कौन चंद्रामल भईया
लाल पाग नीली धारी से नारे सुअटा
चौकी बनी 4
2. उठो–उठो सूरजमल भैया भोर भये नारे सुअटा
उठो–उठो चंद्रामल भैया मोर भये नारे सुअटा
मालिन ठारी दरबार
कौन नगर की मालिनी नारे सुअटा कौन नगर का फूल
इंदरगढ़ की मालिनी बेला चमेली के फूल।
उठो–उठो 5

झिंझियाः-

रंगोली पर्व सुअटा के उपरान्त बालिकायें गीत गाती हुयी नगर परिक्रमा करती है सुअटा प्रातःकालीन गीत है, जबकि झिंझिया रात्रिकालीन गीत है इस गीत का गायन करते समय बालिकायें एक तेल से जलता हुआ दीपक एक छिद्र युक्त घड़े में रखती है इसकों झिंझिया कहते है यह छिद्रयुक्त घड़ा नारी समाज की जर्जर अवस्था का प्रतीक है और दीपक सतीत्व, धर्म तथा बदला लेने की भावना का प्रतीक है झिंझिया रखती बालिकाओं का समूह इस बात का प्रतीक है कि पीढ़ित नारी समाज, धर्म और सतीत्व के रक्षार्थ सबल एवं नैतिकता से पूर्ण ऐसे सबल वीरों को खोज रही है, जो बलात्कार करने वाली मुसलमान सेना से युद्ध करके नारियों के धर्म एवं समाज की रक्षा कर सके।

टेसूः-

कहा जाता है कि जब मुहम्मद तुगलक ने गढ़कुण्डार की राजकुमारी को जबरन हासिल करने के लिये गढ़कुण्डार राज्य पर आक्रमण किया तो इस युद्ध में हजारों व्यक्ति मारे गये और पुरूषों के साथ महिलाओं को भी बन्दी बना लिया गया। अतः टेसू के वीरों ने टेसू संस्थायें बनायीं और जनता के बालकों को एकत्रित करके छापामार युद्ध में प्रशिक्षित किये दल 'टेसू' दल कहलाए और इसके सदस्य 'टेसू'। 'टेसू' शब्द 'टीस' शब्द का उपभ्रंश हैद्यजिन परिवारों पर मुसलमानों के अत्याचार हुये थे, उनके बच्चे एवं बालकों में बदला लेने की प्रबल टीस थी ,जिनमें यह टीस थी, उसे टेसू कहा गया।बाद में टीसू शब्द टेसू में बदल गया।इनका काम आक्रमणकारियों से छापामार युद्ध करना एवं उनके कार्य में बाधाऐं उत्पन्न करना था।[6] वर्षा के बाद मुसलमानों की सेनाएं लूटमार के लिये निकलती थी इसलिए वर्षा के बाद टेसू का गायन किया जाता है जिसमें उनकों छापामार युद्ध का प्रशिक्षण दिया जाता था। देशहित में बलिदान होने की प्रेरणा मिलती रहे, इसलिये टेसू बनाकर, बच्चों में टेसू गान किया जाता है यह प्रथा सल्तनतकाल से लेकर आज तक इस क्षेत्र में प्रचलित है सम्पूर्ण भिण्ड अंचल में आज भी यह प्रथा मनायी जाती है

रक्कस:

इस परम्परा को महिला वर्ग सम्पादित करता हैजब बालक छः वर्ष का हो जाता है, तो घर का नारी–वर्ग बड़ी धूमधाम से गाँव की सीमा पर ले जाकर उससे समा (मेढ़ा) का पूजन कराता है एक काला धागा जिसे छोंटा कहते है, बालक की कमर में बाँध दिया जाता है जिसका अर्थ यह है कि आज से वह बालक सीमा का पहरी हो गया है बड़े होने पर वह देश की सीमा की रक्षा करेगा। यह प्रथा आसानी से आज ज्यादातर विवाह के अवसरों पर देखने को मिल जाती है जिसमें परिवार के किसी भी सदस्य का विवाह होने पर अन्य बालकों का यह संस्कार पूर्ण कर दिया जाता हैइस अवसर पर यह गीत गाया जाता है–

1. रक्कस बाबा ने देय ललना मचल रहे मरे अंगना
सोने की थाली में भोजन परोसे, खावे तथा खवावन देवे
मचल रहे मेरे अंगना 7

सोहरे: -

यह प्रथा प्राचीनकाल से ही इस क्षेत्र में प्रचलित हैइसमें बच्चे के जन्म पर घर की महिलाएं गाना बजाना करती हुयी अपनी खुशियां प्रकट करती हैसामान्यतः यह गायन लड़के के जन्म पर घर में रखा जाता है जिसमें बराहोंर गाना गाती थी जिन्है सोहरे जाता है यह गायन बच्चे के जन्म के कई दिन बाद तक चलता रहता है इसमें बरोहोरों के अतिरिक्त पुरा–पड़ोस की औरतों को भी आमंत्रित किया जाता हैयह सामान्यतः खुशी के गीत होते है

इस अंचल में प्रचलित कुछ सोहरें इस प्रकार है–

(1) बड़ी जीजी के भये नंदलाल, चलों सखी देखिये महाराज। सासों को डारी पिड़ियां, ननद पैइयां पड़ रही महाराज।
द्वारे पे ठारी देवरनियाँ, जीजीलाल देखने महाराज।
बड़ी जीजी के भये नंदलाल, चलो सखी देखिये महाराज।[8]
(2) जन्म लिये व्रज में राधामोहन जन्म लिये।
सुघड़ सी दाई बुलाए जसोदा रानी।
छिना लिये महलन नरला छिना लिये।
जन्म लिये ब्रज में राधामोहन जन्म लिये।[9]
(3) तुम तो अटारी चल जाइयों, वहाना पिया हम कर लें है सासों जो आवे चरूआ रखावे, चरूआ रखाई नेग अपना वो माँगें, हम भी तुम्हारें सासो, नाती भी तुम्हारा
लरका तुम्हार घर नईयाँ, तिजारे को तारों लगों।[10]

दादरे:-

दादरे गाने की परम्परा इस क्षेत्र में बहुत पुरानी है दादरे लड़के की शादी के बाद बहु के घर आने पर गाये जाते है। इसमें महिलायें गीत गाकर अपनी खुशियां प्रकट करती है और नाच भी करती है इसी अवसर पर पड़ोस की महिलाएं बहु को देखती है और उसे कुछ उपहार देकर आशीर्वाद प्रदान करती है। इस अंचल में गाये जाने वाले दादरों के कुछ अंश इस प्रकार है–

(1) कुल की परम पराई लाज, निभाये जइयों बेटी।
ससुराल में जाके वेटी, सासों से कुछ मत कहियो।

अपनी मैया सा व्यवहार, निभायें जइयों बेटी।
कुल की परम पराई लाज, निभायें जइयों बेटी।11

(2) घरही में मन्दिर वनवै तीरथ हम काहकौ जावे।
ससुर अपने को दसरथ वनवै, सासों को कौशल्या वनवैं
तीर्थ हम काहकौं जावै 12

(3) सईयाँ नाक में नथनियाँ मँगइदै करधनिया, मैं तो से विरजी हम तो सईयाँ गाँव की गोरी, तुम हो सईयाँ शहरी
तुमरे राज में सईयाँ हमने पहनी अभई करधनी,
सईयाँ लैदे रे करधनियाँ मंगइदै करधनियाँ मैं तोसे विरजी।13

जुगिया:-

इस परम्परा का चलन सामान्यतः सम्पूर्ण अंचल में है। इस परम्परा में लड़के की शादी में बारात जाने के बाद उस घर की महिलाएं लड़कों का स्वांग बनाकर पूरे मोहल्ले में घूमती है और गाती बजाती है और पुरूषों से जबरन रूपये वसूल करती है और यदि वे रूपये देने से मना करते है तो महिलाएं उन्हे गाली देती है अधिकतर पुरूष रूपये दे ही देते है। इस स्वांग में महिलाएं अपने हाथों में लड़की का बना 'मूसर' लिए रहती है वर्तमान में यह प्रथा धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है अब यह प्रथा केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित रह गयी है

बधाई सामान्यतः लड़के के जन्म पर गायी जाती है। इसमें भांड घर पर आकर खुशी के गीत गाते है यह प्रथा प्राचीनकाल से ही इस क्षेत्र में प्रचलित है भांड बच्चे की सुख–समृद्धि की कामना करते है और उसे ढेरों आर्शीवाद प्रदान करते है।

1. बधाईयाँ बाजे क्या नीकी लागों
पहले बधाव मेरे ससुरा कै आयो, सास उठ नाचौ
जब नीको लागै।[14]

2. बधाव मेरे सोने को बन आयों
पहला वधाव मेरे ससुरा के आयो, सास रानी डबिया में दफराओ।[15]

बन्ना-बन्नी:-

बन्ना लड़के के विवाह के पूर्व गाये वाले गीतों को कहा जाता है इसमें घर व पड़ौस की औरतें रात के अवसर पर आकर गायन–वादन करती है बन्नी लड़की के विवाह से पूर्व गाये जाने वाले गीतों को कहा जाता है इसमें लड़की की सहेलियाँ और घर की सदस्य औरतें रात में गायन–वादन करती है। इस अंचल में गाये जाने वाले बन्ना–बन्नी के कुछ अंश इस प्रकार है–

बन्ना-

(1) नल से ना खेलों लाड़ले पोशाक भीजेगी।
शहरा बन्ना के लाख के, कलगी हजार की।
बन्नी की कीमत क्या कहूँ, बन्नी नबाव की।
नल से ना खेलों लाड़ले, पोशाक भीजेगी।[16]

(2) बैठे–बैठे कौशल्या की गोद रामचंद्र बने–2
शीष बना के सहरा सोहे, उनकी कलमी पे नांच रही मोर
रामचंद दूल्हा बने 17

(3) चाँदनी रात बन्ना–बन्नी लेके आता होगा।
पापा बराती होगें, मोटर से जातें होंगे,
अपनी अंगूठी बन्ना–बन्नी को पहनाता होगा।
चाँदनी रात बन्ना–बन्नी लेके आता होगा।[18]

बन्नी:-

(1) उठो बन्नी सजों जल्दी ये शुभ दिन आज आया है,

तुमरे पापा हजारी ने नगर सारा बुलाया है,
तुमरी मम्मी के जीवन में ये शुभ दिन आज आया है
उठो बन्नी सजों जल्दी, ये शुभ दिन आज आया है[19]

(2) भांति–भांति के सजे बराती छायी खुशी अपार,
पार्वती को व्याहने चले है त्रिपुरार,
वने है दूल्हा शिव बम–बम धानी हैय
कमर में उनके मृगछाला अजव सुहानी है
मस्तक चमके भाल चंद्रमा, शिवजी भये तैयार,
पार्वती को व्याहने चले है त्रिपुरार।[20]

प्राचीनकाल से ही लोक परम्पराओं में हिन्दू त्योहार दीपावली, होली, दशहरा, शिवरात्रि, रक्षाबंधन एवं बसंत पंचमी मनाये जाते है। इस अंचल में भी प्राचीन त्योहारों को मनाने की परम्पराएं प्रचलित है। सम्पूर्ण क्षेत्र में मोरछट, भूजरिया, गणेश चतुर्थी, नवरात्र, मुहर्रम आदि उत्साह के साथ मनाये जाते है गणेश चतुर्थी पर जगह–जगह गणेश स्थापनायें होती है जिनका चल समारोह दशमी को निकलता था। बेलना–बेलनी हरदौल पर जाकर खाना खाने की परम्परा है जो भाद्रपद कृष्ण की चऊदश तिथि को होती है अंचल में रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी एवं हनुमान जयंती बड़े धूमधाम से मनाई जाती है मुसलमानों में भी शव–ए–बारात, ईदुल–जुहा (बकराईद), नौरोज ईद इत्यादि त्यौहारों को बड़े धूमधाम से मनाने की परम्परा है अंचल में हुसैन की याद में ताजिये निकाले जाते है जिनमें भिन्न–भिन्न अखाड़ों के उस्तादों द्वारा भिन्न–भिन्न करतब दिखायें जाते है वर्तमान में भी त्यौहार को विधिवत् मनाये जाने की परम्परायें, मान्यतायें प्रचलित है। त्यौहारों को मनाने में साम्प्रदायिक सद्भाव यहाँ देखते ही बनता है यही अंचल की महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विशेषता है।

इतिहास विभाग
प्रधानमंत्री कालेज ऑफ एक्सीलेंस
शासकीय हमीदिया महाविद्यालय भोपाल

सन्दर्भ:

1. *कटारे, शिवशंकर, चंबल के आसपास, सांस्कृतिक चेतना समिति लहार (भिंड) मध्यप्रदेश, अगस्त 1998, पृ.सं. 12*

2. *महाभारत, सभा पर्व, राजा सूर्यराम, पर्व 14/26,27,28*
3. *सोनी, डॉ.सुशील, होल्कर राज्य का सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध, 2006, पृ.सं. 139*
4. *श्रीमती उर्मिला सेठ, आलमपुर (जिला भिंड) द्वारा ली गई मौखिक जानकारी के आधार पर,दिनांक 09/08/2024, समय रात 8:30 बजे*
5. *वही*
6. *श्रीमती साधना रेजा, लहार (जिला भिंड) द्वारा प्राप्त मौखिक जानकारी, दिनांक 03/07/2024,दोपहर 2:00 बजे*
7. *वही*
8. *श्रीमती कुमकुम गुप्ता, दबोह जिला भिंड द्वारा प्राप्त मौखिक जानकारी दिनांक 24/01/2022, समय शाम 5:00 बजे।*
9. *वही*
10. *वही*
11. *श्रीमती सुमन वेडर, आलमपुर (जिला भिंड) द्वारा प्राप्त मौखिक जानकारी, दिनांक, 12/06/2022,समय शाम 4:00 बजे।*
12. *वही*
13. *वही*
14. *श्रीमती मिथलेश अग्रवाल दबोह (जिला भिंड), द्वारा प्राप्त जानकारी अनुसार, दिनांक 22/01/2022, समय– दोपहर 2:00 बजे*
15. *वही*
16. *श्रीमती आरती गोस्वामी, दबोह (जिला भिंड), द्वारा फोन से मौखिक जानकारी के आधार पर, दिनांक 14/05/2024, समय शाम 6:30 बजे*
17. *वही*
18. *वही*
19. *वही*
20. *वही*

सरदार वल्लभभाई पटेल और उत्तर-औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिक सद्भाव की राजनीति

अखिल वर्मा[1], अमीर अली खान[2]

सारांश

भारत के पहले उप प्रधानमंत्री और गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने 1947 के विभाजन की भयावह त्रासदी के बाद देश को स्थिरता की ओर ले जाने में एक केंद्रीय भूमिका निभाई। यह अध्ययन स्वतंत्रता–पूर्व और उत्तर भारत की उथल–पुथल भरी परिस्थितियों में पटेल द्वारा साम्प्रदायिक सौहार्द की स्थापना हेतु अपनाई गई बहुआयामी रणनीतियों का विश्लेषण करता है उन्होने प्रशासनिक नीतियों, देशी रियासतों के साथ कूटनीतिक समन्वय, और सांप्रदायिक संकटों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने का प्रयास किया। पटेल का धर्मनिरपेक्षता के प्रति दृष्टिकोण महज वैचारिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक था। उन्होंने विविधता में एकता को अपने नेतृत्व की आधारशिला बनाया। हालाँकि उनके कुछ निर्णय आलोचनात्मक विमर्श का विषय बने, विशेषकर अल्पसंख्यक समुदायों से संबंधित संदर्भों में, फिर भी उनके प्रयासों का मूल उद्देश्य एक समरस और समावेशी राष्ट्र की रचना था। यह वह भारत था जिसे विभाजन के पश्चात उत्पन्न हुई हिंसा, अविश्वास और विस्थापन की चुनौतियों का सामना करना था।

इस शोध का केंद्रीय तर्क यह है कि पटेल का नेतृत्व जिसमें कठोर निर्णय लेने की क्षमता और समावेशी दृष्टिकोण का संतुलन था, उन्है उस समय के अन्य राष्ट्रीय नेताओं से अलग बनाता है वे धार्मिक राष्ट्रवाद की संकीर्णता से ऊपर उठकर संस्थागत धर्मनिरपेक्षता और बहुलतावाद के पक्षधर थे, और उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द को व्यावहारिक धरातल पर स्थापित करने के लिए प्रयत्न किए। ऐतिहासिक दस्तावेजों, भाषणों और पत्राचार के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि पटेल की राजनीतिक दृष्टि भारतीय राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में एक दूरदर्शी हस्तक्षेप थी। उनके विचार आज के भारत में भी उतने ही प्रासंगिक है, जहाँ बहुलता, सहिष्णुता और समावेशिता जैसे मूल्यों को बार–बार नए सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता पड़ती है

बीज शब्द : सरदार वल्लभभाई पटेल, सांप्रदायिक सौहार्द, धर्मनिरपेक्षता, एकता, बहुलतावाद, धार्मिक राष्ट्रवाद

प्रस्तावना

अगस्त 1947 में भारत और पाकिस्तान के संप्रभु राष्ट्रों में ब्रिटिश भारत के विभाजन ने इतिहास में सबसे व्यापक मानव प्रवासों में से एक को जन्म दिया। इस अवधि में व्यापक सांप्रदायिक हिंसा हुई,

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 77-86
Peer-reviewed biannual Research Journal

जिसके परिणामस्वरूप दस लाख से अधिक लोगों की जान चली गई।[1] इस उथल–पुथल के बीच, सरदार वल्लभभाई पटेल (1875–1950) ने भारत की स्वतंत्रता को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय संघ में 500 से अधिक रियासतों के एकीकरण के मुख्य वास्तुकार के रूप में, पटेल ने असाधारण राजनीतिक कौशल और प्रशासनिक क्षमता का प्रदर्शन किया। भारत के पहले गृह मंत्री के रूप में, वे सांप्रदायिक अशांति से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने, विस्थापित आबादी के पुनर्वास की देख–रेख करने और चरमपंथी विचारधाराओं के उदय का मुकाबला करने में भी सबसे आगे थे। उनके नेतृत्व ने राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने और देश की धार्मिक विविधता का सम्मान करने के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

महात्मा गांधी के नैतिक आदर्शवाद या जवाहरलाल नेहरू के धर्मनिरपेक्षता के विपरीत, पटेल का दृष्टिकोण व्यावहारिकता और प्रशासनिक संकल्प पर आधारित था। उनकी नीतियों का उद्देश्य साझा नागरिकता की भावना को बढ़ावा देते हुए सांप्रदायिक कलह को दबाना था। यह लेख तीन आयामों के माध्यम से सांप्रदायिक सद्भाव में पटेल के योगदान का मूल्यांकन करता हैः विभाजन से संबंधित संकटों का प्रबंधन, एक स्थिर शक्ति के रूप में रियासतों का एकीकरण और धार्मिक और राजनीतिक गुटों के साथ उनका जुड़ाव। उनकी रणनीतियों और उनके परिणामों का विश्लेषण करके, यह अध्ययन उत्तर–औपनिवेशिक भारत के सामाजिक ताने–बाने को आकार देने में पटेल की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालता है

ऐतिहासिक संदर्भः विभाजन और सांप्रदायिक तनाव

भारत का विभाजन महज एक राजनीतिक घटना नहीं था, बल्कि यह एक गहन सामाजिक विघटन की प्रक्रिया थी। जब धार्मिक आधार पर सीमाएँ निर्धारित की गई, भारत को हिंदू और सिखों के लिए तथा पाकिस्तान को मुसलमानों के लिए विभाजित किया गया तो इससे व्यापक स्तर पर जनसंख्या का आदान–प्रदान शुरू हुआ। अनुमान है कि लगभग 1.4 से 1.5 करोड़ लोग इस विभाजन के कारण विस्थापित हुए।[2] धार्मिक भेदभाव और धार्मिक राष्ट्रवाद से प्रेरित ध्रुवीकरणपूर्ण बयानों ने सांप्रदायिक तनाव को और भड़काया, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर हिंसा हुई। दिल्ली, कलकत्ता और लाहौर जैसे प्रमुख शहरी केंद्र रक्तपात के प्रतीक बन गए, जबकि पंजाब और बंगाल के ग्रामीण इलाकों में हुए सामूहिक नरसंहारों ने मानवता पर गहरे घाव छोड़े।[3] 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सामने दोहरी चुनौती खड़ी थी–संप्रभुता की स्थापना और देश में कानून व्यवस्था की पुनर्बहाली। 15 अगस्त 1947 को जब सरदार वल्लभभाई पटेल ने देश के पहले गृह मंत्री के रूप में कार्यभार संभाला, तब भारत एक ऐसे संकटग्रस्त दौर से गुजर रहा था, जहाँ सामाजिक ताना–बाना टूटने के कगार पर था।

मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा जैसे सांप्रदायिक संगठनों द्वारा फैलाए गए तनाव ने हालात को और भी जटिल बना दिया। इसी अस्थिरता के बीच जनवरी 1948 में एक हिंदू चरमपंथी द्वारा महात्मा गांधी की हत्या ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता की संवेदनशीलता को उजागर कर दिया ।[4] ऐसे चुनौतीपूर्ण वातावरण में, पटेल का दृढ़ नेतृत्व भारत को एक संगठित और स्थिर राष्ट्र के रूप में गढ़ने का एक निर्णायक कारक सिद्ध हुआ। उनकी राजनीतिक सूझ–बूझ और प्रशासनिक दृढ़ता ने नवगठित भारतीय राज्य की एकता और अखंडता की रक्षा में अहम भूमिका निभाई।

देश के विभाजन से उत्पन्न संकट

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद, भारत को विभाजन से उपजे गहरे सामाजिक और सांप्रदायिक संकट का सामना करना पड़ा। सरदार वल्लभभाई पटेल, जो नव स्वतंत्र भारत के पहले गृह मंत्री नियुक्त हुए, के समक्ष तत्काल चुनौतियाँ थीं–भारत और पाकिस्तान के बीच हो रहे जनसंख्या स्थानांतरण की निगरानी करना और व्यापक सांप्रदायिक हिंसा को नियंत्रित करना। इस संवेदनशील दौर के प्राथमिक स्रोत पटेल की समस्या से निपटने की बहुआयामी रणनीति को उजागर करते है। उन्होंने दिल्ली और अन्य संवेदनशील क्षेत्रों में मुस्लिम समुदायों की सुरक्षा के लिए सुरक्षा बलों की तैनाती की और स्पष्ट निर्देश दिए कि अल्पसंख्यकों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की हिंसा को बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। उनकी कानून–व्यवस्था के प्रति कटिबद्धता 13 सितंबर 1947 को दिल्ली में दिए गए एक सार्वजनिक भाषण में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, जहाँ उन्होंने कहा ''हमारा पहला कर्तव्य प्रत्येक नागरिक के जीवन, संपत्ति और सम्मान की रक्षा करना है, चाहे वे कोई भी हो।''[5]

जब पुरानी दिल्ली में हिंदू और सिख शरणार्थियों द्वारा मुसलमानों पर हमले हुए, तो पटेल ने स्वयं प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया, अतिरिक्त सुरक्षा बल तैनात किए, और निर्देश दिया कि दोषियों को बिना किसी धार्मिक भेदभाव के गिरफ्तार किया जाए।[6] यह उनकी निष्पक्ष और सख्त प्रशासकीय शैली का प्रतीक था।

हालांकि, यह भी उल्लेखनीय है कि उनकी सुरक्षात्मक कार्रवाई के साथ–साथ, कुछ मुस्लिम समुदायों के प्रति उनका रवैया संदेहात्मक रहा, विशेषकर उन लोगों के प्रति जिन्होंने पाकिस्तान आंदोलन का समर्थन किया था लेकिन विभाजन के बाद भारत में रह गए थे। 20 सितंबर 1947 को मुस्लिम नेताओं के साथ एक बैठक में उन्होंने दो टूक शब्दों में कहा'' जो लोग खुले तौर पर एकजुट भारत के विचार के विरोधी रहे है और जिन्होंने एक अलग मुस्लिम राज्य की स्थापना के लिए काम किया है, उन्है अब यह तय करना चाहिए कि उनकी वफादारी कहां है''[7] पटेल का यह दृष्टिकोण एक ओर जहां तत्काल सुरक्षा सुनिश्चित करने की आवश्यकता को दर्शाता है, वहीं दूसरी ओर यह भी दिखाता है कि उनके लिए राष्ट्रीय एकता और राज्य के प्रति निष्ठा सर्वोपरि थी।

विभाजन से संबंधित संकटों का प्रबंधन

शरणार्थी पुनर्वास और संसाधन आवंटन

1947 में भारत के विभाजन के तुरंत बाद देश को शरणार्थियों की एक अभूतपूर्व आमद का सामना करना पड़ा, विशेष रूप से पश्चिमी पाकिस्तान से भागे हिंदू और सिख समुदायों के रूप में। इन लाखों विस्थापितों के पुनर्वास की जिम्मेदारी गृह मंत्रालय पर थी, जिसके नेतृत्व में सरदार वल्लभभाई पटेल थे। सीमित संसाधनों, प्रशासनिक अव्यवस्था और कई क्षेत्रों में स्थानीय विरोध जैसी गंभीर चुनौतियों के बावजूद, पटेल ने इस संकट का व्यावहारिक और संगठित समाधान प्रस्तुत किया। केवल पंजाब में ही लगभग पचास लाख शरणार्थियों ने सीमा पार की, जिससे न केवल मौजूदा बुनियादी ढांचे पर असाधारण दबाव पड़ा बल्कि सांप्रदायिक तनाव भी तीव्र हो गया ।[8] पटेल ने तेजी से राहत शिविरों की स्थापना कराई, पुनर्वास के लिए भूमि का आवंटन किया, और आवश्यक सहायता वितरित करने हेतु प्रांतीय सरकारों के साथ समन्वय स्थापित किया। पटेल का पुनर्वास दृष्टिकोण भावुकता के स्थान पर व्यावहारिकता पर आधारित था। 1947 में राज्य के अधिकारियों को दिए गए एक निर्देश में उन्होंने स्पष्ट किया ''हमारा कर्तव्य है कि हम सांप्रदायिक कड़वाहट को बढ़ने न दें और इन लोगों को शीघ्र व

न्यायसंगत रूप से बसाएं ।''[9] इस नीति का उद्देश्य प्रशासनिक दक्षता के माध्यम से हिंसा को रोकना और आर्थिक अस्थिरता को नियंत्रित करना था। दिल्ली में, जहाँ शरणार्थियों और मुस्लिम निवासियों के बीच संपत्ति विवाद को लेकर तनाव चरम पर पहुंच गया, पटेल ने पुलिस बलों की तैनाती कर कानून–व्यवस्था की पुनर्बहाली सुनिश्चित की। साथ ही, उन्होंने स्थानीय समितियों के माध्यम से संवाद और समाधान की प्रक्रिया को भी बढ़ावा दिया। हालांकि, कुछ आलोचकों जैसे हसन का मानना है कि पटेल की नीतियाँ भारत लौटने के इच्छुक मुसलमानों की आवश्यकताओं की अनदेखी करते हुए हिंदू शरणार्थियों को अनुचित प्राथमिकता देती थीं। इसके बावजूद, पटेल के पत्राचार से उनके समावेशी दृष्टिकोण की पुष्टि होती है 1948 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा ''हम विभाजन की त्रासदी को पलट नहीं सकते, लेकिन हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक भारतीय, चाहे उसका धर्म कुछ भी हो, को यहाँ एक घर मिले।''[10] यह कथन इस बात का संकेत देता है कि पटेल के निर्णय सांप्रदायिक पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं थे, बल्कि वे तत्कालीन राजनीतिक और प्रशासनिक सीमाओं की व्यावहारिकता से संचालित थे।

सांप्रदायिक दंगों का दमन

1947–48 के दौरान भड़के सांप्रदायिक दंगे स्वतंत्र भारत की एकता और अखंडता के लिए एक गंभीर चुनौती बन गए थे। विशेष रूप से दिल्ली में, जहाँ मुस्लिम मोहल्लों को व्यवस्थित रूप से निशाना बनाया जा रहा था, सरदार वल्लभभाई पटेल ने तत्काल और निर्णायक हस्तक्षेप किया। उन्होंने राजधानी में पुलिस बल की उपस्थिति बढ़ाई, कर्फ्यू लागू कराया और स्वयं प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करते हुए हिंसक भीड़ को संयम बरतने की अपील की। अक्टूबर 1947 में दिल्ली में दिए गए उनके एक सार्वजनिक भाषण ने उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण को स्पष्ट किया ''भारत किसी एक समुदाय की संपत्ति नहीं है अगर हम एक–दूसरे को नष्ट करते है, तो हम स्वयं को नष्ट कर देंगे।''[11] यह वक्तव्य न केवल उनकी आधिकारिक नीति का प्रतीक था, बल्कि उस समय की भयावह परिस्थिति में राज्य की भूमिका और दायित्व को भी स्पष्ट करता था। पटेल की इस रणनीति जिसमें आधिकारिक बयानबाजी के साथ–साथ कड़ी प्रशासनिक कार्रवाई का संयोजन था– दिल्ली जैसे शहरी क्षेत्रों में सांप्रदायिक हिंसा को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

दूसरी ओर, बंगाल में, जहाँ 1948 तक दंगे जारी रहे, पटेल ने राज्यपाल सी. राजगोपालाचारी के साथ मिलकर सैनिकों की तैनाती और स्थानीय नेताओं के साथ बातचीत की पहल की। बंगाल में उनकी रणनीति भी स्पष्ट थी–राज्य शक्ति का सक्रिय प्रयोग कर व्यवस्था की बहाली सुनिश्चित करना। यह दृष्टिकोण महात्मा गांधी की नैतिक अपीलों और आमरण अनशन जैसी अहिंसात्मक रणनीतियों से भिन्न था। पटेल का मानना था कि कानून और व्यवस्था को बहाल करने के लिए केवल नैतिक अनुनय पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसके लिए राज्यसत्ता के सशक्त और निर्णायक उपयोग की आवश्यकता है[12] इस प्रकार, पटेल की नेतृत्व शैली ने व्यावहारिकता और राजनीतिक संकल्प को प्राथमिकता दी, जिसने हिंसा को नियंत्रित करने और राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखने में अहम योगदान दिया।

रियासतों का एकीकरणः सांप्रदायिक संघर्ष के खिलाफ एक सुरक्षा कवच

सरदार वल्लभभाई पटेल की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक भारतीय संघ में 500 से अधिक रियासतों का शांतिपूर्ण विलय केवल राजनीतिक एकीकरण का कार्य नहीं था, बल्कि यह सांप्रदायिक

सद्भाव सुनिश्चित करने की दिशा में भी एक रणनीतिक प्रयास था। कई रियासतें, जैसे हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर, ऐसी जटिल धार्मिक जनसांख्यिकी से युक्त थीं जहाँ साम्प्रदायिक संघर्षों की आशंका प्रबल थी। इन क्षेत्रों में अल्पसंख्यक शासक और बहुसंख्यक प्रजा के बीच गहरे धार्मिक विभाजन मौजूद थे, जो विभाजन की पृष्ठभूमि में हिंसा को जन्म दे सकते थे।

पटेल ने इन चुनौतियों का सामना अत्यंत दूरदर्शिता और संयम के साथ किया। उनकी रणनीति में कूटनीति और सैन्य दबाव का संतुलित प्रयोग शामिल था—जहाँ आवश्यक हुआ, उन्होंने सैन्य हस्तक्षेप की संभावना को खुला रखा, लेकिन प्राथमिकता शांतिपूर्ण समाधान पर ही दी। यह दृष्टिकोण न केवल राजनीतिक स्थिरता लाने में सफल रहा, बल्कि संभावित सांप्रदायिक तनाव को भी प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया। इस प्रकार, रियासतों का एकीकरण न केवल भारत की राजनीतिक एकता की आधारशिला बना, बल्कि उसने धार्मिक विविधता से भरे नवजात राष्ट्र में सांप्रदायिक शांति बनाए रखने का एक सशक्त ढांचा भी प्रस्तुत किया।

हैदराबाद: एक केस स्टडी

हैदराबाद, जहाँ बहुसंख्यक आबादी हिंदू थी लेकिन शासन मुस्लिम निजाम के हाथों में था, सरदार वल्लभभाई पटेल के सामने खड़ी सबसे जटिल सांप्रदायिक चुनौतियों में से एक था। राज्य के शासक मीर उस्मान अली खान बहादुर ने 29 नवम्बर 1947 को भारत सरकार के साथ एक 'यथास्थिति समझौते' पर हस्ताक्षर किए, जिसका उद्देश्य था एक वर्ष तक यथास्थिति बनाए रखते हुए किसी भी निर्णय को टालना और सद्भावना की भावना को विकसित करना। हालाँकि, इस समझौते के समानांतर, हैदराबाद में हालात बिगड़ते चले गए। निजाम समर्थक मजलिस–ए–इत्तेहादुल–मुसलमीन और उसके सशस्त्र संगठन 'रजाकारों' ने राज्य में आतंक और उत्पीड़न का वातावरण बना दिया। हिन्दू जनसंख्या पर हो रहे अत्याचारों की खबरें देशभर में चिंता का विषय बनीं। भारत सरकार ने स्थिति को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाने के लिए कई प्रयास किए, लेकिन सभी कूटनीतिक प्रयास असफल रहै

आखिरकार, 13 सितम्बर 1948 को ऑपरेशन पोलो नामक सैन्य अभियान शुरू किया गया और महज पाँच दिनों में हैदराबाद को भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया गया। इस निर्णायक कार्रवाई ने भारत की क्षेत्रीय अखंडता को मजबूत किया और एक संभावित गृहयुद्ध की आशंका को टाल दिया। विलय के बाद, पटेल ने स्थिति को सामान्य करने और सांप्रदायिक तनाव को कम करने के लिए प्रभावशाली कदम उठाए। उन्होंने नए प्रशासकों की नियुक्ति की और क्षेत्र में प्रशासनिक ढाँचा बहाल किया। अपने रेडियो संबोधन में, उन्होंने हैदराबाद के मुस्लिम नागरिकों को आश्वस्त करते हुए कहा, –आप किसी और की तरह भारत का हिस्सा है। आइए हम मिलकर इस राष्ट्र का निर्माण करें।[13] इसके अतिरिक्त, पटेल द्वारा आरंभ किए गए आर्थिक पुनर्वास और प्रशासनिक स्थिरीकरण कार्यक्रमों ने क्षेत्र की स्थिति को अपेक्षाकृत शीघ्र सामान्य किया। हालांकि, कुछ विद्वानों—जैसे कि इयान कोपलैंड—का तर्क है कि इन प्रयासों के बावजूद मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बीच अविश्वास की भावना बनी रही।[14] इस प्रकार, हैदराबाद का एकीकरण न केवल भारत की भौगोलिक एकता का प्रतीक था, बल्कि यह सांप्रदायिक शांति की स्थापना और बहुलतावादी राष्ट्र के निर्माण की दिशा में एक निर्णायक मोड़ भी सिद्ध हुआ।

जूनागढ़

जूनागढ़ का मामला रियासतों के एकीकरण की जटिलताओं के बीच सरदार वल्लभभाई पटेल के कुशल राजनयिक नेतृत्व का एक उल्लेखनीय उदाहरण है यह रियासत, जहाँ बहुसंख्यक आबादी हिंदू

थी, मुस्लिम नवाब महाबत खान के अधीन थी। 1947 में नवाब द्वारा पाकिस्तान में शामिल होने का निर्णय एक अत्यंत विस्फोटक राजनीतिक स्थिति को जन्म देता है इस निर्णय ने न केवल स्थानीय जनसंख्या में व्यापक असंतोष को जन्म दिया, बल्कि रियासत में सांप्रदायिक हिंसा की आशंका भी गहरा गई। हालाँकि तत्काल सैन्य हस्तक्षेप एक आसान विकल्प हो सकता था, लेकिन पटेल ने संयम और रणनीतिक सूझ–बूझ का परिचय दिया। उन्होंने नवाब के प्रशासन से बातचीत की शुरुआत की, और साथ ही यह सुनिश्चित किया कि जनता की भावनाओं को लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से अभिव्यक्ति मिले। परिणामस्वरूप, 1948 में जनमत संग्रह आयोजित किया गया, जिसमें भारी बहुमत ने भारत में शामिल होने का समर्थन किया।[15] यह जनादेश न केवल निर्णय की वैधता को स्थापित करता है, बल्कि पटेल की इस प्रतिबद्धता को भी रेखांकित करता है कि राष्ट्रीय एकता बलपूर्वक थोपे जाने के बजाय जनता की सहमति से प्राप्त हो।

जूनागढ़ की तरह अन्य रियासतों के साथ भी पटेल ने इसी संतुलित दृष्टिकोण को अपनाया। वी.पी. मेनन की सहायता से उन्होंने अनिच्छुक रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित करने के लिए कूटनीतिक वार्ताओं, दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति और रणनीतिक दबाव का संयोजन किया। इस रणनीति ने उन रियासतों की संप्रभुता की महत्वाकांक्षाओं को निरस्त किया, जो धार्मिक विभाजन का लाभ उठाकर अलगाव को बढ़ावा दे सकती थीं। गुहा के अनुसार, पटेल की यह कार्यप्रणाली न केवल भारत की क्षेत्रीय एकता को सुनिश्चित करती है, बल्कि सांप्रदायिक आधार पर होने वाली संभावित विघटनकारी राजनीति को भी निष्क्रिय कर देती है उन्होंने लोकतांत्रिक सिद्धांतों और व्यावहारिक प्रशासनिक दृष्टिकोण का ऐसा संतुलन स्थापित किया, जिससे नवजात भारतीय राष्ट्र को स्थायित्व मिला और दीर्घकालिक एकता की नींव रखी गई।[15]

धार्मिक और राजनीतिक गुटों के साथ जुड़ाव

सरदार वल्लभभाई पटेल का धार्मिक और राजनीतिक गुटों के साथ जुड़ाव राष्ट्रीय एकता के लिए एक रणनीतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण को प्रकट करता है हिंदू राष्ट्रवाद से लेकर मुस्लिम अलगाववाद तक के वैचारिक विचारधाराओं को समझते हुए, पटेल ने इन विविध ताकतों को भारत के उभरते धर्मनिरपेक्ष ढांचे के साथ जोड़ने की कोशिश की। राज्य के अधिकार को बनाए रखते हुए परस्पर विरोधी विचारधाराओं के बीच मध्यस्थता करने की उनकी क्षमता ने भारत के प्रारंभिक वर्षों के दौरान राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जनवरी 1948 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के पूर्व सदस्य नाथूराम गोडसे द्वारा महात्मा गांधी की हत्या ने पटेल को हिंदू राष्ट्रवादी समूहों के साथ सीधे टकराव में डाल दिया। सांप्रदायिक हिंसा की संभावना के बारे में गहराई से चिंतित, पटेल ने आरएसएस पर प्रतिबंध लगा दिया और इसके सदस्यों की सामूहिक गिरफ्तारी का निरीक्षण किया, जो चरमपंथी विचारधाराओं पर सरकार के शून्य सहिष्णुता के रुख का संकेत देता है[16] ऐसे संगठनों की उनकी स्पष्ट निंदा उनके फरवरी 1948 के बयान में परिलक्षित हुईः ''घृणा का उपदेश देने वाले संगठनों का स्वतंत्र भारत में कोई स्थान नहीं है''।[17]

पटेल की व्यावहारिकता तब उजागर हुई जब उन्होंने 1949 में आरएसएस के संविधान और अहिंसा के प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा करने के बाद प्रतिबंध हटा लिया। यह समझौता उनके इस विश्वास को दर्शाता था कि ऐसे समूहों को अलग–थलग करने के बजाय उन्है अपने पक्ष में करना दीर्घकालिक स्थिरता की कुंजी था।[18] हालाँकि, यह निर्णय विद्वानों के बीच बहस का विषय बना हुआ है जबकि कुछ

लोग इसे आगे कट्टरपंथ को रोकने के लिए एक आवश्यक उपाय के रूप में देखते है, अन्य लोगों का तर्क है कि पटेल की नरमी ने अनजाने में हिंदू बहुसंख्यकवाद को प्रोत्साहित किया, जिसने स्वतंत्र भारत में राष्ट्रवादी आंदोलनों के राजनीतिक वैधता के लिए एक मिसाल स्थापित की।[19]

मुस्लिम समुदाय और कांग्रेस

स्वतंत्र भारत के निर्माण में एक प्रमुख भूमिका निभाने वाले सरदार वल्लभभाई पटेल का भारतीय मुस्लिम समुदाय के साथ संबंध जटिल और बहुआयामी था। एक ओर उन्होंने विभाजन के बाद की सामाजिक विघटन की स्थिति में मुसलमानों को भारत के राष्ट्रीय ढांचे में समाहित करने की ईमानदार कोशिश की, वहीं दूसरी ओर वे लगातार पक्षपात और पूर्वाग्रह के आरोपों का सामना करते रहै

पटेल ने मुस्लिम समुदाय की सुरक्षा के प्रति गहरी प्रतिबद्धता दिखाई। 1949 में दिए गए एक सार्वजनिक भाषण में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, मुसलमान जो भारत में रहते है, वे हमारी जिम्मेदारी है। हम उन्है निराश नहीं करेंगे।[20] यह वक्तव्य उस समय दिया गया जब विभाजन की पीड़ाओं ने समाज को गहराई तक विभाजित कर दिया था और अल्पसंख्यकों के प्रति भरोसे का संकट उत्पन्न हो गया था। हालाँकि, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं ने मुस्लिम शरणार्थियों के पुनर्वास में सरकार की सुस्त प्रगति की आलोचना की।[21] इस संदर्भ में पटेल की नीतियों पर पूर्वग्रह का आरोप लगाया गया, जिससे उनकी प्रतिबद्धता पर सार्वजनिक बहस छिड़ गई। फिर भी, पटेल ने मुस्लिम नेताओं के साथ विश्वास बहाली के प्रयासों में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने आजाद और अन्य कांग्रेस नेताओं के साथ मिलकर मस्जिदों के पुनर्निर्माण, अल्पसंख्यक कल्याण योजनाओं के कार्यान्वयन और सांप्रदायिक सौहार्द को पुर्नस्थापित करने हेतु ठोस कदम उठाए। इस प्रकार, पटेल का दृष्टिकोण मुस्लिम समुदाय के संदर्भ में द्वंद्वात्मक रहा, जहाँ एक ओर विभाजन के कारण उपजी अलगाववादी प्रवृत्तियों का सख्त विरोध, और दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता के लिए मुस्लिम समुदाय का पुनः विश्वास अर्जित करने का ईमानदार प्रयास।[22]

सरदार वल्लभभाई पटेल का मुस्लिम लीग के द्वि–राष्ट्र सिद्धांत के प्रति विरोध अटल और स्पष्ट था। उन्होंने इस विचारधारा को खारिज करते हुए विभाजन को धार्मिक अलगाववाद की स्वीकृति नहीं, बल्कि एक दुखद ऐतिहासिक आवश्यकता के रूप में देखा।[23] पटेल का मानना था कि भारत की स्थिरता और एकता के लिए आवश्यक है कि मुसलमानों को नागरिकता अधिकारों, आर्थिक अवसरों और राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से देश के राष्ट्रीय ताने–बाने में समाहित किया जाए।[24] उनका यह दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि व्यवहारिक नीतियों में भी परिलक्षित हुआ। वह एक धर्मनिरपेक्ष किंतु एकीकृत राष्ट्र के पक्षधर थे, जहाँ सभी नागरिक समान अवसरों और अधिकारों के साथ आगे बढ़ सकें। इस विचारधारा ने उन्है न केवल मुसलमानों के अधिकारों के रक्षक के रूप में स्थापित किया, बल्कि एक व्यावहारिक राजनेता के रूप में भी, जो सामाजिक ध्रुवीकरण को रोकने के लिए सक्रिय रूप से प्रयासरत थे।

पटेल की धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण

सरदार वल्लभभाई पटेल की धर्मनिरपेक्षता किसी वैचारिक आदर्शवाद में नहीं, बल्कि व्यावहारिक नीतिगत दृष्टिकोण में निहित थी। 1949 में एक सार्वजनिक संबोधन में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा– भारत की ताकत इसकी विविधता में निहित है हमें भाइयों के रूप में रहना चाहिए, प्रतिद्वंद्वियों के रूप में नहीं।[25] यह दृष्टिकोण उनकी नीतियों का आधार बना, जिनमें सांप्रदायिक प्रचार पर प्रतिबंध, अंतरधार्मिक संवाद

को प्रोत्साहन, और सभी धार्मिक समुदायों के लिए न्याय की समान गारंटी शामिल थी। पटेल का मानना था कि बहुसंख्यक समुदाय का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपनी उदारता और विवेकशीलता के माध्यम से अल्पसंख्यकों में विश्वास उत्पन्न करे। साथ ही, उन्होंने अल्पसंख्यकों से आग्रह किया कि वे अतीत की कटु स्मृतियों से ऊपर उठें और समझें कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन की फूट डालो और राज करो नीति ने भारतीय समाज को बांटने का प्रयास किया था।

उन्होंने एक ऐतिहासिक भाषण में कहा यदि वे वास्तव में ईमानदारी से इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि देश की बदली हुई परिस्थितियों में एक वास्तविक और सच्चे धर्मनिरपेक्ष राज्य की नींव डालना सभी के हित में है, तो अल्पसंख्यकों के लिए इससे बेहतर कुछ नहीं हो सकता कि वे बहुसंख्यकों की विवेकशीलता और निष्पक्षता पर भरोसा करें, और उन पर विश्वास जताएं। उसी प्रकार, जो लोग संयोगवश बहुसंख्यक समुदाय से है, उनके लिए यह आवश्यक है कि वे इस पर विचार करें कि अल्पसंख्यक क्या महसूस करते है, और यदि हम उनकी जगह होते और हमारे साथ वैसा व्यवहार किया जाता जैसा उनके साथ किया जाता है, तो हम कैसा महसूस करते। लेकिन दीर्घकालिक दृष्टि से यह सभी के हित में होगा कि हम यह भूल जाएं कि इस देश में कोई बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक है, और यह अनुभव करें कि भारत में केवल एक ही समुदाय है भारतीय समुदाय।[26] इस सुसंगत दृष्टिकोण के बावजूद, पटेल को आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा। फिर भी, वे अपने मूल उद्देश्य से विचलित नहीं हुए: भारत की क्षेत्रीय अखंडता और सामाजिक समरसता को बनाए रखना, और विभाजनकारी शक्तियों के विरुद्ध एक सशक्त, एकीकृत राष्ट्र की स्थापना करना।[27]

विरासत और समकालीन प्रासंगिकता

भारत के पहले गृह मंत्री के रूप में सरदार वल्लभभाई पटेल का कार्यकाल स्वतंत्र भारत के सबसे अनिश्चित और चुनौतीपूर्ण काल में राष्ट्र को स्थिरता प्रदान करने के लिए निर्णायक सिद्ध हुआ। विभाजन के तत्काल बाद की अवधि सांप्रदायिक हिंसा, एक अभूतपूर्व शरणार्थी संकट, और 500 से अधिक रियासतों के भारतीय संघ में एकीकरण की चुनौती से चिह्नित थी। इन परिस्थितियों में, पटेल का दृढ़ लेकिन व्यावहारिक नेतृत्व देश के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत बना। उन्होंने दंगों को नियंत्रित करने, रियासतों के शांतिपूर्ण और व्यवस्थित विलय को सुनिश्चित करने, और विविध राजनीतिक व धार्मिक समूहों के साथ संवाद बनाकर एक नाजुक सामाजिक संतुलन कायम रखने में निर्णायक भूमिका निभाई। दिसंबर 1950 में उनकी मृत्यु तक, भारत ने विभाजन की भीषण त्रासदी का सामना कर लिया था और एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक ढांचे की नींव रख दी गई थी। हालांकि इन ऐतिहासिक उपलब्धियों के बावजूद, पटेल की विरासत विद्वानों के बीच विवाद का विषय बनी रही है उनके समर्थक उन्है राष्ट्रीय एकता और अखंडता के रक्षक के रूप में प्रस्तुत करते है, और उनकी प्रशासनिक दक्षता व निर्णायक नेतृत्व की सराहना करते है।[28] वहीं आलोचक यह तर्क देते है कि उनके निर्णयों में हिंदू झुकाव दिखाई देता है, जिससे उनकी धर्मनिरपेक्ष प्रतिबद्धता और अल्पसंख्यकों के प्रति न्यायसंगत दृष्टिकोण पर प्रश्न उठते है।[29]

फिर भी, पटेल की नीतियाँ किसी सरल वैचारिक खांचे में समाहित नहीं की जा सकतीं। वे न तो एक सख्त हिंदू राष्ट्रवादी थे और न ही सिद्धांतवादी धर्मनिरपेक्षतावादी। बल्कि, वे एक व्यावहारिक यथार्थवादी थे जिन्होंने राष्ट्रीय स्थिरता को वैचारिक शुद्धता से अधिक प्राथमिकता दी। पटेल का शासन मॉडल समकालीन भारत में महत्त्वपूर्ण प्रासंगिकता रखता है, जहां सांप्रदायिक तनाव राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती बने हुए है। गुजरात दंगे (2002) और दिल्ली दंगे (2020) जैसी घटनाएं भारतीय समाज में लगातार

गलतियों को रेखांकित करती है। पटेल की विरासत से पता चलता है कि सांप्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए दृढ़ शासन, अंतरधार्मिक संवाद और कानूनी निष्पक्षता का संतुलन आवश्यक है उनका व्यावहारिक दृष्टिकोण, धार्मिक समुदायों को पूरी तरह से अलग–थलग किए बिना व्यवस्था पर जोर देना, भारत की चल रही सामाजिक–राजनीतिक जटिलताओं को दूर करने के लिए एक खाका प्रदान करता है

निष्कर्ष

उत्तर–औपनिवेशिक भारत में सांप्रदायिक सद्भाव को प्रोत्साहित करने में सरदार वल्लभभाई पटेल का योगदान न केवल अत्यंत महत्वपूर्ण, बल्कि कई स्तरों पर जटिल भी था। स्वतंत्रता के बाद के उथल–पुथल भरे दौर में, जब राष्ट्र विभाजन की पीड़ा, साम्प्रदायिक दंगों और राजनीतिक विघटन की आशंकाओं से जूझ रहा था, पटेल का नेतृत्व एकता और विविधता के बीच एक नाजुक संतुलन को परिभाषित करता है

विभाजन संकट से निर्णायक ढंग से निपटना, 500 से अधिक रियासतों का भारतीय संघ में एकीकरण, और धार्मिक तथा राजनीतिक गुटों से व्यवहारिक संवाद स्थापित करना—इन सभी प्रयासों में पटेल की नीति स्पष्ट थी राष्ट्रीय एकता की प्रतिबद्धता को शासन की व्यावहारिक आवश्यकताओं से जोड़ना। उनके नेतृत्व की विशेषता यह थी कि वह अमूर्त आदर्शों में नहीं, बल्कि व्यावहारिक समाधान और प्रशासनिक दृढ़ता में निहित थी। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि नवगठित भारतीय राज्य अपने गहरे धार्मिक और क्षेत्रीय मतभेदों के बावजूद एकजुट बना रहै समकालीन भारत, जहाँ धार्मिक ध्रुवीकरण और साम्प्रदायिक तनाव एक स्थायी चुनौती बने हुए है, वहाँ पटेल की विरासत आज भी राष्ट्रीय एकता और सामाजिक समरसता पर विमर्श का एक केंद्रीय संदर्भ बिंदु है यद्यपि उनकी राज्यसत्ता की संकल्पनाएँ कभी–कभी केन्द्रीयकृत प्रशासन की ओर झुकती प्रतीत होती है, परंतु उनका दृष्टिकोण विविधताओं से भरे समाज में मूल्य–आधारित समन्वय की एक व्यावहारिक समझ प्रदान करता है भारत जैसे बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक समाज में, जहाँ धर्म और राष्ट्र की अवधारणाएँ बार–बार राजनीतिक विमर्श का केंद्र बनती है, सरदार पटेल का नेतृत्व मॉडल एक गहन प्रेरणा प्रदान करता है उनकी धर्मनिरपेक्ष प्रतिबद्धता, निर्णयात्मक नेतृत्व और प्रशासनिक व्यावहारिकता—तीनों मिलकर समावेशी राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए एक सैद्धांतिक और व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करते है।

उनका दृष्टिकोण, जो एक ओर कठोर निर्णय लेने की तत्परता रखता है, और दूसरी ओर सांप्रदायिक सौहार्द को बनाए रखने की कोशिश करता है, समकालीन राजनीति में धार्मिक पहचान और भारतीय राष्ट्रीयता के जटिल अंतर्संबंधों को समझने हेतु एक उपयोगी खाका प्रस्तुत करता है

[1]इतिहास विभाग
समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर
akhilverma08@gmail.com
[2]इतिहास विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
amiralikhan481@gmail.com

सन्दर्भः

1. *Talbot, I., & Singh, G. (2009). The Partition of India. Cambridge University Press. pp. 67-89.*
2. *Pandey, G. (2001). Remembering Partition: Violence, Nationalism and History in India. Cambridge University Press. pp. 156-178.*

3. *Guha, R. (2007). India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. Macmillan. pp. 45-72.*
4. *Sarkar, S. (1983). Modern India: 1885-1947. Macmillan. pp. 423-445.*
5. *Chopra, P. N. (Ed.). (1995). Sardar Vallabhbhai Patel: Correspondence 1945-1950. Navajivan Publishing House. p. 234.*
6. *Menon, V. P. (1956). The Story of the Integration of the Indian States. Orient Longmans. pp. 187-189.*
7. *Das, D. (Ed.). (1971). Sardar Patel's Correspondence 1945-50, Vol. 4. Navajivan Publishing House. p. 298.*
8. *Krishna, M. V. (2001). The Political Integration of the Indian States. Orient Longman. pp. 145-167.*
9. *Chopra, P. N. (Ed.). (1995). Sardar Vallabhbhai Patel: Correspondence 1945-1950. Navajivan Publishing House. p. 267.*
10. *Menon, V. P. (1956). The Story of the Integration of the Indian States. Orient Longmans. pp. 203-205.*
11. *Gandhi, R. (1984). Patel: A Life. Ahmedabad: Navajivan Publishing House. pp. 445-447.*
12. *Chopra, P. N. (Ed.). (1995). Sardar Vallabhbhai Patel: Correspondence 1945-1950. Navajivan Publishing House. p. 289.*
13. *Guha, R. (2007). India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. Macmillan. pp. 98-102.*
14. *Gandhi, R. (1984). Patel: A Life. Ahmedabad: Navajivan Publishing House. pp. 478-480.*
15. *Copland, I. (1998). The Princes of India in the Endgame of Empire, 1917-1947. Cambridge University Press. pp. 234-256.*
16. *Menon, V. P. (1956). The Story of the Integration of the Indian States. Orient Longmans. pp. 312-315.*
17. *Guha, R. (2007). India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. Macmillan. pp. 123-128.*
18. *Jaffrelot, C. (1996). The Hindu Nationalist Movement and Indian Politics. Columbia University Press. pp. 167-189.*
19. *Chopra, P. N. (Ed.). (1995). Sardar Vallabhbhai Patel: Correspondence 1945-1950. Navajivan Publishing House. p. 356.*
20. *Guha, R. (2007). India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. Macmillan. pp. 134-137.*
21. *Sarkar, S. (1983). Modern India: 1885-1947. Macmillan. pp. 467-470.*
22. *Hasan, M. (1997). Legacy of a Divided Nation: India's Muslims since Independence. Hurst & Company. pp. 89-112.*
23. *Gandhi, R. (1984). Patel: A Life. Navajivan Publishing House. pp. 523-525.*
24. *Copland, I. (1998). The Princes of India in the Endgame of Empire, 1917-1947. Cambridge University Press. pp. 289-291.*
25. *Chopra, P. N. (Ed.). (1995). Sardar Vallabhbhai Patel: Correspondence 1945-1950. Navajivan Publishing House. p. 401.*
26. *Guha, R. (2007). India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. Macmillan. pp. 156-159.*
27. *Goyal, D. R. (2013). Rashtriya Swayamsevak Sangh. Radhakrishna Prakashan. pp. 234-237.*
28. *Gandhi, R. (1984). Patel: A Life. Ahmedabad: Navajivan Publishing House. pp. 567-569.*
29. *Hasan, M. (1997). Legacy of a Divided Nation: India's Muslims since Independence. Hurst & Company. pp. 134-138.*

बौद्धकालीन धम्म का स्वरूप

सुधा सोनकर

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास में बौद्धकाल अनुशासनप्रिय जीवन एवं संवैधानिक व्यवस्था से संचालित था। जिसके मूल में धर्म का शासन था। बौद्धकालीन बुद्धजीवियों ने धर्म का आविष्कार कर मानव जीवन को निरंतर परिमार्जित व विकसित किया था। जिसका प्रमाण है कि तथागत गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक है उन्होंने बौद्ध को समय की आवश्यकता अनुसार परिमार्जित किया था ना कि बौद्ध धर्म की स्थापना की थी। पुरातात्विक अवशेषों व असोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि गौतम बुद्ध से भी पहले 27 बुद्ध हो चुके थे। जिन्होंने अपनी प्रज्ञा, शील और समाधि से भारतीय जनमानस को जीवन जीने की कला सिखायी। प्रस्तुत शोध पत्र में बौद्धकालीन धर्म के स्वरूप व गौतम बुद्ध से पूर्व बौद्धों का वर्णन किया गया है जिन्होंने धर्म की स्थापना कर उसे निरंतर परिष्कृत व परिमार्जित किया था।

बीज शब्द : बौद्धकाल, धम्म, अनुशासन, नैसर्गिक न्याय, अधिकार, प्रवर्तक, पूर्वबुद्ध

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में विश्व के अनेक स्थानों पर युग प्रवर्तकों का जन्म हुआ। नवीन धर्मों की स्थापना हुई और मनुष्य के जीवन की मान्यताओं का पुनः मूल्यांकन करने का प्रयास हुआ।[1] बौद्ध काल में धर्म नैसर्गिक न्याय के रूप में प्रचलित था। नैसर्गिक न्याय की अवधारणा का तात्पर्य है कि ऐसा न्याय जो किसी राष्ट्र के सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो। धर्म सभी लोगों को समान रूप से जीवन जीने की समूची कला सिखाता है धर्म सभी को अभय बनाता है कोसाम्बी (2014) ने अपने ग्रन्थ में धर्म शब्द का अर्थ न्याय ही बताया है[2] प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार मैकफेल (1928) ने भारत की विरासत असोका में धर्म शब्द का अर्थ कानून बताया है[3] काणे (1973) और थापर (1975) आदि इतिहासकार भी धर्म के इस अर्थ से सहमत है।

प्रस्तावना

बौद्धकाल में धर्म का स्वरूप वर्तमान भारत में प्रचलित धर्म के ठीक विपरीत स्थिति का द्योतक है ऐसा कहा जा सकता है कि धर्म में पूजा–पाठ, आरती, यज्ञ–होम, बलि और दक्षिणा आदि बाह्य आडम्बरों का कोई स्थान नहीं है बुद्ध के प्रिय देवानंपिय राजा असोक[4] ने अपने शिलालेख में धर्म शब्द का अर्थ ग्रीक भाषा में अनुवाद करवाया है यह अनुवाद उनके द्विभाषीय कन्धार शिलालेख पर अंकित है उसने धर्म का अनुवाद ग्रीक में युसेबेइया कराया है। जबकि ग्रीक भाषा में रिलिजन को थ्रिस्किया कहा जाता

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 87-95
Peer-reviewed biannual Research Journal

है[5]

अतः स्पष्ट है कि धर्म एक संवैधानिक कानून व्यवस्था है, धर्म का अनुवाद रिलिजन अथवा धर्म करना भाषाविज्ञान के दृष्टिकोण से पूर्णतः गलत है रिलिजन में ईश्वर या देवताओं के अस्तित्व में विश्वास जरूरी होता है जबकि धर्म या युसेबेइया में यह जरूरी नहीं है[6] धर्म से तात्पर्य वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्रजातांत्रिक मूल्यों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करना है अंगुलीमाल नामक हत्यारे को धर्म में जगह तब तक नहीं मिली, जब तक वह लूट–मार का काम करता रहा। जब वह सारे गलत काम छोड़कर धर्म की शरण में आ गया तो उसे संघ में सम्मिलित कर लिया गया।[7]

SECOND PILLAR-EDICT: ALLAHABAD-KOSAM

1 (A) देवानंपिये पियदसी लाजा हेवं आहा (B) धंमे साधु कियं चु धंमे ति (C)
अपासिनवे बहु कयाने दया दाने सचे सोचये (D) चखुदाने पि मे
2 बहुविधे दिंने (E) दुपदचतुपदेसु पखिवालिचलेसु विविधे मे अनुगहें कटे आ
पानदखिनाये (F) अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि
3 (G) एताये मे अठाये इयं धंमलिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु चिलठितीका
च होतू ति (H) ये च हेवं संपटिपजिसति से सुकटं कछती ति

इलाहाबाद कोसम स्तम्भ लेख (स्रोत- हूल्स, 1925. पृ. 155)

असोक इलाहाबाद कोसम स्तम्भ लेख में धर्म को परिभाषित करते हुए कहता है कि

कियं चु धांमे-अपासिनवे बहु कयाने दया दाने सचे सोचये चखुदानेपि

अर्थात् असोक प्रश्न करता है कि धर्म क्या है? और फिर बताता है कि अधिक संग्रह से मुक्ति, सभी का कल्याण करना, जीवों के प्रति दया, और दान करना, सत्य बोलना और पवित्र जीवन जीना ही धर्म है[8]

सम्राट असोक ने अपने अभिलेखों स्तम्भलेखों और शिलालेखों में दो उपाधियों का प्रयोग करते है, पियदसि और देवानंपिय। पहली उपाधि पियदसि का पालि भाषा में अर्थ होता है कल्याणकारी या मंगलकारी दर्शन[9] अर्थात् लोगों की भलाई चाहने वाला दर्शन। असोक अपने अभिलेखों स्तम्भलेखों और शिलालेखों में बहुकयाने अर्थात् लोगों के कल्याण की बात करता है जो सिद्ध करता है कि असोक की विचारधारा जनकल्याणकारी थी। वह अपनी प्रजा को पुत्रवत मानते थे तथा लोगों की भलाई को सर्वोपरी समझते थे और उसके लिए निरन्तर कार्य करते थे। इस तरह हम कह सकते है कि चक्रवर्ती धम्मराज सम्राट असोक की दार्शनिक विचारधारा के समक्ष दुनिया का कोई राजा खड़ा नहीं हो सकता है पियदसि का अर्थ 'देखने में सुन्दर' बताना गलत है सम्राट असोक अपने बारें में कभी इस तरह का शब्द प्रयोग नहीं कर सकते है।

दूसरी उपाधि में बुद्ध के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उपाधि 'देवानंपिय राजा और लाजा' लिखवाया है जिसका अर्थ है बुद्ध का प्रिय राजा[10] ना कि जैसा कि इतिहासकारों रामशरण शर्मा[11], रोमिला थापर[12], डी0 डी0 कोसम्बी[13], नीलकण्ठ शास्त्री[14] तथा राधाकुमुद मुखर्जी[15] आदि ने अपने ग्रन्थों बताया है कि ''देवानंपिय राजा'' का अर्थ देवताओं का प्रिय राजा होता है असोक का देवताओं से कोई सम्बन्ध नहीं था। नाही वर्तमान समय की तरह देवी–देवता उस समय प्रचलन में थे। असोक का सम्बन्ध देवा अर्थात् बुद्ध से था। क्योंकि देवा का अर्थ ही बुद्ध अर्थात् अर्हत होता है[16] इसलिए जो इतिहासकार असोक

को देवानांपिय राजा अर्थात् देवताओं का प्रिय राजा बता रहे है उन्है अपनी व्याख्याओं और दृष्टिकोणों पर विचार करना चाहिए। असोक के रूपनाथ के लघु शिलालेख में देवानंपिय और देवा शब्द आये है।[17] देवानंपिय उपाधि सिर्फ असोक की ही नहीं बल्कि उनके समकालीन शिलन (सिलोन) के राजा तिस्स और बाद के मौर्य राजाओं की भी थीं। सम्राट असोक के किसी भी शिलालेख में बुद्ध को छोड़कर किसी देवी–देवताओं का नाम नहीं है। इसलिए इतिहास के ग्रन्थों में असोक को देवताओं का प्रिय बताकर कर सम्बोधित करना सर्वथा अनुचित है

बौद्धकालीन धम्म की विवेचना

ऐसा माना जाता है कि उस समय बौद्धकालीन भारत में वैदिक धर्म विद्यमान था। यदि मान भी लिया जाये कि भारत वैदिक धर्म से पीड़ित था और उसने इस पीड़ा को दूर करने के लिए बौद्ध धर्म की दवा खाई। मगर चीन, जापान, कोरिया एवं विश्व के तमाम देशों ने बौद्ध धर्म की दवा क्यों खाई, जबकि उनके पास वैदिक धर्म की पीड़ा नहीं थी। इससे स्पस्ट होता है कि ना तो बौद्धकाल से पूर्व और ना ही बौद्धकाल में वैदिक धर्म विद्यमान था।

भारतीय इतिहास में गौतम बुद्ध को बौद्ध धर्म का संस्थापक माना गया है जबकि अनेकों ऐतिहासिक साक्ष्य व पुरातात्विक अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि गौतम बुद्ध से भी पहले बौद्ध धर्म विद्यमान था। अतः गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के संस्थापक नहीं है, बल्कि वह बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे। संस्थापक व प्रवर्तक में अन्तर होता है संस्थापक किसी धर्म की स्थापना करता है जबकि प्रवर्तक पहले से चले आ रहे किसी धर्म विचार या सिद्धान्त को परिमार्जित करते हुए नये सिरे से लागू करता है गौतम बुद्ध ने धर्म चक्र का प्रवर्तन किया था, वे धर्म चक्र के संस्थापक नहीं थे।[18]

भारत में बुद्धों की परमपरा गौतम बुद्ध से पूर्व विद्यमान है जिसने मानव जीवन के प्रत्येक पहलुओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का सृजन कर साधारण जन के जीवन को निरन्तर विकास की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त किया। उपरोक्त सभी साक्ष्यों साहित्यिक, पुरातात्विक स्रोतों, विदेशी खोजकर्त्ताओं या इतिहासकारों के विवरण के गहन अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि तथागत गौतम से पूर्व सत्ताइस बुद्ध थे। जिनमें अन्तिम सात बुद्धों का प्रमाण अनेक स्रोतों से प्राप्त होता है भारतीय इतिहास में पूर्वबुद्धों के विषय में पर्याप्त ऐतिहासिक साक्ष्य होने के बावजूद भी इन्हे इतिहास का विषय नहीं माना गया है जबकि इसके साथ चलने वाले जैन धर्म के चौबिस तीर्थंकरों के बारें में इतिहास में पढ़ाया जाता है

गौतम बुद्ध का समय वैचारिक क्रान्ति का युग था। यह वैचारिक क्रान्ति की लहर विश्व के कई देशों में लगभग एक ही समय में फैली हुई थी। ईरान में जरथुस्त्र, चीन में कन्फ्यूशियस, यूनान में हेराक्लिटस एवं पाइथागोरस, तो भारत बुद्ध के विचारों से प्रभावित हो रहा था।[19] विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत की वैचारिक क्रान्ति आकस्मिक नहीं थी। गौतम बुद्ध ने अपने से पूर्व बुद्धों की वैचारिक क्रान्ति का वर्धन किया था। जैसे जैन धर्म में महावीर से पूर्व तेईस तीर्थंकर एक के बाद एक हुए और अपने से पूर्ववर्ती समाज की बुराइयों का परिमार्जन करते गये। वैसे ही बौद्धों में भी गौतम बुद्ध से पूर्व, एक के बाद एक सत्ताईस बुद्ध हुए और अपने से पूर्ववर्ती समाज की बुराइयों का परिमार्जन किया।

दीर्घ–निकाय के महापदान–सुत्त में गौतम बुद्ध से छः पूर्व बुद्धों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है जिनके नाम निम्नवत है–विपस्सी बुद्ध, सिखी बुद्ध, वेस्सभू बुद्ध, ककुसन्ध बुद्ध, कोणागमन बुद्ध, कस्सप बुद्ध। विपस्सी बुद्ध के बारे में लिखित है कि उनका जन्म खत्तिय कुल अर्थात् किसान परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम राजा बन्धुमान था तथा माता का नाम बन्धुमति देई था। इनकी राजधानी

बन्धुमती थी। इन्हे पान्डर वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था। इनके खण्ड और तिस्स नामक दो प्रधान उपासक थे। इनके काल में तीन बौद्ध सम्मेलन हुए थें। जिसमें 68 लाख भिक्षुओं ने भाग लिया था।[20]

सिखी बुद्ध भी खत्तिय कुल में जन्में थे। सिखी भगवान के पिता का नाम राजा अरूण था एवम माता का नाम प्रभावती देई था। इनकी राजधानी अरूणवती नामक नगरी था। इन्हे पुण्डरिक वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था। इनके अभिभू और संभव नामक दो प्रधान उपासक थे। सिखी बुद्ध के समय में तीन बौद्ध सम्मेलन हुए थे जिसमें एक लाख भिक्षुओं ने भाग लिया था।

वेस्सभू भगवान खत्तिय कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम सुप्रतित तथा माता का नाम यशोवती देई था। इनकी राजधानी अनोमा थी। साल वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। काकुसंध बुद्ध ब्राहम्ण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम अग्निदत्त माता का नाम विशाखा था। उनके समय में राजा खेम का राज था। उनकी राजधानी खेमवती थी। इन्हे सिरीस वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था। इनके काल में एक बौद्ध संगति हुई थी। कोणागमन (कनकमन) बुद्ध के पिता का नाम यज्ञदत्त व माता का नाम उत्तरा था। यह सोभ नामक राजा के राजधानी में रहते थे जिसकी राजधानी सोभवती थी। गूलर के वृक्ष के नीचे बुद्धत्व की प्राप्ति हुई। भीयोसु और उत्तर नामक दो उपासक थे। इनके समय में एक बौद्ध सम्मेलन हुआ था जिसमें तीस हजार भिक्षुओं ने भाग लिया था।

कस्सप बुद्ध के पिता का नाम ब्रह्मदत्त और माता का नाम धनवती था। इनके काल में किकी नामक राजा राज करते थे जिसकी राजधानी वाराणसी थी। बरगद के वृक्ष के नीचे इन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ था। इनके समय में एक बौद्ध सम्मेलन हुआ था जिसमें बीस हजार भिक्षुओं ने भाग लिया था। तिस्स और भारद्वाज नामक उपासक थे।[21] दीघ–निकाय के आटानाटिय–सुत्त में गौतम बुद्ध समेत सात इन्हीं बुद्धों को नमस्कार किया गया है[22]

जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी जून 1836 भाग 54 में सत्ताईस बुद्धों का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें चार बुद्धों के बुद्धत्व प्राप्ति का कालक्रम लिखा हुआ है काकसंध बुद्ध को 3101 ई0पू0 में ज्ञान प्राप्त हुआ था।[23] कोणागमन बुद्ध के बारें में वर्णित है कि इनको 2099 ई0पू0 बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी।[24] कस्सप बुद्ध को 1014 ई0पू0 बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। तथा इनकी मृत्यु 950 ई0पू0 में हुआ थी।[25] उपर्युक्त कालक्रमों से स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध से लगभग 2600 वर्ष पूर्व बौद्ध धर्म विद्यमान था। यह समय हडप्पा काल से भी पहले बौद्ध धर्म को ले जाता है यदि हम हडप्पा काल में भी देखे तो बौद्ध धर्म के साक्ष्य हमें प्राप्त होते है। हडप्पा की खुदाई से प्राप्त पशुपति की मूर्ति जो योग मुद्रा में है वह किसी पूर्व बुद्ध की प्रतीत होती है वहां से प्राप्त विशाल स्तूप, धर्म चक्र आदि सभी बौद्ध धर्म के प्रतीक है। अतः हडप्पा काल एवं उससे पूर्व भी बौद्ध धर्म एवं बौद्ध परम्परा विद्यमान थी।

रिचर्ड मोरीस (1882) द्वारा सम्पादित सुत्तपिटक के खुद्दक–निकाय ''द बुद्धवम्सा एण्ड द चरिया–पिटक'' पद्यात्मक शैली में 28 परिच्छेदों में रचित ग्रन्थ में दीपंकर से लेकर शाक्यमुनि गौतम बुद्ध तक के 24 पूर्व बुद्धों का वर्णन मिलता है (1) दीपंकर, (2) कन्दानिय, (3) मंगल, (4) सुमन, (5) रेवत, (6) सोवित, (7) अनुमादस्सी, (8) पदम, (9) नारद, (10) पटुमुत्तर, (11) सुमेध, (12) सुजात, (13) पियदस्सी, (14) अट्टदस्सी, (15) धम्मदस्सी, (16) सिद्धात्त, (17) तिस्स, (18) फुस्स, (19) विपस्सी, (20) सिखी, (21) बेस्सम्भु, (22) काकुसंध, (23) कनकमुनी, (24) कश्यप तथा (25) गौतम।[26]

श्रीलंका के दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ महावंश और दीपवंश है जिसमें भारत के इतिहास के लिए महावंश एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है महावंश के प्रथम अध्याय में गौतम से 24 पूर्व बुद्धों के विषय में

जानकारी प्राप्त होती है[27] श्रीलंका के धर्म नियम ''अट्ठविसती परित्त'' में पालि भाषा में साक्यमुनि गौतम सहित अट्ठाईस बुद्धों के नाम उनके विशेष गुणों के वर्णन के साथ दिये गये है

(1) तनहंकर, (2) मेधंकर, (3) सरंकरो, (4) दीपंकर, (5) कन्दानिय, (6) मंगल, (7) सुमन, (8) रेवत, (9) सोवित, (10) अनुमादस्सी, (11) पदम, (12) नारद, (13) पटुमुत्तर, (14) सुमेध, (15) सुजात, (16) पियदस्सी, (17) अट्टदस्सी, (18) धम्मदस्सी, (19) सिद्धात्त, (20) तिस्स, (21) फुस्स, (22) विपस्सी, (23) सिखी, (24) बेस्सम्भु, (25) काकुसंध, (26) कनकमुनी, (27) कश्यप तथा (28) गौतम। है [28]

जातकों में बौद्ध धर्म एवं बुद्ध के जन्म के बारें में विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है जातकों से भी बुद्ध से पूर्व चौबीस बुद्धों की जानकारी प्राप्त होती है प्रत्येक बुद्ध ने किसी ना किसी एक वृक्ष विशेष के नीचे सम्बोधि प्राप्त की। इसका विशद वर्णन जातक अट्ठकथा के दुसरे निदान में मिलता है[29] वी. फॉसवेल द्वारा पहली बार मूल पालि भाषा से सम्पादित ग्रन्थ द जातकाज टूगेदर विद इट्स कमेन्ट्री बीइंग टेल्स ऑफ द एनटेरियर बर्थ ऑफ गौतम बुद्धा में गौतम सहित 27 पूर्व बुद्धों के नाम विवरण प्राप्त होता है[30]

स्मिथ (1914) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया'' में गौतम बुद्ध से पूर्व बुद्धों की बात करते है। जिनमें से तीन पूर्व बुद्ध काकुचंद, कनकमुनि और कश्यप का उल्लेख किया है स्मिथ का कहना है कि देवदत्त जो कि गौतम बुद्ध का विरोधी था उसने बुद्ध की शिक्षाओं को अस्वीकार कर दिया था। उसने ई0 पू0 सातवीं शताब्दी से चले आ रहे एक अलग संप्रदाय की स्थापना किया और उसका मुखिया बना। इन तथ्यों की पुष्टि करते हुए वे फाह्यान के यात्रा का विवरण करते है कि फाह्यान ने 405 ई0 सन् में श्रावस्ती में देवदत्त के अनुयायियों को देखा था। जो कि रोजना तीन पूर्व बुद्धों का ध्यान किया करते थे, जो कि शाक्यमुनि नहीं थे। ठीक इसी तरह ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में बंगाल के कर्णसुवर्ण में देवदत्त सम्प्रदाय के तीन विहारों को देखता है[31]

स्मिथ ने पुरातात्विक साक्ष्यों में निग्लिवा स्तम्भ का वर्णन करते हुए बताते है कि असोक ने कनकमुनि के सम्मान में उनके स्तूप का जीर्णोधार करवाया था। कनकमुनि एक पूर्व बुद्ध थे। इस स्तम्भ से साबित होता है कि यह श्रद्धा भाव बुद्ध से पूर्व बुद्धों के लिए था जो उनके उत्तराधिकारी थे।[32] स्मिथ (1919) ने ही अपने दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थ ''द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया'' में भी गौतम से पूर्व के बुद्धों का उल्लेख है वे कहते है कि गौतम ने अपने से पूर्व के बुद्धों की शिक्षाओं को आगे बढ़ाया।[33] इसी ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि सम्राट असोक ने 254 ई0 पू0 में कनकमुनि के स्तूप को दूसरी बार सवंर्धित किया।[34] स्मिथ (1892) के तीसरे ग्रन्थ असोका द बौद्धिस्ट इम्परर ऑफ इण्डिया में वर्णित है कि बुद्ध के प्रिय राजा असोक ने अपने राज्यकाल के चौदहवें वर्ष में कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को दूसरी बार सवंर्धित करवाया।[35]

पुरातात्विक साक्ष्यों में पूर्व बुद्धों की सूचना प्राप्त होती है उनमें सर्वाधिक विख्यात महान् सम्राट असोक की घोषणाएँ है, जो कि महान् सम्राट ने अक्षय प्रस्तर (पत्थर) धरातलों पर विस्तृत निर्देशों के रूप में उकेरवाई। अधिकतर घोषणाएँ बौद्ध धर्म के पाठों के निर्देश थे । इनमें से एक शिलालेख नेपाल की तराई में निग्लीवा से मिला था। सम्राट अशोक ने यह शिलालेख 240 वर्ष ईसा पूर्व में पवित् बौद्ध स्थान की अपनी तीर्थ यात्रा की स्मृति में उकेरवाया था। घोषणा में कहा गया है–

''पवित्र दयालु और महान् सम्राट ने अपने सिंहासनारुढ़ होने के चौदहवें वर्ष में दूसरी बार कनकमुनि बु) के स्तूप का विस्तार किया और सिंहासनारोहण के (बीसवें वर्ष) में उसने स्वयं यहाँ आकर इस स्थान का सम्मान किया और एक प्रस्तर स्तम्भ का निर्माण कराया।''

1. (A)देवानंपियेन पियदसिन लाजिन चोदसवसाभिसितेन
2. बुधस कोनाकमनस थुबे दुतियं वढिते
3. (B).....साभिसितेन चअ तन आगाच महीयते
4. .....पापिते

यह घोषणा गौतम बुद्ध के जन्म स्थान लुम्बिनी वन से कुछ ही मीलों की दूरी पर अवस्थित है डॉ0 विन्सैट ए0 स्मिथ ने निग्लीवा के स्तम्भ लेख पर व्याख्या करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा है ''यद्यपि लेख संक्षिप्त है और विकृत अवस्था में है तथापि बौद्ध धर्म के इतिहास के लिये यह अति महत्व का है यह पूर्व काल में पूर्व बुद्धों के धार्मिक सम्प्रदाय की विद्यमानता सिद्ध करता है''[36]

भरहुत स्तूप मध्य प्रदेश के सतना जिले में स्थित एक बौद्ध पुरातात्विक स्थल है इस स्तूप को अलेक्जेंडर कनिंघम ने 1873 ई0 में खोजा था। यह स्तूप अपने समय के समाज का दर्पण कहा जाता है बौद्ध धर्म के इतिहास के लिए खजाना के समान है अर्थात् पूरे बौद्ध स्तूप के स्मारक की वेष्ठनी, वेदिका, तोरण द्वारों, पर अनेकानेक प्रकार की जीवन्त मूर्तियां और चित्र अंकित है इस स्तूप के स्मारक के चारों तरफ 24 जातकों के पात्रों का अंकन किया गया है विपस्सी एवं गौतम बुद्ध के जीवन की घटनाओं जैसे उनके माता का स्वप्न में सफेद हाथी देखना उनके जन्म का, गृह त्याग, एवं बोधी वृक्ष के साथ गौतम सहित सात बुद्धों को दर्शाया गया है।[37]

विपस्सी – पाटली वृक्ष
सिखी – पुण्डरीक वृक्ष
वेसम्भू – साल वृक्ष
काकुसंध – सीरीस या बबुल वृक्ष
कनकमन – उदम्बर अथवा गुलर वृक्ष
कस्सप – न्याग्रोधा अथवा नागफनी वृक्ष
गौतम – पीपल वृक्ष

भरहुत के समान ही सांची स्तूप भी पूर्व बुद्धों अथवा बौद्ध कालीन इतिहास के लिए मील का पत्थर है इसमें भी गौतम सहित सात बौद्धों का चित्रांकन किया गया है जिसमें भविष्य के होने वाले मैत्रेय बुद्ध को भी नागपुष्प सहित दर्शाया गया है[38] विश्व प्रसिद्ध महाराष्ट्र की अजन्ता की गुफाएं जो करीब 29 चट्टानों को काट कर बनाया गयी है। इसकी गुफा संख्या 17 से विपस्सी बुद्ध का चित्र प्राप्त होता है[39] इसी तरह एलोरा की गुफा संख्या 12 में दाये से बाये क्रम में गौतम बुद्ध से लेकर विपस्सी तक सात बुद्धों की मूर्तियाँ बनी है।[40]

पूर्व बुद्धों के इतिहास के पुरातात्विक साक्ष्यों की पुष्टि हमें विदेशी यात्रियों के विवरणों से भी प्राप्त होती है जिसमें फाह्यान, ह्वेंनसांग और इत्सिंग प्रमुख है, जिन्होंने अपने यात्रा के दौरान पूर्वबुद्धों के स्तूपों का आंखो देखा हाल अपने यात्रा वृतांतों में वर्णन किया है फाह्यान की पुस्तक रिकॉर्ड ऑफ द बौद्धिस्टिक किंगडम में सम्पूर्ण भारत में बौद्ध विहारों, संघारामों, स्तूपों तथा बुद्धों के जन्मस्थलों का विशद ऑकडे मौजूद है। जिनमें न सिर्फ बुद्ध बल्कि पूर्व बुद्धों का भी ऐतिहासिक वर्णन हमें प्राप्त होता है पूर्व बौद्धों के जन्म स्थान का वर्णन करते हुए फाह्यान कहता है कि सहेत–महेत नगर से पश्चिम पचास ली अर्थात् तडवा गांव (टू–वेई) में कस्सप बुद्ध का जन्म हुआ। श्रावस्ती के दक्षिण पूर्व बारह योजन नभिगा (ना–पेई–केइ) नामक स्थान पर काकुसंध का जन्म हुआ था। इसी शहर के उत्तर में एक योजन से कम जाने पर कनकमुनि बुद्ध का जन्म स्थान है[41]

ह्वेंनसांग की पुस्तक सी–यू–की में भारत से श्रीलंका के बीच प्रसिद्ध बौद्ध स्थलों एवं प्राचीन शहरों के नाम उनकी दिशा एवं दूरी सहित भौगोलिक पैमाने का वर्णन है जिससे हम वर्तमान में उन बौद्ध स्थलों की खोज कर सकते है।[42] देश के बाहर के करोड़ों लोगों के लिए भारत महज बुद्ध की भूमि है एशिया की अधिकांश जनता की दृष्टि में बौद्ध धर्म ही भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, न कि कोई राजतंत्र प्रणाली या किसी भौतिक वस्तु का निर्यात। भारतीय प्रभाव के अंतर्गत विकसित बौद्ध अभिप्रायों के बिना बर्मा, थाईदेश, कोरिया, जापान और चीन की वास्तु एवं ललित कला, और इसलिए संसार की कला, काफी अकिंचन रह जाती। प्राचीन मंगोल और तिब्बती साहित्य में बौद्ध धर्म–ग्रंथों का हिस्सा बहुत अधिक है सन् 1959 तक तिब्बत का संपूर्ण शासन चंद बौद्ध विहारों ओर उनके द्वारा नियुक्त अधिकारियों के हाथों में रहा है। श्रीलंका, बर्मा, थाईदेश और हिंदचीन के लोग, न केवल अपनी–अपनी मान्यता के अनुसार बौद्ध धर्म के अनुयायी है अपितु अपने विभिन्न इतिहासों के उषाकाल में इसी धर्म के आद्य सभ्यकारी प्रभाव को स्वीकार करते है।

ईसा की पांचवी और छठी सदियों में चीन के विशेषतः उसके भीतरी प्रदेश के आर्थिक विकास में बौद्ध विहारों की जो प्रभावशाली और अपरिहार्य भूमिका रही है, उसे अभी हाल ही में समझा गया है सुदूर देशों के अनगिनत यात्री रेगिस्तानों, हिमाच्छादित ऊँचे–ऊँचे पर्वतों और प्रचंड समुद्री तूफानों के कष्टों को झेलकर बुद्ध के जीवन की घटनाओं से संबंधित स्थलों के दर्शन के लिए साहसी यात्राएँ करते रहे और आज भी करते है। अपने समय में बौद्ध धर्म का प्रचार पूर्व की अपेक्षा पश्चिम की ओर और भी अधिक प्रभावकारी रहा। बामियाँ (अफगानिस्तान) में पूरी चट्टानों को छीलकर बनाई बुद्ध की 60 मीटर ऊँची मूर्तियाँ अपने–आप में इस बात की यथेष्ट प्रमाण है। मध्य एशिया में पाए गए अनगिनत स्तूपों के भग्नावशेष भी इसी बात की गवाही देते है। बौद्ध धर्म में न केवल मानीवाद को प्रभावित किया, बल्कि इसके पहले ईसाई धर्म के निर्माण में भी सहयोग दिया होगा।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट है कि तथागत बुद्ध से पूर्व भी सत्ताईस बुद्ध हुए थे। जिन्होंने बौद्ध धर्म को समय के साथ आवश्यकतानुसार परिमार्जित किया था। तथागत बुद्ध जिन्है इतिहास के ग्रन्थों में सिद्धार्थ गौतम के नाम से जाना जाता है वास्तव में वह अट्ठाइसवें बुद्ध थे। जिन्होंने बौद्ध धर्म को परिमार्जित किया अर्थात् तत्कालीन समाज के अनुसार उसमें सुधार व विकसित किया था। बौद्ध धर्म की जड़े हमें हड़प्पा–मोहजोदड़ों से प्राप्त पुरातत्वों में साफ-साफ ादिखाई देती है। जहाँ चीवर धारण किये हुए पशुपति योग मुद्रा में दिखाई दे रहे है जो एक बौद्ध भिक्षु। जहाँ स्तूप व हिरण, हाथी, धर्म चक्क, स्वास्तिक, आदि के साक्ष्य प्राप्त होते है जो बौद्ध धर्म के प्रतीक चिन्ह है। जिन प्रतीक चिन्हों को हम असोक के स्तम्भलेखों, शिलालेखों एवं बौद्ध कालीन समस्त पुरासाक्ष्यों में भी पाते है। इतिहासकारों ने जैन धर्म के चौबीस प्रवर्तकों के होने की बात इतिहास ग्रन्थों में लिखा एवं पढ़ाया परन्तु बौद्ध धर्म के प्रवर्तकों को सिरे से नकार गये जबकि उसके पुरातात्विक व साहित्यिक साक्ष्य सदैव से मौजूद रहे है। अतः अब इतिहास के ग्रन्थों में बौद्ध धर्म के गलत इतिहास को बदलने की आवश्यकता है। बौद्धों की धरती पर बौद्धों का ही इतिहास गलत लिखा व पढ़ाया जाय यह राष्ट्र व राष्ट्रवासियों के साथ छल है

नये इतिहासकारों को नये सिरे से इतिहास का सृजन करना चाहिए ताकि बौद्ध विरासत को नई पीढ़ियों तक तथ्यपरक इतिहास के रूप में हस्तांतरित किया जा सके। जिससे उन्है ज्ञात हो सके कि बौद्धकाल में धर्म एक संवैधानिक व्यवस्था थी। जिसे प्रत्येक व्यक्ति को मानना अनिवार्य था। धर्म के विपरीत आचरण करने वाले व्यक्ति के लिए दण्ड का विधान था। धर्म के सहज स्वरूप ने मनुष्यों को उसे

अंगीकार करने में सरलता प्रदान की। बौद्धिक धर्म बौद्ध धर्म ने आम मानव के अन्दर प्रज्ञा, शील, समाधि का संचार कर विश्व के समस्त मानवों का कल्याण किया जिससे भारत का विश्व में नाम रोशन हुआ। समस्त विश्व ने बौद्धों के ज्ञान का अनुसरण कर अपने राष्ट्र का विकास किया व मानव को मानवीय मूल्यों से सुसज्जित कर जीवन जीने का अमूल्य खजाना दिया।

इतिहास विभाग
बी० एच० यू०, वाराणसी
[1]सुधा सोनकर
sonkersudhajuloo@gmail.com

सन्दर्भः

1. *कोशाम्बी, डी. डी. 2014. प्राचीन भारत की संस्कृति एवं सभ्यता. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ.–112*
2. *वही, पृ.– 277*
3. *मैकफेल, जे. एम. 1928. द हेरिटेज ऑफ इण्डिया असोका. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस.लन्दन. पृ.– 70*
4. *हूल्स, ई. 1925. कार्पस इंस्क्रिप्शंस इण्डिकेरम. कन्धार शिलालेख. क्लेयरडन प्रेस ऑक्सफोर्ड.*
5. *सिंह, आर. पी. 2018. खोये हुए बुद्ध की खोज. कौटिल्य बुक्स. नई दिल्ली .पृ.– 16*
6. *अम्बेडकर, बी. आर. 2011. भगवान बुद्ध और उनका धम्म. बुद्धभूमि प्रकाशन. नागपुर. पृ.– 202*
7. *हूल्स, 1925. पृ. 155*
8. *सिंह, यू. 2019. प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास. पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा.लि. दिल्ली. पृ.– 348*
9. *सिंह, पृ. 64*
10. *शर्मा, आर. एस. 2009. प्रारम्भिक भारत का परिचय, ओरियंट ब्लकस्वॉन प्राइवेट*
11. *लिमिटेड. नई दिल्ली. पृ. 175–176*
12. *थापर, आर. 1975. प्राचीन भारत का इतिहास. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ. 77*
13. *कोसम्बी, 1990. पृ. 198 शास्त्री, के. ए. एन. 2000. नन्द–मौर्य युगीन भारत. मोतीलाल बनारसी दास. वाराणसी. 2000. पृ. 267–268*
14. *मुखर्जी, आर. के. 1995. अशोक. राजकमल प्रकाशन. पृ. 10*
15. *कौसल्यायन, ए. 1987. पालि–हिन्दी कोश. सिद्धार्थ बुक दिल्ली. पृ. 155*
16. *हूल्स, 1925. पृ.– 166*
17. *सिंह, आर. पी. 2017. इतिहास का मुआयना. सम्यक प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ.–30*
18. *वही, पृ. – 127–130*
19. *सांकृत्यायन, आर. और कश्यप, जे. 1935. सुत्त–पिटक दीघ–निकाय. गौतम बुक सेन्टर. दिल्ली पृ0–95*
20. *वही, पृ.–96–97*
21. *वही, पृ.–277*
22. *फोर्ब्स, जे. 1906. द जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी न0 54 जून 1836. पृ0–322*
23. *वही, पृ.–325*
24. *वही, पृ0–327–328*
25. *मोरिस, आर. 1882, द बुद्धवम्सा एण्ड द चरियापिटक. द पालि टेक्स्ट सोसायटी. पृ.7*

26. *वाइजसिन्हा, एल. सी. और मुदालियर. 1889. द महावंसा. भाग 2. जी.जे. ए. स्किन गर्वमेन्ट प्रिन्टर. कोलम्बो सिलोन. पृ.– 3*
27. *विश्वास, एस. के. 2012. बौद्ध धर्मः मोहनजोदड़ो हड़प्पा नगरों का धर्म. सिद्धार्थ बुक दिल्ली. पृ. –34–35*
28. *जातक अट्ठकथा. श्लोक संख्या 2–26, पृ0– 22–27*
29. *फॉसवेल, वी. 1877. जातकाज टूगेदर विद इट्स कमेन्ट्री बीइंग टेल्स ऑफ द एनटेरियर बर्थ ऑफ गौतम बुद्धा. वैलूम–1. ट्रबनर एण्ड कम्पनी. लण्डन. पृ.– 44*
30. *स्मिथ, वी. ए. 1914. द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया. एट द क्लिरेण्डन प्रेस ऑक्सफोर्ड. पृ.–32*
31. *वही, पृ.–169*
32. *स्मिथ, वी. ए. 1919. द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया. एट द क्लिरेण्डन प्रेस ऑक्सफोर्ड पृ. –50*
33. *वही, पृ0–120*
34. *स्मिथ, 1892 असोका द बौद्धिस्ट इम्परर ऑफ इण्ड़िया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस.पृ0– 224*
35. *वही ,,*
36. *कनिंघम, ए. 1879. द स्तूपा ऑफ भरहुत. ठैकर एण्ड कम्पनी. न्यू गेट स्ट्रीट. लण्दन.पृ.–108*
37. *मॉर्शल, जे. 1918. द मनूमेन्ट्स ऑफ सांची भाग 1. सुप्रिनटेंडेन्ट गर्वमेन्ट प्रिन्टिंग.कलकत्ता. पृ. 200*
38. *सिंह, 2018. पृ.–65*
39. *वही, पृ .–76*
40. *लेगी, जे. 2003. ए रिकॉर्ड ऑफ अ बौद्धिस्टिक किंगडमस् बाई द चायनीज मांक फाह्यान ए.डी. 399–414. एशियन एजुकेशनल सर्विस. न्यू दिल्ली. पृ0–63–64*
41. *बील, एस. 1906. सी–यू–की बौद्धिस्ट रिकॉर्ड ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड भाग 2. केगनपॉल ट्रेन्च ट्रबनर एण्ड कम्पनी. लण्डन. भाग 2. पृ.– 152*

छत्तीसगढ़ के जनजाति समाज में वन आधाारित संसाधनों पर पारिस्थितिकीय एवं आजीविका प्रबंधनः कमार जनजाति के विशेष संदर्भ में

संदीप कुमार साहू[1], नीलकंठ पाणिग्राही[2]

सारांश

वनों से मानव का सदियों पुराना संबंध रहा है, जो मानव की सामाजिक–सांस्कृतिक निर्भरता को दर्शाता है जिसके परिणामस्वरूप उनके सामाजिक–सांस्कृतिक, अर्थव्यवस्था, जीवन शैली और विश्वास प्रणाली वन संसाधनों से प्रभावित होती है यह अध्ययन दर्शाता है कि कमार परिवार सदियों से ही लघु वनोपजों का प्रसंस्करण करते आ रहे है तथा वर्तमान में इनके प्रसंस्करण पद्धति में बहुत कम आधुनिकीकरण दिखाई पड़ती है कमार जनजाति के द्वारा उपयोग की जाने वाली अधिकांश प्रसंस्करण की तकनीकी विधियाँ एवं मूल्य संवर्धन का रख–रखाव पारंपरिक है। इस अध्ययन को छत्तीसगढ़ के गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड के बोईरगांव के कमार जनजाति पर किया गया है इस अध्ययन का उद्देश्य कमार परिवारों द्वारा लघु वनोपजों की खरीद, खपत, बिक्री एवं मुल्य संवर्धन का पता लगाना तथा साथ ही राज्य द्वारा अपनाई गई विभिन्न लघु वनोपज नीतियों की समीक्षा अध्ययन करना एवं वैश्वीकरण प्रभाव को दर्शाना है

बीज शब्द : लघु वनोपज, खरीद, मूल्य संवर्धन, तकनीकी, वैश्वीकरण

प्रस्तावना

भारत के जनजाति समुदायों में वनों का विशेष महत्व है। जनजाति समुदाय विभिन्न पारिस्थितिकीय एवं भौगोलिक क्षेत्र में निवासरत् होने के साथ–साथ पर्यावरण से गहरे संबंध रखते है, जो उनके आजीविका और सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग हैं। जनजातियों का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर्यावरण के संसाधनों पर निर्भर है इन संसाधनों का उपयोग वे अपने प्रथाओं, त्योहारों और टैबू आदि में करते आ रहे है, जो उनके सामूहिक भावना और एकता को संरक्षित रखते है (Ahuja, 2020)। कालांतर से देखा जा रहा है कि जनजातियों का वनों से गहरा संबंध रहता है वन मनुष्यों से पहले उत्पन्न होता है और उनका विघटन बाद में होता है जो मानव समाज के प्रति सजग हैं, जिसके परिणामस्वरूप मानव एवं समाज का विकास निरंतर चलता रहता है इसी संदर्भ में, वन और भूमि आधारित संसाधन जनजातियों के जीवन और आजीविका में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जिसके कारण जनजातियाँ गरीबी, अलौकिक विश्वास और पिछड़ापन के कारण जनजाति ऋणदाताओं, व्यापारियों और शोषकों के आसान शिकार बन गए (Bailey, 1960)। जनजाति आवास को गैर– आदिवासियों और राज्य के प्रायोजित विकास कार्यक्रमों के लिए खोलने से न केवल स्थानीय जनजातियाँ और अन्य वन निवासियों के लिए बड़े पैमाने पर संसाधन

विखंडन हुआ बल्कि उन्है और भी अधिक किनारे पर धकेल दिया गया,[1] भूमि और वन से अलग करने का प्रमुख कारण उनके ऋण कर्ज को न चुका पाने की असमर्थता के रूप में देखा जाता है उनमें से कई लोग वन में निवास करने के बजाय वन पर जीने और फिर वन से दूर जीने में बदल गये है (Farnandes, 1997)। जनजातियों की प्रमुख समस्याएँ पट्टा भूमि, अशिक्षा, प्रवासीकरण, खनिज व बांध निर्माण हेतु जंगल कटाई सामने आयी है जो उनके प्राचीन प्रथाओं एवं विकास को खतरे की ओर ले जा रहा है। उनकी आजीविका जीवन शैली का परिवर्तन वन आधारित संसाधनों से गैर वन आधारित संसाधनों की ओर बढ़ा है, जिससे विकास कम और विनाश अधिक हुआ हैं (Babu, 1997)।

वनों अधिकार से संबंधित अधिनियम

स्वतंत्रता के पूर्व ब्रिटिश काल के दौरान वन अधिनियम (1865) लागू हुआ था, जो सरकार को किसी भी पेड़ों से ढ़के क्षेत्र को वन क्षेत्र घोषित करने की शक्ति प्रदान करता था, जिसके परिणामस्वरूप जनजातियों के अधिकारों को 'राष्ट्रीय हित' के नाम से जाना गया था। भारतीय वन अधिनियम (1878) के द्वारा वन संसाधनों को आरक्षित वन, संरक्षित वन और वन्य ग्राम का नाम दिया गया, इस अधिनियम ने न केवल जनजातियों, बल्कि वन क्षेत्रों में निवासरत् लोगों को भी मुक्त प्रवेश से प्रतिबंधित किया था। भारतीय वन नीति (1894) ने सामुदायिक अधिकारों के अंतर्गत वन को जनजातियों को उपभोग की शक्ति प्रदान किया था। भारतीय वन अधिनियम (1935) में वनों को राज्य के अधीन शक्ति प्रदान किया गया, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश उद्योग, सैन्य और वाणिज्यिक आवश्यकताओं हेतु निर्माण कार्य बड़े पैमाने पर हुए (Guha, 1990)।

स्वतंत्रता के पाश्चात राष्ट्रीय वन नीति (1952) ने वन नीति और जनजातियों के पारंपरिक अधिकारों को पुनः परिभाषित करते हुए वन भूमि में खेती करने की अनुमति प्रदान किया। 1980 में हुए वन विधेयक ने पुनः वन अधिकारों को अपने नियंत्रण में ले लिया। तत्पश्चात् राय बर्मन समिति (1982) ने लगभग 300 गैर वनोत्पाद सामग्रियों के वाणिज्यिक प्रबंधन को प्रदर्शित करते हुए जनजाति एवं वन संसाधनों के बीच के संबंधों का विवरण प्रस्तुत किया। इसी को मद्देनजर रखते हुए राष्ट्रीय वन नीति (1988) ने वन संसाधनों के संरक्षण के माध्यम से पर्यावारीणिक स्थिरता पर जोर दिया (Rao, 2007)। भारतीय संविधान के 73वें संविधान संशोधन(1993) और पंचायती राज अधिनियम (1994) ने वन अधिकारों को पुनर्जीवित किया है (Laxmikant, 2017)। वन अधिकार अधिनियम (2006) ने वनों में रहने वाले जनजाति समुदायों के साथ किए गए पिछले गलतियों और अन्याय को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जनजातियों और गैर वनवासियों की वन भूमि में आजीविका के साधन और खाद्य सुरक्षा की गारंटी प्रदान किया गया।

सैद्धांतिक रूपरेखा

पिछले कुछ दशकों से सामाजिक विज्ञान, पर्यावरण, अर्थशास्त्र, पारिस्थितिकीय और मानवशास्त्र जैसे विभिन्न क्षेत्रों की महत्ता बढ़ती जा रही है। जो समय के साथ मानव के जीवन पर होने वाले प्राकृतिक संबंधों के प्रभाव के बारे में जानकारी देता है (Woŝter, 1988)। पारिस्थितिकीय प्रबंधन पर्यावरणीय प्रणाली में भाग लेने वाले ऐसे जीवों के समूह को कहते है, जो एक विशिष्ट तरीके के संबंधों को सूचित करता है। पारिस्थितिकीय और मानवशास्त्र के मध्य संबंध के बारे में अल्फ्रेड, क्रोबर और जूलियन स्टीवर्ड जैसे विचारकों ने 1960 के दशक में दर्शाया (Rappaport, 1971)। E. B. Tylor (1881) ने आत्मावाद सिद्धांत में 'अलौकिक शक्तियों पर विश्वास, जिसका आधार पूजा व भक्ति है' के माध्यम से जनजातियों के प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े असीम आस्था, प्रतीक चिन्ह् व मनाही को उजागर किया। मानवशास्त्रियों के

लिए सांस्कृतिक प्रथाओं और विश्वासों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है जो मानव समुदाय को पर्यावरण के साथ अनुकूल बनाने तथा स्थानीय और क्षेत्रीय पारिथितिकीय अवस्थाओं को बनाए रखने में सहायता प्रदान करता है। Harris and Berlin Conklin (1999) ने कहा कि 'सांस्कृतिक सामग्रीवाद और एथ्नो–विज्ञान' पारंपरिक पर्यावरणीय धारणाओं का समूह है, जो प्राकृतिक संसाधनों को श्रेणीबद्ध करने, संसाधनों के उपयोग को नियंत्रित करने और पर्यावरण को संरक्षित रखने के प्राचीन तरीके है

साहित्य का पुनरावलोकन

साहित्य की पुनरावलोकन को आधारित मुद्दों के आधार पर महत्त्वपूर्ण श्रेणियों में बांटा गया है, जो इस प्रकार हैः

जनजाति विकास में पारिस्थितिकीय भूमिकाः इस अध्ययन में आजीविका की अवधारणा को पर्यावरणीय स्थायित्व के आयाम के रूप में देखा जाता है, जो पारिस्थिकीय रूप से स्थायी या पर्यावरणीय विकास को दर्शाता है स्थायी आजीविका को मानव, प्रकृति और आर्थिक प्रणाली में स्थायी विकास का समर्थन करते हुए परिभाषित किया गया है जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए वन संसाधनों और अवसरों का संरक्षण करना, भोजन, आवास और जीवन गुणवत्ता को दर्शाता है (Agrawal & Yadama, 1997)। पारंपरिक ज्ञान प्रणाली और पारिस्थितिकीय प्रबंधन को प्राकृतिक संसाधनो का लाभकारी उपयोगिता और आजीविका प्रबंधन ने जनजाति की सांस्कृतिक प्रथाओं और प्राकृतिक संसाधनों के विभिन्न पहलु के एकीकरण को दर्शाया, जो प्राकृतिक संसाधन के बेहतर संरक्षण की दिशा में एक क्रांतिकारी उपकरण है (Rai, 2007)।

लघु वनोपजों के एकत्रीकरण और खरीदीकरणः लघु वनोपज जैसे छाल, लाख, औषधीय पौधे, तेलीय बीज, शहद बड़े पैमाने पर जोड़ों में दर्द निवारक औषधि के रूप में व्यापारियों के द्वारा विनिमय किया जाता है जिसका बाजारीकरण राष्ट्रीय और वाणिज्यिक स्तर पर होता है (Mallik & Panigrahi, 1998)। वनों से प्राप्त होने वाले संसाधन जैसे फल, अखरोट, सब्जियाँ, औषधीय पौधे, रेजिन, छाल और ताड़ आदि का उपयोग तीन प्रमुख कार्य हेतु किया जाता है प्रथमःघरेलू और उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने, द्वितीयःसंकट के समय में सुरक्षा हेतु तृतीयःनकद आय को प्रदान करता है (Chawii, 2007)।

लघु वनोपजों में जनजातियों की आजीविका एवं मूल्य संर्वधनः आजीविका को एक साधन, योग्यताएँ, परिसंपत्तियाँ और गतिविधियाँ के रूप में देखी जाता है। जब आजीविका में स्थायित्व का भाव जुड़ जाता है तो धीरे–धीरे समस्याएं उत्पन्न होना प्रारंभ होती है जिसके कारण योग्यता और परिसंपत्ति के तालमेल नहीं बैठा पाती है, जो भविष्य के आधार स्तंभ को ध्वस्त कर सकती हैं (Odero, 2004)। जनजाति समुदाय द्वारा पर्यावरणीय प्रणाली को संतुलित करने के लिए मैंग्रोव वन से प्राप्त होने वाले संसाधनों को दर्शाया है यह शोध काओं गाँव के जनजाति समुदाय द्वारा वन संसाधनों की प्राप्ति एवं उपयोग से उनके आजीविका में होने वाले प्रभावों को दर्शाया था (Singgalen, 2020)। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वन संसाधनों का ह्रास कर कृषि को बढ़ावा दिया गया जिससे वनों की हानि के साथ–साथ वन पर निर्भरता में कमी आई तथा गरीबी को दूर करने हेतु विकासात्मक पहल शुरू किया गया जो कुछ हद तक विकास के साथ, वन विनाश को दर्शाया गया था (Rhemtullaa, 2020)।

लघु वनोपजों का बाजारीकरण (विपण्न):जनजाति विकास के लिए वन उत्पादों के बाजारीकरण में कई चुनौतियाँ आती है जिससे बाजारीकरण प्रभावित होता है साथ ही उसे विश्लेषित करने में भी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है बाजारीकरण के माध्यम से ही उत्पादन, संग्रहण, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, विपण्न और ब्रिकी आदि कारको की पहचान होती है (Marshall & Schreckenberg,

2003)। भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वन संसाधनों से गहरा संबंध है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था, संस्कृति और परंपरा का अभिन्न अंग है बदलते प्राकृतिक परिदृश्यों ने जनजाति व स्थानीय लोगों के पारिस्थितिकीय आजीविका प्रणाली ने सामाजिक–सांस्कृतिक और बाजारीकृत कारकों को एक नये आयाम तक पहुंचा दिया है (Shennan & Simmons, 2014)।

लघु वनोपजों पर सरकारी नीतियाँःवन नीतियाँ जनजातियों के विकास को पुनर्जीवित और वाणिज्यिक उत्पादन को प्रोत्साहित करती है, जो आर्थिक लाभ, सक्रियता और उत्पादन सहभागिता के रूप में उनके जीवन को बेहतर बनाती है (Pati, 1989)। वन नीतियाँ ही जनजाति समुदाय के सामाजिक–आर्थिक, आजीविका एवं विकास के लिए अलग–अलग मूल्ययुक्त उत्पादों का मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए वन्य खाद्य पदाथों के पारंपरिक संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए सहभागी अनुसंधान पर जोर देता है (Negi & Rawat, 2011)। इसी संदर्भ में सतत वन प्रबंधन के धारणा श्रीलंका में वन आधारित पर्यटन स्थलों को पहचान दिलाया था तथा अच्छे शासन के अनुभवों का विश्लेषण कर स्थानीय आजीविका और वन संरक्षण के परिणामों को भी दर्शाते हुए स्थानीय आजीविकाओं का समृध्दिकरण प्राकृतिक, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और मानव पूंजी विकास के आधार पर मूल्यांकन करता प्रस्तुत है जो प्राकृतिक वन संसाधन एवं जैव विविधता संरक्षण के दिशा में एक नया आयाम प्रदान करता है (Zoysa, 2022)।

लघु वनोपजों पर ग्राम सभा की भूमिकाः प्रारंभ में स्थानीय प्रशासन के अधिकारी जनजाति हितों पर जरा भी ध्यान नहीं देते थे, इसी तत्वाधान को दूर करने के लिए पेसा अधिनियम लाया गया जो जनजातियों को भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास आदि के हितों में नयी दिशा प्रदान करता है (Das, 2005)।

शोध के उद्देश्य

छत्तीसगढ़ की जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक रूपरेखा एवं वन संसाधनों के साथ उनके संबंधों का अध्ययन करना।

शोधकर्ताओं के द्वारा किए गए लधु वनोपजों के अध्ययनों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।

लघु वनोपजों पर कमार जनजाति की खरीद, निर्भरता एवं मूल्य संवर्धन का विश्लेषण करना एवं उनके सुधार के लिए सुझाव देना।

शोध प्रविधियाँ

शोध विषय का चयन क्योंःभारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत 75 जनजातियों को विशेष पिछड़ी अनुसूचित जनजाति समूह का दर्जा दिया गया है (Laxmikant, 2017)। जो कि वर्तमान समय में भी आदिम जीवन पद्धति, परंपरागत कृषि पद्धति एवं निम्न साक्षरता दर को अपनाए हुए है इन्हीं विशेष पिछड़ी अनुसूचित जनजाति समूहों में से एक जनजाति कमार है कमार जनजाति आधुनिकता से दूर वन संसाधनों तक ही सीमित है, उनकी इन्हीं निम्न जीवन स्तर के कारणों का पता लगाना व सरकारी प्रयासों के पहुंच सुनिश्चित करना। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर शोध विषय का चयन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

छत्तीसगढ़ (राज्य):छत्तीसगढ़ 1,35,191 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला हुआ है, यह भारत का 9वां सबसे बड़ा राज्य है 2011 के जनगणना के अनुसार, यहां की कुल जनसंख्या 2.55 करोड़ है भारतीय वन रिपोर्ट के अनुसार, छत्तीसगढ़ के वन भूमि का क्षेत्रफल 41.34 प्रतिशत है यहां प्रचुर मात्रा में लकड़ी, शहद, तेंदू

पत्ता जैसे वन संसाधनों की बहुलता है छत्तीसगढ़ में औसतन साक्षरता दर 84.05 प्रतिशत है, जिसमें पुरूष साक्षरता 90.58 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 73.39 प्रतिशत है छत्तीसगढ़ में मुख्यतः चावल की फसल लगभग 77 प्रतिशत भूमि पर उगाया जाता है राज्य का लिंगानुपात भारत के सबसे संतुलित राज्यों के लिंगानुपात में से एक है, यहां प्रति 1,000 पुरूषों पर 991 महिलाएं है एवं बाल लिंगानुपात प्रति 1,000 पुरूषों पर 964 महिलाएं है

गरियाबंद (जिला):1जनवरी 2012 को गरियाबंद की स्थापना हुई थी, जो 5,822.86 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैला हुआ है। इसकी कुल जनसंख्या 6,86,275 है, जिसमें से 3,38,544 पुरूष व 3,47,731 महिलाएँ है। गरियाबंद में साक्षरता दर 68.26 प्रतिशत व लिंगानुपात 1025 है यहां 5 विकासखण्ड, 336 ग्राम पंचायत, 710 गाँव है। गरियाबंद के अंतर्गत 2,935.80 वर्ग किमी. में वन व 1,42,590 हेक्टेयर में कृषि भूमि का विस्तार है (CG Economic Survey, 2024)।

मैनपुर (विकासखण्ड):मैनपुर विकासखण्ड गरियाबंद जिला के अंतर्गत आता है, जिसका कुल क्षेत्रफल 1,929.7 वर्ग किमी. है। मैनपुर की कुल जनसंख्या 2,70,686 है, जिसमें से 1,34,107 पुरूष व 1,36,579 महिलाएँ है मैनपुर की साक्षरता दर 72.62 प्रतिशत है, जिसमें से पुरूष 87.64 प्रतिशत व महिला 58.67 प्रतिशत साक्षर है तथा लिंगानुपात 1092 है। मैनपुर के अंतर्गत 74 ग्राम पंचायत व 179 गाँव आते है (CG Govt, 2024)।

बोईरगांव (अध्ययन गांव):छत्तीसगढ़ के गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड में स्थित बोईरगांव में वर्तमान में 175 परिवार रहते है। 2011 की जनगणना के अनुसार, बोईरगांव में लगभग 974 लोग रहते है, जिनमें 530 पुरूष और 444 महिलाएं है बोईरगांव की औसतन साक्षरता दर 77.19 प्रतिशत है, जिसमें पुरूष साक्षरता दर 87.94 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता दर 64.62 प्रतिशत है बोईरगावं का औसतन लिंगानुपात 838 है, जो छत्तीसगढ़ के लिंगानुपात 991 से कम है एवं बोईरगांव में बाल लिंगाानुपात 730 है, जो छत्तीसगढ़ के लिंगानुपात 969 से कम है बोईरगांव अनुसूचित जनजाति 87.15 प्रतिशत है

कमार जनजातिःप्राचीन समय से ही कमार जनजाति छत्तीसगढ़ के वन एवं पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते आ रहे है। कमार जनजाति मुख्य रूप से छत्तीसगढ के रायपुर संभाग के अंतर्गत गरियाबंद, धमतरी व महासमुंद जिले में निवासरत् है। छत्तीसगढ़ में कमार जनजाति की जनसंख्या 26,530 है, जिसमें से पुरूष 13,070 व महिलाएँ 13,460 है छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक कमार जनजाति की जनसंख्या गरियाबंद जिले के अंतर्गत कुल आबादी 14,285 है (CG Govt, 2024)। कमार आर्य भाषा परिवार से संबंधित रखते है। (S.C. Dube (1951) ने अपनी मोनोग्राफ 'द कमार' के माध्यम से कमार जनजाति के निषेधात्मक प्रथा जैसे बाल, घोड़ा आदि को वर्णित किये है कमार जनजाति अस्थायी कृषि पद्धति भी करती है, जिसे 'दाहिया' कहा जाता है। कमार जनजाति के आजीविका का एक अन्य स्रोत पशुपालन और भोजन संग्रहण है उनके खाद्य पदार्थो में कोदो, कुटकी, रागी जैसे मोटे अनाज एवं पेय पदार्थ के रूप में शामिल है। कमार द्वारा वनों से प्राप्त खाद्य पदार्थ के रूप में चरौटा भाजी, गुलर के पत्ते, बिरार कंद, मशरूम, आम, जामुन, तेंदू जैसे कई कंद मूल फल भी खाए जाते है। अध्ययन का क्षेत्र गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखण्ड के बोईरगांव में है, जहां सिर्फ कमार जनजाति के 120 परिवार रहते है, जिसमें 139 पुरूष और 109 महिलाएं है।

नमूना का चयन

अध्ययन हेतु बहु–चरणीय उद्देशित नमूना का अनुपालन किया गया है शोध के लिए वन संरक्षण क्षेत्र व कमार जनजाति बहुलता क्षेत्र आदि को ध्यान में रखते हुए छत्तीसगढ़ के गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखंड के अंतर्गत बोईरगांव में निवासरत् कमार जनजाति को चयनित किया गया है, जिसमें 98 कमार परिवारो का सर्वे कर तथ्य का संग्रह किया गया है अध्ययन में तथ्य संग्रहण के लिए प्राथमिक तथ्य संग्रहण हेतु अवलोकन, प्रश्नावली व साक्षात्कार अनुसूची, संवैधानिक व कानूनी अधिकारों को जानने के लिए पुरूषों के बीच वैयक्तिक अध्ययन, समूह परिचर्चा आदि को शामिल किय गया है द्वितीयक स्रोत के रूप में छत्तीसगढ़ आर्थिक समीक्षा, राजस्व, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति, विकास विभाग तथा राज्य के वन विभाग जैसे सरकारी विभागों से भी आंकड़ा का संग्रहण किया गया है मात्रात्मक एवं गुणात्मक तथ्यों को प्रसंस्कृत एवं विश्लेषित कर व्याख्या प्रस्तुत किया गया है

परिणाम एवं परिचर्चा

कमार जनजाति के सामाजिक सांस्कृतिक संरचना का विवरण

अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत कमार जनजाति के सामाजिक सांस्कृतिक प्रोफाइल की सूची को दर्शाया गया है इस अध्ययन में बोईरगांव के 98 कमार परिवारों से तथ्य का संग्रह को दर्शाया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 100 प्रतिशत हिन्दू है, जिसमें से 58.16 प्रतिशत पुरूष एवं 41.43 प्रतिशत महिलाएं है कमार परिवार में अविवाहित, विवाहित, तलाकशुदा, विधवा, विधुर की स्थिति क्रमशः 21.42 प्रतिशत, 70.40 प्रतिशत, 1.02 प्रतिशत, 3.06 प्रतिशत है कमार परिवार में शिक्षित पुरूष एवं महिला क्रमशः 37.75 प्रतिशत, 19.38 प्रतिशत तथा अशिक्षित पुरूष एवं महिला क्रमशः 24.48 प्रतिशत, 18.36 प्रतिशत है व्यावसाय के कृषि, पशुपालन लघु वनोपज संग्रह, बांस संग्रह क्रमशः 100 प्रतिशत, 31.63 प्रतिशत, 94.48 प्रतिशत, 68. 36 प्रतिशत है

कमार परिवार के द्वारा लघु वनोपजों के संग्रह का विवरण

कमार जनजाति के द्वारा विभिन्न प्रकार के लघु वनोपज का संग्रह किया जाता है, जो इस प्रकार हैः

बीज के प्रकारःहर्रा बीज*(टर्मिनलिया चेबुला),* बहेड़ा बीज*(टर्मिनलिया बेलिरिका),* इमली बीज(टैमारिंडस इंडिका), आंवला बीज*(फिलैंथस एम्ब्लिका),* जामुन बीज(साइजियम क्यूमिनी), करंज बीज(पोंगामिया पिन्नाटा), साल बीज(शोरिया रोबस्टा), चिरौंजी बीज*(बुचानिया लानजान),* कुसुम बीज*(श्लीचेरा ओलियोसा),* नीम बीज(एजाडिरेक्टा इंडिका), चरौंटा बीज*(कैसिया टोरा),* बेर फल*(एगल मार्मेलोस),* लाख*(केरिया लाका),* कुल्लू गोंद(स्टरकुलिया यूरेंस) व भेलवा(सेमेकार्पस एनाकार्डियम)।

फूल के प्रकारःमहुआ फूल*(मधुका लोंगिफोलिया),* धवाई फूल*(वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा),* फूलझड़ी फूल*(पेंटापेटेस फोनिसिया)* व पलााश फूल*(ब्यूटिया मोनोस्पर्मा)।*

जड़ के प्रकारःगिलोय*(टीनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया),* तुलसी जड*(ऑसीमम सैक्टम),* सफेद मुसली*(क्लोरोफाइटम बेरिविलियनम),* तिखुर*(कुरकुमा एंगुस्टिफोलिया)* व अश्वगंधा*(विथानिया सोम्निफेरा)*।

द्रव्य के प्रकारःशहद*(एपिस मेलिफेरा),* सल्फी*(केरियोटा यूरेन्स)* व ताड़ी*(बोरासस फलैबेलिफर)*।

पत्ती के प्रकारःतेंदू पत्ता*(डायोस्पायरोस मेलानोक्सिलीन)*।

जनजातियों के नाम एवं उनके द्वारा लघु वनोपज की एकत्रीकरण की विवरण *(क्षेत्रावार विवरण)*

छत्तीसगढ़ में जनजातियाँ उत्तरीय, मध्य एवं दक्षिणी क्षेत्र में लगभग 42 जनजातियाँ निवासरत् है जिसकी जनसंख्या लगभग 78 लाख है उत्तरीय छत्तीसगढ़ के अंतर्गत निवासरत् जनजातियों में कंवर, उरांव, पहाड़ी कोरवा, खड़िया, नगेशिया, खैरवार, भारिया, मांझी, मंझवार, मुण्डा, पण्डों, बियार, कोल, कोरकू आते है जिनके द्वारा तेंदू पत्ता, महुआ फूल, आंवला, बहेड़ा, शहद, वन जीरा, करंज बीज, सवई घास, बेलगुदा, माहुल पत्ता, रीठा फल, रैली कोसा, झाड़ू छिंद आदि लघु वनोपज एकत्रित किए जाते है। मध्य छत्तीसगढ़ के अंतर्गत निवासरत् जनजातियों में अगरिया, बिंझवार, धनवार, भैना, भुंजिया, कण्डरा, कोंध, कोल, सवरा, सौंता, शिकारी, पारधी, पाव, परधान आते है जिनके द्वारा तेंदू पत्ता, महुआ फूल, आंवला, बहेड़ा, इमली, बेर, जामुन, कुल्लू गोंद, शहद, साल बीज, हर्रा बीज, गिलोय, सफेद मुसली, चरौंटा बीज आदि लघु वनोपज एकत्रित किए जाते है।दक्षिणी छत्तीसगढ़ के अंतर्गत निवासरत् जनजातियों में गोंड़, मुड़िया, दण्डामी माड़िया, हल्बा, भतरा, दोरला, परजा, गदबा, कोया, अबुजमाड़िया आते है जिनके द्वारा तेंदू पत्ता, महुआ फूल, आंवला, बहेड़ा, इमली, बेर, जामुन, कुल्लू गोंद, शहद, साल बीज, हर्रा बीज, गिलोय, सफेद मुसली, चरौंटा बीज, वन तुलसी, शतावर जड़, मालकांगनी फल, नीम बीज, भेलवा, तिखुर कंद, अश्वगंधा, पलाश फूल, कुसुम बीज आदि लघु वनोपज एकत्रित किए जाते है।

कमार जनजाति के द्वारा लघु वनोपजों की औसत सग्रह, खपत, बिक्री, आय, रोजगार एवं निपटान की विवरण

लघु वनोपज का संग्रहः कमार जनजाति के द्वारा 1110.22 किग्रा लघु वनोपज का संग्रह किया गया। जिसमें सर्वाधिक 325.36 किग्रा (29.31 प्रतिशत) साल बीज एकत्र किया गया, इसके बाद महुआ फूल 320.75 किग्रा (28.89 प्रतिशत), इमली 145.15 किग्रा (13.07 प्रतिशत), महुआ बीज 94.55 किग्रा (8.52 प्रतिशत), तेदू पत्ता 77.96 किग्रा (7.02 प्रतिशत), हर्रा 51.89 किग्रा (4.67) और बहेड़ा 39.73 किग्रा (3.58 प्रतिशत) है संग्रह में सबसे कम योगदान शहद का 8.38 (0.75) रहा, इसके बाद चिरौंजी बीज 10.86 किग्रा रहा।

लघु वनोपज की खपतःकमार जनजाति के द्वारा 55.79 किग्रा लघु वनोपज का खपत किया गया है जिसमें सर्वाधिक महुआ फूल की औसत खपत 31.19 किग्रा (9.72 प्रतिशत), इसके बाद इमली की औसत खपत 10.33 किग्रा (7.12 प्रतिशत), बेर बीज का औसत खपत 7.14 किग्रा (20.05 प्रतिशत), जबकि अन्य लघु वनोपज की खपत बहुत कम रही।

लघु वनोपजों की बिक्री व मूल्यःकुल संग्रहित लघुवनोपजों की औसतन बिक्री 94.98 प्रतिशत रही। लघु वनोपजों में तेंदू पत्ता, साल बीज, हर्रा और बहेड़ा जैसी लघु वनोपजों की बिक्री मूल्य क्रमशः 120.00 रूपये, 10.00 रूपये, 9.35 रूपये और 12.64 रूपये की दर पर बेची गई है लघु वनोपज की बिक्री क्रमशः महुआ बीज 91.35 किग्रा (96.62 प्रतिशत), इमली 134.82 किग्रा (92.88 प्रतिशत), महुआ फूल 289. 56 किग्रा (90.28 प्रतिशत), चिरौंजी बीज 8.86 किग्रा (81.61 प्रतिशत), बेर 28.46 किग्रा (79.95 प्रतिशत) और शहद 6.44 किग्रा (76.89 प्रतिशत)।

लघु वनोपजों से आयःलघु वनोपजों की बिक्री के माध्यम से प्रति परिवार औसतन 26077.93 रूपये की आय प्राप्त हुई है लघु वनोपजों में तेंदू पत्ते का योगदान सर्वाधिक (9365.80 रूपये) है, इसके बाद महुआ फूल (4973.95 रूपये), साल बीज (3253.65 रूपये), इमली (2762.28 रूपये), महुआ बीज (1937.26 रूपये), शहद (1641.81 रूपये), चिरौंजी (890.35 रूपये), बहेड़ा (507.16 रूपये) और हर्रा (487. 60 रूपये) का योगदान प्रतिशत क्रमशः 19.07 प्रतिशत, 12.48 प्रतिशत, 10.59 प्रतिशत, 7.43 प्रतिशत,

6.30 प्रतिशत, 3.40 प्रतिशत, 1.94 प्रतिशत और 19.07 प्रतिशत है सबसे कम आय बेर 269.07 रूपये (1.03 प्रतिशत) रही।

संग्रहित लघु वनोपजों के माध्यम से सृजित रोजगारःलघु वनोपजों के लिए प्रति परिवार औसत संग्रहण दिनों की संख्या 114 मानव दिवस रही। साल बीज, महुआ बीज, हर्रा, बहेड़ा, बेर, चिरौंजी बीज, तेंदू पत्ता, शहद और इमली से कमार परिवार ने क्रमशः 20,12,12,10,10,9 और 7 सक्रिय मानव रोजगार दिवस सृजित किए।

लघु वनोपजों को बेचने (निपटान) का स्थान का विवरणः कमार परिवार के द्वारा जिसमें 53.44 प्रतिशत का कारोबार मुख्य रूप से प्राथमिक लघु वन उपज समितियों द्वारा किया जाता है महुआ फूल, महुआ बीज, बहेड़ा और बेर को क्रमशः 76.25 प्रतिशत, 40.64 प्रतिशत, 59.55 प्रतिशत और 69.74 प्रतिशत के साथ ग्रामीण व्यापातियों को बेचा गया है कुल कारोबार किए गए लघु वनोपजों में से 11.41 प्रतिशत बिना किसी मध्यस्थ या कमीशन एजेंट के सीधे उपभोक्ता को बेचा गया है

लघु वनोपजों की संग्रहण में कमार जनजाति के सामने उत्पन्न चुनौतियाँ एवं मुद्दे (समूह परिचर्चा पर आधाारित)

जलवायु परिस्थितियाँःमौसमिक घटनाएँ जैसे बाढ़, सूखा एवं बारिश लघु वनोपजों की प्रचुरता और उपलब्धता को प्रभावित करता है

संसाधनों की कमीःवनो की अधिक कटाई के कारण लघु वनोपज संसाधन समाप्त हो रहे है वाणिज्यिक उपयोग के लिए लघु वनोपज वस्तुओं का अत्यधिक दोहन, सरकार द्वारा लघु वनोपजों के संरक्षण पर कम ध्यान देना, पारंपरिक कटाई तकनीकों का उपयोग कर बिना किसी मूल्य संवर्धन के कुछ लघु वनोपज वस्तुओं को बेचना, अस्थिर बाजार द्वारा प्राथमिक संग्रहकर्ताओं को वास्तविक मूल्य का भुगतान नहीं कर पाना एवं लघु वनोपजों की खरीद के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का खराब प्रदर्शन आदि कारण कमार जनजाति के सामने लघु वनोपजों के संग्रह में चुनौतियाँ उत्पन्न करती है

नीतियाँः सरकारी योजना जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य, शहीद महेन्द्र कर्मा संग्राहक परिवार आदि की सीमित जानकारी कमार जनजाति के आय को प्रभावित कर रही है

तकनीकी प्रगतिःलघु वनोपज प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन प्रौद्योगीकीकरण कमार जनजाति के उत्पादन दक्षता को बढ़ा रही है

सामुदायिक जुड़ावःसमुदाय की भागीदारी और टिकाऊ प्रथा के बारे में जागरूकता लघु वनोपजों के उत्पादन स्तरों को प्रभावित कर रही है

प्राकृतिक घटनाएँःकीट प्रकोप, बीमारियाँ और पारिस्थितिकीय व्यावधान लघु वनोपज के उपज को कम कर रही है

निष्कर्ष

कमार जनजाति को भारत सरकार द्वारा विशेष पिछड़ी जनजाति समूह के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक–आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत पिछड़ी और संवेदनशील है ऐसे में उनके लिए वन केवल जीवनयापन का साधन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक एवं पारिस्थितिकीय पहचान का आधार है कमार जनजाति का आजीविका मुख्य रूप से वनोपज संग्रहण, बांस शिल्प–कला,

कृषि और मजदूरी पर ही आधारित है महुआ, तेंदूपत्ता, साल बीज, चार, हर्रा, बेल, जामुन, शहद और औषधीय पौधे न केवल उनके भोजन व स्वास्थ्य का आधार है, बल्कि बाजार में बेचने से नगद आय भी प्रदान करता है इनकी आजीविका मौसम आधारित है, जिसके कारण कभी–कभी आय अस्थिर भी हो जाते है। फिर भी इनके पास प्रकति के साथ संतुलित जीवन जीने का पारंपरिक ज्ञान मौजूद है पारिस्थितिकीय दृष्टि से देखे तो कमार जनजाति का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है वो वनों को केवल संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में देखते है वो जंगल को देवस्थल के रूप में संरक्षित रखे हुए है वर्तमान में कमार जनजाति कई चुनौतियों का सामना सामना कर रहा है जंगलों का क्षरण, अनियंत्रित खनन, संसाधन, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी तथा बाजार तंत्र में बिचौलियों का शोषण इनके विकास में बाधा उत्पन्न कर रहे है इन चुनौतियों का प्रभाव न केवल उनकी आय पर पड़ता है, बल्कि धीरे–धीरे उनके सांस्कृतिक मूल्यों और पांरपरिक ज्ञान पर भी संकट उत्पन्न कर रहा है

भविष्य के लिए सुझाव

1. *कमार जनजाति के आजीविका साधनों को सतत् और स्थायी आधार प्रदान किया जाए। इसके लिए वन आधारित उत्पादों के मूल्य संवर्धन कर वन आधारित उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए युवाओं को प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान की जाए।*
2. *शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार करके इन्हे मुख्यधारा से जोड़ा जाना चाहिए।*
3. *राज्य सरकार के द्वारा कमार जनजाति समुदाय के अधिकार से संबंधित वन प्रबंधन की नीति को सफलतापूर्वक लागू की जाए।*
4. *कमार जनजाति समुदाय के पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण कर उसे संरक्षित किया जाए।*
5. *वन क्षेत्रों के पास लघु वनोपज की प्रोसेसिंग ईकाईयां स्थापित किया जाए।*
6. *सरकार द्वारा आजीविका की दरों में वृद्धि करते हुए न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण किया जाए।*
7. *विशिष्ट लघु वनोपजों के लिए जीआई टैगिंग और जैविक प्रमाणन की प्रक्रिया का शीघ्र क्रियान्वयन किया जाए।*
8. *ई–कॉमर्स और डिजिटल प्लेटफार्मों पर जनजाति उत्पादों की बिक्री सुनिश्चित किया जाए।*
9. *महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु स्व–सहायता समूहों का गठन और सशक्तिकरण पर बल दिया जाए।*
10. *शोध संस्थानों के सहयोग से वन उत्पादों पर नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाए।*

मानवविज्ञान एवं जनजातीय विकास विभाग,
गुरू घासीदास विश्वविद्यालय (एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय),
बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत, 495009,
संदीप कुमार साहू
sandeepsahu0698@gmail.com
नीलकंठ पाणिग्राही, प्राध्यापक
nilakantha.panigrahi@gmail.com

सन्दर्भः

1. *Agrawal A. and Yadama G. N. (1997). How do Local Institutions Mediate Market and Population Pressures on Resources, Forest Panchayats in Kumaon, India. Development and Change. 28 (1997), 435-465.*

2. *Ahuja, R. (2020). Tribal Society. Rawat Publication, Jaipur. 263-285, ISBN: 978-81-7033-640-2.*
3. *Bailey, F.G. (1960). Tribe, Caste and Nation, Oxford University, Press, Bombay, 267-268.*
4. *Babu, G. (1997). Tribal Society Displacement. 92-94.*
5. *Chawii L. (2007). Natural Resource-Based Income and Livelihood improvement initiatives in Northeast India. Background Paper No. 14, 4-17.*
6. *Chhattisgarh Govt. (2024). 11:30, 7/5/24, https://gariaband.gov.in/en/about-district/demography.*
7. *CG Economic Survey, (2024). CG and Central Budget. Govt of CG, 17-178.*
8. *Dube, S.C. (1951). The Kamar. U.P. Monograph Series, Ethnographic & Falk Culture society. Universal Publisher. University of California,2.*
9. *Das R. k. (2005). Role of Gram Sabha in Tribal Society. Ecological Economics. 2(1), 35-47.*
10. *Farnandes, W. (1997). Displacement of Tribals in George Pfeffer, contemporary society a tribal study. 317-319.*
11. *Guha, R. (1990). An early environmental debate: The making of the 1878 forest act Indian Economic Social History Review. 65-84, DOI: 001946469002700103.*
12. *Kerlinger, F.N. (1951). Fundamental of Behavioural Research. 275-276.*
13. *Laxmikant, M. (2017). Constitution of India. McGraw Hill Education (India) Private Limited, Chennai. 411-414, ISBN: 93-5260-386-9.*
14. *Mallik, R.M. and Panigrahi, N. (1998). Non-Timber Forest Produce Collection: Benefits and Management, NCDS, Bhubaneswar.*
15. *Marshall, E., Newton, A.C. and Schreckenberg, K. (2003). Commercialisation of non-timber forest products: first steps in analysing the factors influencing success. International Forestry Review. 5(2), 128-137.*
16. *Negi, V.S., Maikhuri, R.K. and Rawat, L.S. (2011). Non-timber forest products (NTFPs): a viable option for biodiversity conservation and livelihood enhancement in central Himalaya. 545–559, DOI: 10.1007/s10531-010-9966.*
17. *Odero K. K. (2004). Community-Based Enterprises: their role in sustainable natural resource management and rural livelihoods in Zimbabwe. Department of Rural and Urban Planning University of Zimbabwe. 2(1)1-21.*
18. *Pati, R.N. (1989). Strategy for sustainable use of forest resources and development of traditional shifting cultivators in Orissa, India. Tribal development in India, Jena, Ashish Publishing House, New Delhi.*
19. *Rappaport, and Roy, A. (1971). Nature, Culture and Ecological Anthropology. In Man, Culture and Society. H. Sapiro, ed. Pp. 237-268 New York: Oxford University Press.*
20. *Rai, S.C. (2007). Traditional Ecological Knowledge and Community-based Natural Resource Management in Northeast India. Journal of Mountain Science. 4(3), 248-258, DOI: 10.1007/s11629-007-0248-4.*
21. *Rao A.N. (2007). Early British Management of Forest. In forest Ecology In India: Colonial Maharashtra, 1850-1950. 40-63. Chapter, Foundation Book.*
22. *Rhemtullaa, J.M. (2020). Forest dependence is more than forest income: Development of a new index of forest product collection and livelihood resources. World Development. 125-128,104689.*
23. *Singgalen, Y.A. (2020). Mangrove Forest Utilization for Sustainable Livelihood through Community-Based Ecotourism in Kao Village of North Halmahera District. Journal Manajemen Hutan Tropika. 26(2), 155-168, ISSN: 2087-0469.*
24. *Sharma, V.P. (2022). Process of Social Research. Research Methodology. Panchsil Prakashan, Jaipur, 56-57.*
25. *Tylor, E.B. (1881). Social-Cultural Anthropology. Animism. Madhya Pradesh Hindi Granth Academy. 48-49.*
26. *Woster, D. (1988). Appendix doing environmental history. 288-307.*
27. *Zoysa, M. D. (2022). Forest-Based Ecotourism in Sri Lanka: A Review on State of Governance, Livelihoods, and Forest Conservation Outcomes. Journal of Sustainable Forestry. 41(3), 413–439.*

Exploring the Significance of Integrating Creativity in Product Design in Industrial Arts Education.

Susmita Lakhyani[1], Ragneel Chand[2]

Abstract

In Industrial Arts education, functionality has been the primary emphasis in designing and developing products. However, in recent years, creativity has emerged significantly in designing and developing products that not only fulfill user needs and desires but also enhance competitiveness in the market. For instance, a product devoid of creativity lacks emotional depth, failing to evoke the value of emotions and feelings that are essential for aesthetic expression. This underscores the critical need to integrate creativity in Industrial Arts education, ensuring that students in Industrial Arts education design products that are imbued with meanings for aesthetic expression. Hence this paper seeks to promote the significance of integrating creativity in Industrial Arts education, fostering students to create products that can establish values in society. Through a comprehensive review of the literature, this paper divulges the pivotal roles of creativity in designing products in Industrial Arts education. The study concludes that integrating creativity in designing and developing products empowers individuals to create products that go beyond the aspect of functionality, expressing intangible creativity that evokes emotions and feelings that are significant for the establishment of peace and harmony in both individuals and society at large. Consequently, this paper aims to promote the importance of integrating creativity in product design in Industrial Arts education, equipping these students for a successful modern industrial landscape while fostering the creation of products that can establish values in society.

Keywords: creativity, industrial arts, product design, values, emotions, feelings

Introduction

Industrial Arts is defined as a process of working with different tools and machines to transform materials into something more useful in the form of tangible products that

are also aesthetically attractive to humans (Smith, 1962). Foster (1994) defined products as tangible items that an industry develops for people while product development or design is the series of actions or processes that are required in the manufacturing or creating of the product. Industrial Arts education serves as a critical foundation for student success in the rapidly developing technological world as it emphasizes the learning process of practical skills combined with essential design principles in developing products that meet people's needs and desires. However, creativity is gaining greater attention in the Industrial Arts product designs (Petron, 2007)
as products in Industrial Arts demand products that can express values of emotions, feelings, and peace.

The early pioneers of product designers such as Christopher Dresser (1834–1904), an important player in the aesthetic movement, claimed that the final products should be aesthetically pleasing (Denison, 2005), while Raymond Loewy (1893-1986), known for designing the Air Force One pioneered the use of 'streamlined' design by using highly practical shapes to achieve his vision of beauty in modern design (Wall, 2018), both highlighting the importance of integrating beauty and creativity in their designs. Contemporary designers such as Ettore Sottsass, Philippe Starck, and Jonathan Ive also emphasized the importance of integrating the aspects of aesthetics into their products that assert an emotional experience of items concerning their ritualistic and symbolic presence, in contrast to their functionality (Hekkert & Leder, 2008). Functionality is surely one of the significant factors in producing products, but, if the final product is devoid of creativity, then it will not evoke any values of emotions and feelings that are necessary for aesthetic expression.

Moving on scholars such as Cropley, (2015) Han, Forbes and Schaefer, (2021) and Smith (1961) argue that the integration of creativity is essential in designing and developing multi-craft products in industrial arts. Smith (1961) further expressed that, “Industrial arts classes are one of the logical places for teaching product design because of the nature of the work and the projects to be completed. To design is to create” (p. 5). Designing is seen as a creative activity as it requires students to engage in a variety of tasks to translate concepts from their imagination into creative, tangible solutions that meet people's needs and desires (Wikberg-Nilsson, 2012). However, creative designing in Industrial Arts should not be limited to tangible solutions only; it should go beyond the tangible to intangible creativity.

Furthermore, according to Ivanov, Pavlenko, Evtuhov, and Trojanowska (2024), tangible solutions involve creating products that are physically visible and designed to effectively fulfill the intended purpose of functionality. Intangible creative products are

those that can be felt on an emotional level, such as the values of feelings, beauty, and harmony leading to inner peace and aesthetic expression (Lindahl, 2013). The products designed in Industrial Arts classrooms should go beyond the aspects of functionality and embrace invisible characteristics that can express inner happiness and are aesthetically pleasing. Hence, understanding the role of creativity in Industrial Arts education will prepare individuals to develop products that go beyond functionality enabling them to create products that are not derailed by creativity.

While functionality is of utmost importance in product design, integrating creativity into products will evoke values, emotions, and feelings contributing to peace and harmony, which are essential elements of a harmonious life. The present study explores the concept of creativity and Industrial Arts. It will further discuss the role of creativity in industrial arts, highlighting the importance of integrating creativity in designing and developing products in Industrial Arts education.

Concept of Industrial Arts

The origins of Industrial Arts are rooted in the foundations of humans in developing essential skills to make vital tools and weapons for survival. As stated by Hostetter (1974) the teaching of these survival skills is traced back to "when early caveman taught his son to master the skills needed for survival" (p. 209). Professional historians frequently start by stating that industrial arts education was first taught as a component of common knowledge (Hostetter, 1974). Foster (1994) cited Snyder (1992) that the first developments in technology in history were those made during the "stone age" (p. 13). During this Stone Age, people were classified as hunters and gatherers where learning became a necessity at a very young age for survival.

Moving on, pioneers of industrial arts education such as Pinnell (1977) expressed that when looking at the definition of industrial a rts from the historical background, the use of words was a major challenge. The use of 'manual training', 'manual arts', and 'industrial arts' were used to describe the same or different areas of industrial education. Smith (1962) described Industrial Arts as a subject that focuses on the materials, manufacturing processes, and new product developments through the contributions of those working in the industrial sectors where the learning comes from the experience gained from the interaction of different types of tools with different forms of materials. Smith (1962) further writes that through industrial arts programs students "gain knowledge of the changes made in materials to meet the needs of society, and industrial processes used to effect these changes, of the constant adaptation of materials, tools, and processes to meet changing needs and conditions" (p. 19).

Furthermore, Lyle (2009) interpretated that the purpose of industrial arts education is to "prepare students to enter the industrialized world of work. This curriculum promoted the knowledge and skills needed to pursue industrial careers and interests" (p. 14). The teaching of industrial arts education prepares students for a lifetime of learning and helps them live and work productively in a rapidly developing technological world. Using technology equipment, materials, and processes, students in Industrial Arts education actively work in a hands-on skill setting to translate thoughts and ideas into actual products and services needed.

The industrial arts classroom is vital place where teaching the concepts of design takes place due to the nature of the creation of tangible products. Teaching of the concept of design is an important component of industrial arts education. As stated by Bradley (1946), teaching the correct use of tools, manipulating materials, or developing competence in these areas is not educationally valuable enough if the end products lack the functionality and aesthetics that define excellent design. Hence creativity needs to be firmly anchored in the creation and innovation of new products in industrial arts (Al-Fawadi & Salih, 2017).

Concept of Creativity

In the 19th century research on creativity began, which mostly examined individual characteristics and their relationship to creativity. As time progressed, studies have switched their focus to social aspects, which are linked to creativity, particularly based on approach and outcome (Shende, 2017). According to Sternberg and Lubart (1999), since ancient times, creativity has been a curious topic that was mistakenly linked to unique individuals gifted with creative brilliance, who were raised with a love of literature, science, and art. The research on the subject of creativity has long been associated with spiritual notions, as the first narratives of creativity relied on spiritual intervention. For example "the creative person was seen as an empty vessel that a divine being would fill with inspiration" (Sternberg & Lubart, 1999, p. 5).

Khatua (2023) stated that according to Tagore, throughout life, man "tries to transform himself from a rational animal to a spiritual human, or from an ordinary man to a great man. He can do it by his creative spirit of infinite nature" (p. 61). Tagore contends that the nature of expressing something extra to perfect is termed "surplus in man". Because life includes an excess that constantly transcends the confines of the present moment and pursues its journey of expression in many forms of self-realization, life is inherently creative. According to Tagore (1917), creativity resides within the enormous heart of an artist and expresses itself through creation. In this context, creation is seen as the appropriate purpose of art.

Moving on, Lowenfeld (1957) held the opinion that people are naturally creative from birth and everybody carries their creative potential within, and giving them chances to explore art in their own ways is very important. Battista (2023) claimed that creativity is something that goes beyond reason and imagination. Creativity builds a link or a bridge between the disparate concepts that define each person's cognitive processes. According to Gaut (2003), “Every imagining involves a creative act” (p. 274); hence imagination has a significant role in how creative outcomes are presented to the creative individual. It is a universally accepted fact that imaginative thought is necessary for creative thought (Stokes, 2014).

Furthermore, Kharkhurin (2014) explored “creativity as a four-critera construct, which includes attributes of “novelty, utility, aesthetics, and authenticity” (p. 338). Li and Li (2022) asserted that one cannot ignore creativity in design as designing products is largely dependent on creativity. Among the most essential skills for designing products, is creativity. “Creativity is the development of fresh ideas while innovation is the procedure of making these ideas tangible so that they can be used in a design process, for instance” (Ghooli, Irfan, & Manjunath, 2017, p. 1154). For example, when someone can solve problems, make something new, or bring up a topic in a way that is finally acceptable in one or more cultural contexts, that person is considered creative (Gardner, 2000).

In summary, industrial arts is an educational program that prepares students for a lifetime of learning equipping them to live and work productively in a rapidly developing technological world and establish values in society. Innovation is typically perceived as the process of making things that function in the environment to ensure they satisfy a need, demand, or interest, while creativity involves the ability to put materials together in new, original, and unique ways that can promote aesthetic expression. Creativity, product design, and aesthetic expressions are all fundamentals of industrial arts Education. Creativity is not limited to creating products that are unique and functional; creative products are those that can express the values of emotions and feelings that are necessary for aesthetic expression. Values should be embedded in creativity and industrial arts as represented in Fig.1. It is essential to integrate the values of beauty, emotions, feelings, and harmony in industrial arts product design through creativity.

This brings to our attention what roles creativity plays in industrial arts and why it should be integrated into product design.

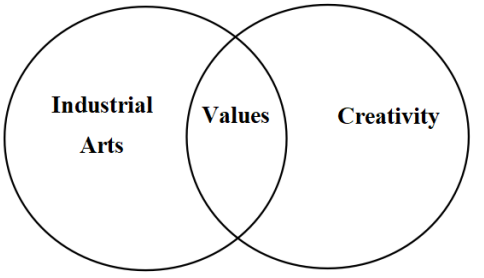


Fig.1: Integration of Values into Industrial Arts and Creativity

The Role of Creativity in Industrial Arts

In the 21st century, we are witnessing extensive developments in several aspects of human societies. The people designing the products must adapt to these changes to survive in industrial firms, and these changes call for both creativity and innovation (Rumanti, Rizana, & Achmad, 2023). The complexity of industrial designs has risen as a result of these developments. One of the key elements in this complexity is creativity, which is deeply rooted in the ideas of innovation and the creation of products (Allahdadi & Honarbakhsh, 2014). Sarkar and Chakrabarti (2011) asserted that in order to create products and foster innovation, creativity is essential. Allahdadi and Honarbakhsh (2014) further expressed that in the current post-industrial era, it is vital to stress creativity in products as it is becoming a life-sustaining requirement. Chipambwa (2017) writes that it is "the duty of the designer to be creative in their works so that they can produce designs which the clients will fall in love with" (p. 76).

In industrial arts education, students are required to design products that fulfill human needs and desires. The students are given a design problem and are required to solve it by designing a tangible solution. While solving the problems, students' creative abilities play a crucial role in achieving the idea of a unique product that solves the problem by creating products that are functional and aesthetically appealing. Hence the importance of integrating creativity in product design in industrial arts education is as follows:

- Unique and superior products
- Self-identification and self-integration
- Expression
- Shaping the society through creative products

Unique and Superior Products

The landscape of new product design is quite complicated, as it encompasses the collection of new ideas and innovations (Hsiao & Chou, 2004). The authors further stated that the product design process includes planning, effective management, intensive

research and development, a smooth flow of the production process, and enterprising practice, and quality decision-making. Cooper and Kleinschmidt (2010) mentioned that one of the elements of a successful product is developing a product that is unique and superior. Creativity plays a crucial role in developing products that are unique and superior. Creative product designs are those that consist of new and innovative ideas that make the product unique (Im, Montoya, & Workman Jr., 2013). Therefore creativity is essential in the development of unique products to make them stand out in the market and benefit both the customer and the business. Stricker (2008) believed that creativity is not limited to producing products only. Moving on, Hsiao and Chou (2004) in their study, proposed a creative process of the Sensuous Association Method whose primary goal is to generate unique ideas for the product. To prove the feasibility of this creative process, a case study was conducted on designing the appearance of the electric scooter. By integrating the application of the proposed method Hsiao and Chou (2004) were able to create a unique electric scooter appearance design. By following a thorough investigation into the characteristics of creativity, Taylor (1988) listed six roles of creativity in products design, where one of the roles was that creativity blends unique ideas where the results of the final product are new and useful, satisfying the needs of the user. To create a unique product in industrial arts education, the students need to identify and integrate design problems, products, and materials.

Self-identification and Self-integration

Creative products are the outcomes of the self-identification and self-integration of the person designing them. Lowenfeld (1957) expressed that creative expression is not possible if there is no self-identification, hence it "is one of the very intrinsic factors of creative expression. If we do not identify ourselves with these forces, art expression loses the very essence of its nature, its creativity" (p. 23). Designing in industrial arts education is done to solve design problems. The student needs to identify themselves with the problems that require a solution in the form of tangible products. Once the students can identify themselves with the problem only then, will they be able to establish and relate emotions and feelings to the design problem, hence discovering the special requirements of the design. When the student has self-identified the problem, only then, will they be able to integrate their ideas with the problem. According to Dybvik (2022), in his study, where students were requested to design a personal cup, he noted that students integrated their feelings and emotions into the cup design and believed that the product should not be limited to meeting its functional requirements only. Vessel et al. (2023) after conducting two experiments in Germany, claimed that aesthetic expression is dependent on self-identification. Lowenfeld (1957), further states that integration does not occur from the outside; integration is not made by assembling two subjects; integration happens from

within. This clearly shows that self-integration can only take place by self-identification. Self-integration of students in product design in industrial arts education is one of the most important aspects of product design, that can create creative products that not only are functional and safe, but are unique and emotionally rich, which improves the product's overall aesthetic experience. To express emotions, feelings, and harmony in the design, students need to express themselves in the design.

Expression

Lowenfeld (1957) believes that before being inspired to create 'creatively', the person should be able to relate to their own experiences. Creative products in Industrial Arts education are those that reflect feelings and peace and evoke emotions. This can be only achieved if the student is expressing themselves in the design. According to Wickiser (1957), "expression emphasizes the need for creative imagination" (p. 65). Wickiser went further and expressed that through artistic expression, the person who is designing tries to demonstrate and convey their thoughts and feelings in a way that is personalized and acts as a genuine means of communication. Creativity is heavily emphasized in the process of creation, the outcome of the final product, and the personality characteristics of the creative individual in the form of self-expression (Lowenfeld, 1957). This highlights that creativity serves as a mode of expressing the inner self of the person, as well as a means to express identity, emotions, and points of view of both the person designing the product and the people who are going to use it (González-Zamar & Abad-Segura, 2021). Chapman (1978) also agreed that people designing products need to be creative by seeing that the product's cost, usefulness, safety, ease of use, and emotional meaning are all considered in designing. Henderson (2004) extensively interviewed two control participants and four product designers on their creative processes, where they conveyed a deep sense of emotional experiences in their design, which was analysed using the Russ model. Furthermore, Henderson (2004) proposed that the pleasure of self-expression is the final new component of the Russ Model. He believed that this process specifically relates to the joy that comes from producing something that is a profound expression of oneself. Al-Fawadi and Salih (2017), through review of related literature, further expressed that creativity provides room for individuals to help them express themselves and perceive the world from different angles. Hence self-expression plays a vital role in developing creative products that are significant in shaping societies.

Shaping the Society through Creative Products

Industrial arts has always had a multifaceted relationship with society and the products that are created. The tangible products created in industrial arts are the outcomes of the problems faced by individuals as well as society. Creativity not only shapes the

person who has developed creative products in industrial arts, but it can also shape society at large. The creative products created as works of art significantly express the cultural identity and heritage of the society by conveying society's cultural values in the work of art (Stamkou & Keltner, 2020). Developing creative products in industrial arts will not only fulfill the needs of functionality but the products will also express the values such as feelings, emotions, and harmony. Furthermore, a product that can express these values will express peace, which is the highest objective of life. Integrating creativity in products is the best tool that can put someone in total control of their feelings and at the same time create a bond among the people. As stated by Jaitly and Sahu (2023) "a work of art is said to be a masterpiece only when it can create the desired effect in the society"(p. 836). For example, Meetei (2016), in his study, stated that when we go to view the Taj Mahal in India, we are compelled to enter a peaceful and pleasant environment. Expressing the universal values of life such as emotions, feelings, and harmony (Deigh, 2011) in the products created will break the barriers of language and culture bridging diversity in the people, hence making people live a life grounded in values of empathy, emotions, and understanding of different people in the society. Furthermore, these values expressed from the creative products will inspire people to devote themselves to social actions or civic development bringing peace to society (Bhushan, 2023), hence achieving the highest goal in life. Therefore, it can be said that integrating creativity in product design in industrial art education is very important because it is a powerful social force that influences cultural identity, advances social change, and encourages emotional connections within society, leading to happy and peaceful lives.

Conclusion

Integrating creativity into product design and development in industrial arts education is essential, as products designed and developed in industrial arts education should extend beyond tangible solutions, embracing the elements of beauty, harmony, feelings, and emotions. This can be only achieved if the students in industrial arts education recognize the significance of creativity in creating products. Through a review of related literature, this study highlights the various roles that creativity plays in creating products in industrial arts education. Students in industrial arts education need to integrate creative thinking into the design process through the formulation of new ideas, materials, and methods, thus creating unique products that meet the demands of evolving consumers needs. Not only that, but integrating creativity in industrial arts product design will also promote the creation of products that express feelings, emotions and beauty through harmonious designs that are also essential elements in shaping society. This is only possible if the person who is designing the product can self-identify and self-integrate themselves into the design. However, precisely transforming these values of emotions

and feelings in the product demands strong foundational practical skills. Hence, to achieve intangible creativity in the products it is vital to develop and foster practical skills as well in the students of industrial arts education in developing products.

Department of Education
University of Delhi, New Delhi
[1]susmitalakhyani@gmail.com
[2]ragneel.chand@fnu.ac.fj

Reference

1. *Al-Fawadi, & Salih, H. M. (2017). The role of Creativity and Talent in art education of School Students. journal of the college of basic education, 23(98), 23-34.*
2. *Allahdadi, M., & Honarbakhsh, F. (2014). Examine the role of creativity in Industrial Design. Indian Journal of Fundamental and Applied Life Sciences, 5(1), 557-564.*
3. *Battista, F. (2023). Creativity Through Art in Education: A chance to look at the World. Creative person and the development of creativity, 119.*
4. *Bhushan, T. (2023). The impact of art on society: Role of art in shaping, culture, challenging, societal norms and sparkling social change. The Daily Guardian.*
5. *Bradley, C. B. (1946). Design in the industrial arts. Peoria, Illinois: The Manual Arts Press.*
6. *Chapman, L. H. (1978). Approaches to art in education. New York: Harcourt Brace Jovanovich, Inc.*
7. *Chipambwa, W. (2017). Designing for Functionality In V. Muzenda & B. Chivhanga (Eds.), Issues in Art and Design (pp. 64-76). Zimbabwe: Chinhoyi University of Technology Publications.*
8. *Cooper, R. G., & Kleinschmidt, E. J. (2010). Success factors for new-product development. Wiley International Encyclopedia of Marketing.*
9. *Cropley, D. (2015). Promoting creativity and innovation in engineering education. Psychology of Aesthetics, Creativity, and the Arts, 9(2), 161.*
10. *Deigh, J. (2011). Emotions, values, and the law: Oxford University Press.*
11. *Denison, P. (2005). Christopher Dresser: A Design Revolution. Journal of Design History, 18(4), 387-390. doi:10.1093/jdh/epi056*
12. *Dybvik, J. H. (2022). Experiences with emotional design. Paper presented at the DS 117: Proceedings of the 24th International Conference on Engineering and Product Design Education (E&PDE 2022), London South Bank University in London, UK. 8th-9th September 2022.*
13. *Foster, P. N. (1994). Historical Problems in Industrial Arts and Technology Education.*
14. *Gardner, H. E. (2000). Intelligence reframed: Multiple intelligences for the 21st century: Hachette Uk.*
15. *Gaut, B. (2003). Creativity and imagination. In The creation of art (pp. 268-293). New York: Cambridge University Press.*
16. *Ghooli, C., Irfan, S. S., & Manjunath, V. (2017). Design Innovation And Creativity. International Journal of Advanced Technology in Engineering and Science (IJATES), 5(3), 1151-1161.*
17. *González-Zamar, M.-D., & Abad-Segura, E. (2021). Emotional creativity in art education: An exploratory analysis and research trends. International Journal of Environmental Research and Public Health, 18(12), 6209.*

18. *Han, J., Forbes, H., & Schaefer, D. (2021). An exploration of how creativity, functionality, and aesthetics are related in design. Research in Engineering Design, 32(3), 289-307. doi:10.1007/s00163-021-00366-9*
19. *Hekkert, P., & Leder, H. (2008). Product aesthetics. Product experience, 259-285.*
20. *Henderson, S. J. (2004). Product Inventors and Creativity: The Finer Dimensions of Enjoyment. Creativity research journal, 16(2-3), 293-312. doi:10.1080/10400419.2004.9651460*
21. *Hostetter, R. G. (1974). Historical Reflections. In R. G. Thrower & R. D. Weber (Eds.), Industrial Arts For The Elementary School (pp. 209-220). USA: McKnight Publishing Company, Bloomington, Illinois 61701.*
22. *Hsiao, S.-W., & Chou, J.-R. (2004). A creativity-based design process for innovative product design. International journal of industrial ergonomics, 34(5), 421-443.*
23. *Im, S., Montoya, M. M., & Workman Jr., J. P. (2013). Antecedents and Consequences of Creativity in Product Innovation Teams. Journal of Product Innovation Management, 30(1), 170-185. doi:https://doi.org/10.1111/j.1540-5885.2012.00887.x*
24. *Ivanov, V., Pavlenko, I., Evtuhov, A., & Trojanowska, J. (2024). Product Design. In Augmented Reality for Engineering Graphics (pp. 13-20). Cham: Springer Nature Switzerland.*
25. *Jaitly, A. K., & Sahu, M. (2023). A Symbiosis of Art And Society. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 11(3), f836-f838.*
26. *Kharkhurin, A. V. (2014). Creativity. 4in1: Four-criterion construct of creativity. Creativity research journal, 26(3), 338-352.*
27. *Khatua, A. R. (2023). Tagore's Philosophy of Creation: A New Dimension in Art and Culture. Journal of Philosophy and the Life-world, 25, 56-68.*
28. *Li, W., & Li, Z. (2022). Research on Creativity Model of Creative Product Design Based on Twenty-four Solar Terms. Paper presented at the 2021 International Conference on Culture, Design and Social Development (CDSD 2021).*
29. *Lindahl, I. (2013). Visual aesthetics in product development: A balance between commercial and creative imperatives. Linköping University Electronic Press,*
30. *Lowenfeld, V. (1957). Creative and mental growth (Third edition ed.). New York: The Macmillan Company*
31. *Lyle, K. E. (2009). Teachers' perceptions of their technology education curricula. (Doctor of Education), Immaculata College, Immaculata, Pennsylvania*
32. *Meetei, M. I. (2016). Role of Visual Art in Promoting Communal Harmony and Peace. Intellection: A Bi-annual interdisciplinary research journal, IV(II), 22-29.*
33. *Petron, A. (2007). Factors affecting creativity in the product design industry. Journal of Creativity Process.*
34. *Pinnell, C. C. (1977). The Role of Industrial Arts in Career Education. (Master of Science (Industrial Arts)), The North Texas State University, The North Texas State University. Retrieved from https://digital.library.unt.edu/ark:/67531/metadc503876/m2/1/high_res_d/1002772770-Pinnell.pdf (5442)*
35. *Rumanti, A. A., Rizana, A. F., & Achmad, F. (2023). Exploring the role of organizational creativity and open innovation in enhancing SMEs performance. Journal of Open Innovation: Technology, Market, and Complexity, 9(2), 100045.*
36. *Sarkar, P., & Chakrabarti, A. (2011). Assessing design creativity. Design studies, 32(4), 348-383.*

37. *Shende, A. (2017). Enhancing creativity amongst master of design students with heterogeneous background use of combinatorial tool through generative method. (PhD in Design), Indian Institute of Technology Guwahati, India.*

38. *Smith, E. D. (1962). Elementary Industrial Arts Education for Minnesota.*

39. *Smith , L. D. (1961). The Role of Design in Industrial Arts. (Master of Science in Education), Eastern Illinois University, Plan B Papers.*

40. *Snyder, M. R. (1992). The transition from industrial arts to technology education in the United States: A historical perspective: Virginia Polytechnic Institute and State University.*

41. *Stamkou, E., & Keltner, D. (2020). Aesthetic Revolution: Art as Culture and Catalyst for Social Change. Available at SSRN 3578575.*

42. *Sternberg, R. J., & Lubart, T. I. (1999). The concept of creativity: Prospects and paradigms. Handbook of creativity, 1(3-15).*

43. *Stokes, D. (2014). The role of imagination in creativity. The philosophy of creativity: New essays, 157-184.*

44. *Stricker, D. R. (2008). Perceptions of creativity in art, music and technology education: University of Minnesota.*

45. *Tagore, R. (1917). Personality. University of California Libraries: Macmillan.*

46. *Taylor, C. W. (1988). 4 Various approaches to and definitions of creativity. In R. J. Sternberg (Ed.), The nature of creativity: Contemporary psychological perspectives (pp. 99-121). Cambridge: Cambridge University Press.*

47. *Vessel, E. A., Pasqualette, L., Uran, C., Koldehoff, S., Bignardi, G., & Vinck, M. (2023). Self-Relevance Predicts the Aesthetic Appeal of Real and Synthetic Artworks Generated via Neural Style Transfer. Psychological Science, 34(9), 1007-1023. doi:10.1177/09567976231188107*

48. *Wall, J. (2018). Streamliner: Raymond Loewy and image-making in the age of American industrial design: JHU Press.*

49. *Wickiser, R. L. (1957). An introduction to art education. United S tates of America: World Book Company.*

50. *Wikberg-Nilsson, Å. (2012). Rethinking designing: collaborative probing of work and workplace change. Luleå tekniska universitet,*

Decoding Future Prospects of Trial Under BNSS: A Comparative Analysis with CrPC

Vaibhav Singh Yadav[1], Vikash Agrawal[2]

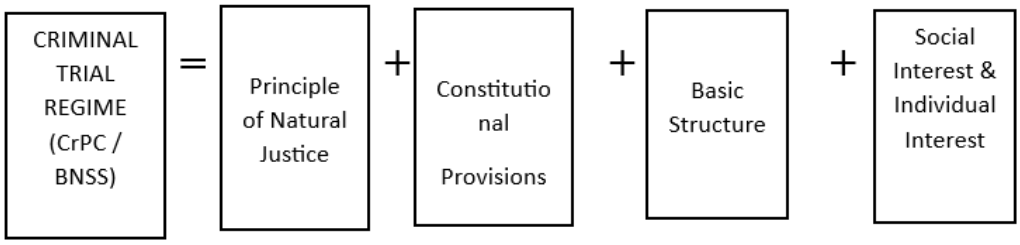
Abstract

Over the last few decades, the demand for transformation of Criminal Laws has been one of the main issues across the country. The main focus is to free Indian Criminal Justice System from British led framework. In response, the Government of India repealed the old Criminal laws and passed New Criminal Laws – BNS, BNSS and BSA[1] (repealed IPC[2], CrPC[3] and IEA[4] respectively)[5].Under BNSS, major changes have been bought in order to transform the criminal proceedings. The central point of BNSS is to revamp trial system, as trial is the most important stage that leads to fair justice in the society. This paper critically examines the provisions relating to trail provided under BNSS while comparing with CrPC. The paper assesses the nuances, challenges and limitations of the new provisions introduced through BNSS relating to trial. The analysis revolves around on some primary goals – timelines in trial proceedings, fair trial, speedy justice, transparency, reduction in backlog of pending trials, judicial overload, gender equality and inclusivity during trial, protection of rights of victims and accused, privacy concerns, and other implicit matters. The author will employ doctrinal method and use secondary data for analysis. By exploring the area, the paper offers comparative insights into trial with previous system. The paper also procures some suggestions to overcome the challenges.

Keywords: - BNSS, Trial, Trial proceedings, Fair Trial, Courts, etc.

Introduction

A society can be of two kinds: civilized and uncivilized. In both the societies, one aspect is common, which is disputes. Disputes can be of two kinds – civil and criminal. Civil disputes are those disputes which arises between two individuals or parties but that does not have the ability to affect other people or society. Sometimes it requires a third independent party to resolve the civil disputes and in civilised society the third party known as court. Whereas in a criminal dispute generally known as “offences”, the whole society is affected because it is conducted in such a manner that the peace and security of the society is compromised. A civilized society is formed when the rights of citizens are secured by the state in a proper manner.



In the above equation, the criminal trial law is described very prominently. In India, we have BNSS (previously, CrPC). Under the criminal trial, the state must follow certain principle so that it secures the human rights of all individuals and at the same time secure all its citizens so as to maintain civilized society.

CrPC or BNSS is a procedural law and every procedural code must follow the basic principles of natural justice ("Equity, Good Conscience and reasonable actions"). Apart from this the law of the land must be the supreme law and procedural law must be in consistency of it, unless the procedural law will be declared as null and void.

In the famous case of Kesavananda Bharti v. State of Kerela[6], the concept of basic structure was introduced and every procedural law especially criminal laws must comply with this structure and lastly it should be in the societal interest and individual interest.

All the above aspects when combined together, only then we can make a complete procedural law for criminal trial. As we all know that, in criminal trial sometimes the accused got bail and rest they are kept in the jail. This system has its logic of its own. If a person has involved in a very serious offence and through that the peace of that society gets disturbed and for the societal interest it is important to remove that person from that society, then they are kept in the jail facility. This system finds place in every country's criminal laws just to maintain civilised society and promote peace.

- **What is Trial ?**

The term "trial" has not been defined under BNSS or not even in the CrPC. The general meaning of the trial is – 'the hearing of the matter by the court of law in which both the parties argue their side with the help of proper evidences'. The trial is a mixture of substantive laws and procedural laws. The trial is conducted by the preceding officer and the end result of trial is pronouncement of judgements on the basis of evidences produced by the parties. The trial conducted in the civil matters and in criminal matters are different from each other. In criminal trial, the court has to follow the principle – "Let hundred guilty be acquitted but not one innocent should not be convicted".

- **CrPC – An Introduction**

Before BNSS, there was trial regime in criminal matters, which is known as CrPC. The CrPC, 1973 was enacted in the Independent India, but inspired by the British mindset. Over the period of time the law has undergone various amendments as and when needed to meet the need of contemporary society. The CrPC is the true reflection of the Bentham's principle of "Utilitarian"[7].

- **New Criminal Laws – Basic Insights**

The new criminal laws contain three prominent laws i.e., BNS, BNSS and BSA, which has been discusses earlier part also. The author in this article focuses on the BNSS, and here

the basis insights of BNSS will be discussed only. The BNSS has repealed the longstanding law of criminal trial CrPC. The BNSS has 531 sections, which are further divided into 39 chapters. The Sanhita is a very comprehensive law and covers technological led sections. It caters the need of the technological driven society. There are various sections which are repealed and many has been introduces afresh. These all have discussed in the later part of this research paper.

STATEMENT OF PROBLEM

The statement of problem for the research paper is that:
Structured Timeline : Despite having enormous affirmative amendments in the BNSS, the trial courts are struggling to match the provided timeline under BNSS at various stages.
Pendency of Cases: There is a notion which becomes famous before the New Criminal Laws being enforced that there will be decrease in the pendency of cases and the offences especially sexual offences will decrease due to the new stringent punishments. But the data show that there is no decrease in the cases against women and children.
Conflicting and Confusing: Before the introduction of BNSS, there was no seminars or instructions given to the trial courts, police, medical fraternity, etc. in a structured manner. This has led to confusion in trial courts regarding which system to adopt while handling the case.

RESEARCH QUESTION

1. What are the key differences in BNSS and CrPC? Are the amendments were needed in current criminal trial system?
2. Will the pendency of cases reduce through BNSS?
3. What are the opinions of jurists about BNSS?
4. Are these amendments sufficient to revamp the Criminal Trial in India?

LIMITATION OF THE STUDY

As the BNSS is effective on July 1, 2024, it is difficult to collect the data from primary sources because it will be too early to conclude the whole regime, but the researcher has taken the opinions of various jurists (judges, advocates, academicians, etc) who have worked in this field for several years and also accumulate the data from government led sources. On the basis of doctrinal approach and secondary data, the researcher evaluates the BNSS.

RESEARCH METHODOLOGY

The aim of the study is to critically examine the provisions relating to trial provided under BNSS, so the author has employed the doctrinal methodology in this paper. The author has also opted for the comparative study, to analyse the key difference in the CrPC and BNSS relating to trial in criminal matters.

LITERATURE REVIEW

Revamping the criminal justice system is a crucial path because a major responsibility lies in balancing the interests of both the parties in the trial (Rawat & Verma, 2019). In the trial system of criminal matters, alternate methods should be encouraged to overcome the problem of pendency of cases (Rao, 2019).

While admitting the electronic evidences huge focus should laid down on the individual's interest and the evidence which is presented in electronic format must have the security same as physical evidence (Bhattacharya, 2020)[8]. There are various laws which are prevalent in India which needs new provisions to meet the new trends of the society (Mukherjee, 2017)[9]. The countries like UK, USA, and Australia have introduced the contemporary legal provisions in their criminal justice structure which includes technology, terrorism, electronic evidence, data privacy, etc. (Jones & Smith, 2019)[10]. Indian criminal regime needs an advancement as there is very little scope for the technological upgradation (Kumar, 2020[11], Singh, 2020)[12].

There are various loopholes in the BNSS which needs attention. Apart from various shortcomings, the BNSS is an appreciable step as it is a strong step that will help India to come from colonial mindset (Wahab, 2024)[13]

ANALYSIS OF THE TOPIC

The focal point of this research paper is the "future prospects of BNSS" and comparison with the old regime in trial. The research problems and the research questions which are mentioned above will be answered in this section with the help of data and legal reasoning. The researcher has elaborated the topic by dividing it into various sections, so that the research problem and question could be answered in well-structured manner.

1. Amendments – A Sneak Peak

Some of the major amendments that are delivered through BNSS to revamp the criminal trial are as discussed as under: -

- Definition of 'victim' broadened: - BNSS under Section 2(1)(y) has enhanced the scope of definition of 'victim', which enables the victims to get compensation more effectively.
- **Zero FIR**: - The new law has explicitly mentioned the concept of Zero FIR under Section 173 of BNSS. This will solve timely reporting of crime and the victim of rape will feel relief of having being heard and most importantly she will get protection against second victimization, because of refusal to register FIR on the ground of lack or improper jurisdiction.
- **E- FIR**: - Section 173(1) states the provision of electronic registration of FIR. This will enable the victim of rape to get her report be registered without going elsewhere. It also helps in preventing double victimization and disclose of identity.
- **Statement of victim of rape**: - Section 176(1) of BNSS provides that in case of victim of rape, her statement to be recorded in audio-video means. This will provide more protection and transparency in investigation.
- **Information of investigation to victims**: - To include the inclusion of victims during investigation, Section 193(3)(ii) makes an endeavour regarding the same. The police within 90 days of registering FIR, inform the victim about the progress in investigation. This will make the Investigating Officer (IO) accountable and responsible. It will also help the victim of rape in taking the appropriate actions, if not satisfied with the progress in investigation. In the case of Jagjeet Singh & Ors v. Ashish Mishra &

Another[14], Supreme Court held that victim has the right to be heard in every stage from investigation to appeal, including bail application filed by the accused.

- **Victim's Right to oppose bail**: - For the application of guidelines issued in Jagjeet Singh & Ors v. Ashish Mishra & Another[15], where it was held that victim has right to be heard in bail proceedings and can be a major factor in cancellation of bail. In BNSS, there are various provisions in which it is clearly mentioned. Apart from bail, it was also stated by the Hon'ble Supreme Court that, in case of serious crimes against women, anticipatory bail should not be treated as a norm.
- **Recording of statements of rape victims**: - Under Section 183(6)(a) Proviso first has clearly mentioned that the statement of woman victim shall be recorded by the Woman Magistrate.
- **Timely medical examination**: - Section 184(6) of BNSS mandates the medical practitioner to send the report to magistrate within 7 days.
- **Charge framing**: - Section 251(1) of BNSS has mandated a period of 60 days for framing charge from the first day of hearing, in case where offence is exclusively triable by sessions court. Whereas 263(1) mandates 60 days in trial of warrant cases.
- **E-Trial**: - Section 530 provides a welcoming and technology-driven provision of having trial and proceeding may be conducted through electronic means.
- **Withdrawal from prosecution**: - Section 360 of BNSS provides victims an opportunity to be heard before withdrawal from prosecution. This will help the rape victims to be heard before the court of law, if she is facing some difficulties from accused side.
- **Timeline for disposal of trial and appeal**: - Section 346(1) provides that the inquiry or trial of rape cases shall be made on day-to-day basis and shall be completed within two months from date of filing of chargesheet. Section 415(4) provides that; in rape cases the appeal shall be disposed within six months from the date of filing of appeal.
- **Timeline for Judgement pronouncement**: - Under Section 258 of BNSS, the judge is mandated to pronounce judgement within 30 days (45 days in case of extended period) from the date of completion of all arguments. This depicts the application of guidelines issued in the case of Anil Rai v. State of Bihar.[16]
- **Trial in absentia**: - If the accused is absent from the trial proceeding, the magistrate or judge can pronounce the judgement in the interest of justice.
- **Community Services**: - A new concept of punishment has evolved through BNS and BNSS in the form of "community services" and this can be given in petty offences only, also the offences which provide "community services" as a punishment are mentioned in the BNS. This is not a new concept, various high courts in different occasions deliver such kind of reformative punishments. But to avoid the unlimited reach and discretion of judiciary in such punishment this has been coded under BNS and BNSS.

After looking into various provisions under new criminal laws, it is very clear that the provisions were introduced for the inclusion of victims, speedy trial, inclusion of technology, timely justice delivery system. Most of the changes have been made in the

process of trial, because trial is the most important part in the justice delivery mechanism where justice is delivered.

2. Key Differences in both the Acts

1973 Act	2023 Act
CrPC, "code"	Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023, "sanhita" used in place of "code"
38 chapters (including Ch. VIIA)	38 chapters
528 Sections (484), 2 schedules, 56 forms	533 Sections, 2 schedules, 56 forms
References to IPC	References to BNS

Reference : PIB.gov.in

Apart from the above-mentioned basis difference, there are some other differences which has been discussed in the previous part on detailed manner. The amendments are the key difference and the identical parts of CrPC are provided under different sections of BNSS.

3. Backlog of Cases

There is a pile of cases pending in the criminal courts and the governmental data shows the same, there is no reduction in the pendency of cases. Even when there is a strict and prominent timeline given at various stages in the trial. The fig. 1 below indicates that there is decline in the pendency of cases for the year 2025, but it is important to note that it only indicates for the year itself i.e., in a year how many cases were instituted and, in the very year, how many cases are disposed-off. This means, this does not show the previous years' backlog. This chart only shows the institution and disposal of cases of that year only.off. This means, this does not show the previous years' backlog. This chart only shows the institution and disposal of cases of that year only.

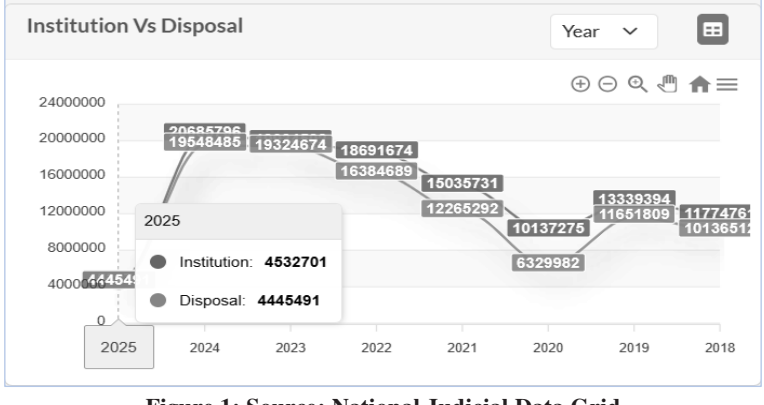


Figure 1: Source: National Judicial Data Grid

To clarify the above chart more clearly, the "National Judicial Data Grid" (NJDG) has also provided the numbers of pendency of cases in March, 2025. The data is presented in the form of chart (fig. 2) and the chart is also taken from the NJDG website.[18]



Figure 2:
Pending Cases – More than 1 year old

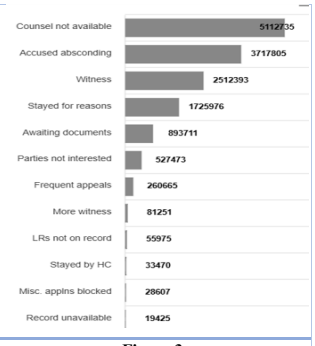


Figure 3:
Reasons for delay in disposal.

Figure 1: Source: National Judicial Data Grid[19]

This chart clearly shows that the pendency of cases up to March, 2025 along with all the backlog criminal cases. There is a contention that the pendency or backlog of cases will decrease, but the data shows the opposite evidence. The other reason for the pendency of cases is that there is a confusion among criminal trial courts about the application of old or new laws in a particular case. This has been clarifying by various high courts. Fig. 3 on the other side, shows the reasons of pendency of criminal cases – "Counsel not available", "accused absconding" and "witness unavailability or hostility" tops the list.

4. Timelines

The BNSS has provided various timelines but it seems that it will act not more than a morally binding statutory literature only. The reason behind is that in the previous law there were also some timelines in the rape offences (2 months), and it was inserted in the year 2013 amendment. But after the amendment has been made the timeline still not followed properly by the courts. It is not possible due to various reasons as follows:

i. Inadequacy of the court personnel.
ii. Lack of required number of fast-track courts.
iii. Infrastructure issues.
iv. Loopholes in the laws.
v. Judges have overburdened.
vi. Lack of proper investigation.

5. No space for Gender Neutrality

BNSS does not identify transgenders as a victim of sexual assault. In the era where the Supreme Court has identified them as third gender. The BNSS has overlook this serious issue. Apart from them, the BNS has only mention that the rape is committed by men against women where there are cases registered by men, who is assaulted by women or men, they have only choice to get their grievance registered under grievous hurt.

6. Other Problems

i. Community Service is a big and debatable issue. It could lead to encourage people to get involved in petty cases. And this is evident that India despite of having stringent laws does not have stringent implementation regime. This loophole would create the imbalance in the society.

ii. Electronic FIRs are another confusing provision. It states that in case of E-FIR, the sign of applicant will be procured within 3 days. But in practicality, the police officers are not efficient enough to go through the E-FIRs properly and on timel y basis. In Madhya Pradesh itself, there is a government record that there is zero (0) E-FIRs registered in the state despite having that the Supreme Court has mentioned way years earlier.

iii. BNSS has failed to procure advantages of alternative dispute resolution in criminal cases. This indicated that this is mere the paint wash of previous criminal law.

iv. Indifference: There are cases where the responsible peoples are not following the criminal law properly, this is because of the many loopholes present in the trial system of India.

7. Opinions of Jurists

As per the various law experts and lawyers, the law on criminal trials (both previous and recent) have create lots of chaos in Indian Courts' as it delays the justice because of confusion. The renowned lawyer Indra Jaisingh has raised the concern over BNSS in six major points which are as follows:[20]

a. In BNSS, only 24 sections have been removed and 23 sections introduced newly. This means that 95% of the BNSS is CrPC. The arbitrary method of passing of new law, where there was no dissent being noticed.

b. Sedition has entered backdoored even in a more stringent manner, only the word has been removed.[21]

c. There is no mandatory to registered FIR for police. In the Sanhita, for the offences of up to seven years of imprisonment it is in the discretion of police to register an FIR after proper investigation. It provides power in the hands of police.

d. Justice is delayed: As there is two laws on criminal trial prevalent at this point of time. If the offence is committed before 1 July, then old criminal laws will apply and if after the date then the new law will apply. It is very important to note that the, it will cause confusion among courts and advocates.

e. Arbitrary detention and abuse of custody.

f. Digital Connectivity is not in every part of the nation and it is not practicable for the forensic evidences in every case and it gives room for manipulations.[22]

CONCLUSION AND SUGGESTIONS

The BNSS has endeavour to revamp the whole law on criminal trial, which is commendable. But apart from the step that has taken, if we look at the new law there are various loopholes present and some provisions are unclear about the application. There is no doubt that the law makers have made the Act with their intellectual capacity, the areas where the provisions are not clear must be filled overtime through addressing the difficulties faced by the trial courts and welcoming opinions from difference experts in the field, so as to cater diversity and it will ultimately be helpful for the country as whole.

On June 26, 2024, Indian Law Minister, Shri Arjun Meghwal announced that the criminal law of India, mainly IPC, CrPC and Indian Evidence Act with BNS, BNSS and BSA respectively.

This was the first time, since 19th century that "the complete overhaul" of the criminal justice system. Home Minister, Shri Amit Shah quoted that, "the fundamental motive behind scrapping all criminal laws and bringing new was to free people from colonial mindset".
It is undoubtedly that Indian criminal justice system needs some amendments and the new criminal laws has come up with the solutions, which is appreciable. On the other hand, the opportunity of revamp the laws are still untapped because majority of the provisions are carbon copy of the previous laws. Indian criminal trial system still has the same structure only the "new branches have grown; the roots are still intact". The amendments that are created in BNSS are insufficient to cater the present difficulties; as we have discussed the government data above, there are piles of cases in which justice is still awaited.
Many jurists have claimed that, the trial process will remain the same only the chaos has increased. It is evident that the police, courts are not prepared to run two different system of criminal process at the same time and before application of new criminal justice system the government has not provided with adequate training to deal with this scenario. But the authors are still very optimistic that these changes in BNSS would be implemented with its true spirit and the government along with the hon'ble Supreme Court come up with the reforms that Indian criminal trial system truly deserves.

Suggestions

There is a new law which governs trial system in criminal matters, but which is still in its adolescent phase. The government and law makers should focus on the loopholes by addressing the suggestions of lawyers not from Supreme Courts and High Courts but from various Districts Courts as well because they are the one who actually deals with the trial cases in the first go. There are some suggestions which authors wants to provide, but the list is not exhaustive:

- The BNSS should welcome the gender-neutral practices so that each citizen despite of their gender would feel safe and protected. The ADR process should be incorporated in petty offences, so as to reduce the overburden of judges.
- The recruitment of judges and government advocated should be taken as a priority basis because one case is just a number for the nation but it is the whole life for both the parties. It will not only burden the judges but it is the burden for the whole country as it deploys resources of the country.
- The infrastructure of the court should be equipped with technological facilities like CCTV (for protection of victims, accused, court staff, prevention of in-court bribery, etc.), metal detectors, finger-print scanner for entry, electronic evidence friendly court room, e-trial facilities, Wi-Fi for e-trials or e-statements of witness or victims, so on and so forth.
- Adjournment[23] due to absence of counsel is the main cause of pendency of cases. The pendency of criminal trial is another form of punishment both for the accused and for the victims, this should be taken with utmost priority. Unnecessary delays must be imposed with cost. Indian courts have experienced absence of counsel in trial for trivial reasons, for instance, "counsel's pet animal is sick" (in the testimony of one advocate from Delhi High Court). The provisions of adjournment are identical in BNSS and CrPC, which raises much concern over the pendency of cases in India.[24]

- Clinical Psychiatry must be there for the convicts and accused of heinous crimes, to ascertain the pattern and root-cause of committing the crime. This has been practised in various countries already.
- Regular sensitisation programmes must be organised for advocates, judges, police to handle sensitive cases. This will help the minor victims, female victims, and trust towards justice system will be restored.
- Strong response for the witness protection must be there. As witness is the most neglected character in the picture of criminal trial but the most important to build a convict or acquittal.
- Courts should focus on the pending cases first, to provide the justice and mitigate sufferings of victims, under-trial convicts, witnesses. There are government data that shows that there are about 58 million cases (more specifically, 34 million criminal cases) are pending in Indian courts.[25]

Department of Law
Dr Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar M.P.
[1]yadavvaibhav.yadav@gmail.com
[2]vikashagrawal.20@gmail.com

Reference

1. The BNS (“Bharatiya Nyaya Sanhita”), BNSS (“Bharatiya Nagrik Suraksha Sanhita”) and BSA (Bharatiya Shakshya Adhniyam) came into force on July 1, 2024
2. Indian Penal Code (IPC) – Act No. 45 of 1860
3. Code of Criminal Procedure (CrPC) – Act No. 2 of 1974
4. Indian Evidence Act (IEA) – Act No. 1 of 1872
5. The Hindu, https://www.thehindu.com/news/national/as-new-criminal-laws-take-effect-from-july-1-legal-community-braces-for-change/article68352331.ece , last visited 1. July. 2024
6. AIR 1973 SC 1461
7. Koneru, A. (n.d.), A Brief note on Utilitarianism : A Study on Bentham and J.S. Mill view, Retrieved October 30, 2024, from https://www.legalserviceindia.com/legal/article-3093-a-brief-notes-on-utilitarianism-a-study-on-bentham-and-j-s-mill-views.html
8. Bhattacharya, A. (2020). Cybercrimes and the challenges of Digital Evidences. Journal of Digital Law, 12(3), 45-60
9. Mukherjee, P. (2017). Colonial Legacies in Indian Criminal Law: Overdue Reforms. Legal Reforms Review, 8(1), 22-36
10. Jones, T., & Smith, R. (2019). Comparative Criminal Procedure: Innovations in the Common Law. Oxford University Press
11. Kumar, A. (2020). Development of Criminal Law in India: The Case for a New CrPC. Indian Journal of Legal Studies, 15(2), 89-110
12. Singh, A. (2022). Criminal Justice Reforms: Lessons from the Commonwealth. Comparative Law Journal, 21(1), 15-30
13. Wahab, M.I. (2024). Flaws in the Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023 (BNSS): A Critical Study. International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR), 6(5), 1-8
14. (2022) 9 SCC 321

15. (2022) 9 SCC 321
16. AIR 2001 SC 3173
17. National Judicial Data Grid (n.d.), Retrieved March 10, 2025, from https://njdg.ecourts.gov.in/njdg_ v3//?p=home/index&state_code=&dist_code=&app_token=e1cf05d830b29ae4b80949ae-cae2baf98ed4c54b9947546077c597caccd7faea.
18. National Judicial Data Grid (n.d.), Retrieved March 10, 2025, from https://njdg.ecourts.gov.in/.
19. National Judicial Data Grid (n.d.), Retrieved March 10, 2025, from https://njdg.ecourts.gov.in/.
20. Jaisingh, I. (2024, 27 June). What is Wrong with the New Criminal Laws? Explained ft. Indra Jaisingh. Retrieved from https://www.youtube.com/watch?v=CkbzVo3FwBw.
21. Section 152 of BNSS.
22. Jaisingh, I. (2024, 27 June). What is Wrong with the New Criminal Laws? Explained ft. Indra Jaisingh. Retrieved from https://www.youtube.com/watch?v=CkbzVo3FwBw.
23. Section 346 of BNSS and Section 309 of CrPC.
24. Thakur, P. (2024, July 3). Why BNSS offers slim hope of early disposal of pending cases. Times of India. Retrieved from https://timesofindia.indiatimes.com/india/why-bnss-offers-slim-hope-of-early-disposal-of-pending-cases/articleshow/111440968.cms.
25. The Hindu Bureau. (2024, September 23). Criminal justice system in India is facing a crisis with 58.4 million pending cases. The Hindu. Retrieved from https://www.thehindu.com/news/cities/Hyderabad/criminal-justice-system-in-india-is-facing-a-crisis-with-584-million-pending-cases/article68674670.ece.

Dropout Crisis in Higher Education: Socio-Cultural and Economic Determinants

Anamika Chauhan

Abstract

Higher education dropout has emerged as a pressing concern for policymakers and institutions, not only because of its academic implications but also due to the underlying inequities rooted in socio-cultural and economic structures. This study adopts a qualitative case study research design based on the analysis of institutional records, policy documents, and reports, examined through thematic and narrative analysis. This paper examines the determinants of dropout through a qualitative and reflective case study approach, guided by inclusion and exclusion criteria and institutional record analysis. Findings indicate that socio-cultural constraints such as caste hierarchies, gender norms, peer influences, and language barriers intersect with economic challenges, including tuition fees, additional charges, and work-related obligations. Together, these factors disproportionately disadvantage marginalized groups—particularly first-generation learners, women, and minority students. The study emphasizes that dropout should not be understood as an individual failure, but rather as a systemic outcome of structural inequalities. Unlike existing quantitative or policy-driven studies, this paper contributes novel contextual and interpretive insights by foregrounding institutional narratives and lived realities of students, thereby enriching theoretical and policy debates on student retention. To address this, the paper proposes a multidimensional set of interventions, including inclusive pedagogy, reform of financial aid mechanisms, strengthened community engagement, and comprehensive policy initiatives. Reducing dropout is therefore critical not only for improving educational outcomes but also for advancing equity, empowerment, and social justice within higher education.

Keywords: Dropout, Higher Education, Socio-cultural determinants, Economic barriers, Equity.

1. INTRODUCTION

Indian higher education has continued to experience significant expansion in the post-pandemic period, particularly between 2022 and 2025, as the sector recovers from COVID-19 disruptions and aligns itself with the transformative vision of the National Education Policy (NEP) 2020. The policy emphasis on access, flexibility, multidisciplinary

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp.129-142
Peer-reviewed biannual Research Journal

education, and digital learning has contributed to a steady rise in enrolment and institutional diversification. Although the most recent editions of the All India Survey on Higher Education (AISHE) for 2022–23 onward are yet to be fully released in the public domain, official statements and policy reviews indicate that India remains among the largest higher education systems globally in terms of student enrolment and institutional spread. This expansion reflects India's broader aspiration to build a knowledge-driven economy and meet Sustainable Development Goal 4, which emphasizes inclusive and equitable quality education. However, alongside quantitative growth, persistent challenges related to equity, access, and student retention continue to undermine the effectiveness of higher education expansion. Student dropout has emerged as one of the most critical concerns in contemporary Indian higher education, particularly at the undergraduate level. Recent policy discussions and parliamentary committee reports (2022–2025) have repeatedly highlighted that enrolment gains alone do not translate into educational success unless students are able to sustain participation and complete their degrees. The dropout phenomenon remains disproportionately concentrated among students from socio-economically disadvantaged backgrounds, including Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), Other Backward Classes (OBCs), first-generation learners, rural students, and women from economically vulnerable households. Recent transition-rate data from school education further illuminate the structural roots of higher education dropout. While access to elementary and secondary education has improved, a substantial proportion of students fail to successfully transition from higher secondary education to colleges and universities. This leakage in the educational pipeline significantly affects higher education participation and disproportionately excludes marginalized groups. Financial insecurity, inadequate academic preparedness, limited digital access, and weak institutional support systems exacerbate this problem, especially in the aftermath of the pandemic, when household incomes and educational continuity were severely disrupted. Although updated AISHE dropout figures for the period after 2022 are awaited, government disclosures covering recent years indicate that tens of thousands of students continue to discontinue higher education annually, with a majority belonging to historically marginalized social groups. Rising educational costs, reduced access to affordable education loans, delays in scholarship disbursement, and increased pressure on students to engage in paid work have further intensified retention challenges. These economic constraints intersect with social factors such as gender norms, domestic responsibilities, early marriage, and linguistic barriers, particularly affecting women and rural learners.

Importantly, dropout in Indian higher education cannot be understood solely through academic indicators such as examination failure or poor performance. Contemporary research and policy evaluations increasingly recognize dropout as a multi-dimensional and systemic issue, shaped by the interaction of socio-cultural, economic, and institutional factors. Students often navigate complex realities involving family obligations, financial stress, caste-based discrimination, lack of mentorship, and feelings of alienation within academic spaces. In this context, higher education institutions may inadvertently reproduce social inequalities rather than mitigate them, despite policy commitments to inclusion and social justice. Theoretical perspectives such as cultural capital and social reproduction remain highly relevant in explaining recent dropout trends in India. Differences in

family educational background, language proficiency, exposure to academic culture, and access to informal support networks continue to influence students' ability to adapt to university environments. Economic pressures—such as high tuition fees, accommodation costs, transportation expenses, and limited institutional aid—further compound these disadvantages, particularly for students from rural and remote regions. As a result, dropout often reflects structural exclusion rather than individual failure. The implications of higher education dropout extend far beyond incomplete degrees. It represents a deeper crisis of unrealized aspirations, wasted public investment, and social exclusion. Students who discontinue higher education frequently face reduced employment opportunities, long-term economic insecurity, and psychological distress, while society bears the cost of underutilized human capital. Therefore, addressing dropout requires moving beyond narrow academic or administrative solutions and instead adopting a holistic, student-centered approach.

To meaningfully address the dropout crisis in the Indian higher education system during the current decade, policy interventions must integrate socio-cultural sensitivity, financial support mechanisms, academic mentoring, and institutional accountability. Only by centering the lived experiences of students and acknowledging the structural constraints they face can higher education fulfill its role as a genuine instrument of social mobility and inclusive development. In this sense, dropout is not merely an educational concern but a broader social challenge that demands urgent, multi-level, and context-specific responses.

In light of this, the present study is guided by the following research questions:

1. What socio-cultural factors contribute to the dropout of students from higher education institutions?
2. How do economic constraints and financial pressures influence students' decisions to leave higher education?
3. In what ways do socio-cultural and economic determinants intersect to shape dropout experiences among students?
4. What insights can be drawn from students' narratives to inform policies and practices aimed at reducing dropout rates in higher education?

2. LITERATURE REVIEW

Student dropout in higher education has emerged as a critical area of academic inquiry in the post-pandemic period, with a growing body of literature examining its structural, socio-cultural, and economic dimensions. Recent studies (2022–2025) emphasize that dropout is not an isolated educational outcome but a cumulative process shaped by institutional environments, social positioning, and material conditions. In the Indian context, this concern has gained renewed urgency due to expanded enrolment under NEP 2020 alongside persistent inequalities in access and retention. Several contemporary studies continue to draw upon Tinto's Student Integration Model to explain dropout behaviour. For instance, post-pandemic research by Kumar and George (2022) found that undergraduate students who reported weak academic interaction with faculty and limited peer engagement were significantly more likely to disengage from their programs. Similarly, Sharma et al. (2023), in a multi-institutional study across North Indian universities, observed that students from

marginalized backgrounds often experienced social isolation despite formal enrolment, supporting Tinto's assertion that inadequate academic and social integration increases attrition risks. However, recent scholars argue that Tinto's model requires contextual adaptation in mass higher education systems like India, where institutional capacity and student diversity have expanded rapidly without proportional student-support mechanisms. Complementing integration-based explanations, recent literature increasingly employs cultural capital and social reproduction frameworks to interpret dropout patterns. A qualitative study by Nair and Prakash (2022) revealed that first-generation learners frequently struggled with academic language, classroom participation, and assessment expectations, leading to feelings of inadequacy and withdrawal. Similarly, Singh and Batra (2024) argue that Indian universities continue to privilege dominant linguistic and cultural norms, placing students from rural and regional-medium backgrounds at a structural disadvantage. These studies reinforce the view that dropout is not primarily a consequence of academic incompetence but of unequal access to cultural and institutional resources. Gender has emerged as a prominent theme in recent dropout literature. Desai and Kulkarni (2023), examining women's educational trajectories in post-COVID India, found that increased domestic responsibilities, caregiving roles, and financial stress contributed to higher discontinuation rates among female students. Another study by Rao (2024) highlights that socio-cultural expectations around marriage and mobility continue to restrict women's sustained participation in higher education, particularly in semi-urban and rural settings. These findings indicate that gendered social norms remain deeply embedded in dropout dynamics despite policy-level commitments to gender equity.

Caste-based exclusion continues to receive sustained scholarly attention in recent studies. Chakraborty et al. (2023) document how Scheduled Caste and Scheduled Tribe students frequently encounter subtle forms of discrimination, such as exclusion from informal academic networks and lack of mentoring, which undermine their sense of belonging. Similarly, a mixed-method study by Meena and Das (2024) reports that experiences of institutional bias and social alienation significantly contribute to dropout intentions among marginalized caste groups. Language barriers further intensify these challenges, as highlighted by Patel (2022), who found that students from regional-medium schooling backgrounds faced persistent disadvantages in English-dominated academic environments. Economic constraints have been identified as a decisive factor in recent dropout research. Studies by Agarwal and Singh (2022) and Verma (2023) demonstrate that rising tuition fees, hostel charges, and digital learning costs have increased the financial burden on students from low-income households. Delays in scholarship disbursement and limited access to education loans have been cited as critical contributors to student discontinuation. Moreover, Khan et al. (2024) observe that students engaged in part-time or informal employment to support their education often experience reduced academic engagement, increasing their likelihood of dropout. First-generation learners emerge as particularly vulnerable, as they lack both financial stability and institutional guidance. Despite the expanding volume of recent research, several gaps persist in the literature. Many studies rely predominantly on quantitative indicators such as enrolment, transition, and completion rates, offering limited insight into students' lived experiences. Qualitative and longitudinal studies that explore how socio-cultural identities, economic pressures,

and institutional practices interact over time remain relatively scarce. Furthermore, as noted by Iyer (2025), few studies integrate classical theoretical frameworks with emerging post-pandemic issues such as digital inequality, mental health stress, and changing family economies.

Consequently, there is a pressing need for qualitative research that foregrounds student experiences, interprets dropout as a socio-cultural and economic process, and generates insights that can inform more responsive policies and institutional reforms. Such an approach can contribute to a deeper understanding of dropout, moving beyond numbers to address the structural inequities that underlie student attrition.

3. METHODOLOGY

The present study adopts a descriptive and analytical research design to examine the socio-cultural and economic determinants of student dropout in Indian higher education, along with their intersections and policy implications. Given the focus on systemic patterns and structural influences, the study relies exclusively on secondary data sources, which provide comprehensive, reliable, and up-to-date information on enrollment, retention, and attrition trends across diverse social and economic groups. The primary sources of data include government reports such as the All India Survey on Higher Education (AISHE, 2022–23), policy documents including the National Education Policy (NEP, 2020), and reports published by NITI Aayog and other educational think tanks. In addition, peer-reviewed empirical studies, journal articles, and scholarly books published post-2020 were analyzed to understand recent trends, contextual challenges, and theoretical insights related to student dropout. These sources provide data on enrollment patterns, socio-economic and demographic profiles of students, financial support mechanisms, institutional infrastructure, and the impact of socio-cultural factors such as caste, gender, language, and first-generation learner status.

The study employs a systematic literature review approach, where relevant secondary sources were selected based on their relevance, currency, credibility, and contribution to understanding dropout in higher education. Data from quantitative reports, such as AISHE and NITI Aayog publications, were examined to identify macro-level trends in enrollment, financial aid, and retention rates across regions, social groups, and gender. Qualitative insights from case studies, institutional reports, and narrative accounts were used to interpret the lived experiences of students, particularly marginalized groups, to highlight the interplay between socio-cultural and economic factors. The analysis triangulates these quantitative and qualitative data to draw comprehensive conclusions about dropout patterns, their underlying causes, and potential policy interventions. By relying on secondary data, this methodology enables the study to capture a broad and multi-dimensional understanding of dropout across diverse institutional, regional, and social contexts, while maintaining methodological rigor through careful selection, cross-verification, and synthesis of credible sources. This approach is particularly suitable for examining structural and systemic determinants that cannot be easily captured through primary data alone, allowing for theoretically grounded and policy-relevant analysis.

Data Sources

The study relies on documentary sources such as institutional records, annual reports,

policy documents, and government surveys. Documents were selected based on predefined inclusion and exclusion criteria to ensure relevance, transparency, and analytical rigor. These sources provide both quantitative indicators of dropout and qualitative descriptions of the contexts in which dropout occurs. To enhance the reliability and richness of findings, the study applies triangulation, drawing on multiple documentary sources across selected cases. This approach allows for a layered interpretation where institutional perspectives intersect with contextual realities.

Data Analysis

Data were analyzed using systematic thematic coding, through which recurring patterns related to caste, gender, language barriers, financial stress, and institutional support were identified. Triangulation across multiple documentary sources was employed to enhance credibility and analytical validity. Narrative analysis was further used to examine how dropout is framed and interpreted within institutional records.

4. RESEARCH GAP AND OBJECTIVES

Despite an expanding body of literature on higher education dropout, most existing studies are predominantly quantitative, focusing on enrolment ratios, completion rates, and policy outcomes. While such approaches provide valuable macro-level insights, they often fail to capture the lived experiences, institutional narratives, and contextual realities that shape students' decisions to discontinue higher education. There is a significant gap in qualitative and interpretive research that examines dropout as a socio-cultural and economic process embedded within institutional structures. Moreover, few studies explicitly integrate theoretical frameworks such as Tinto's Student Integration Model and Bourdieu's Cultural Capital Theory to explain how structural inequalities undermine academic and social integration. This study addresses this gap by offering a reflective, context-driven analysis that foregrounds institutional documentation and qualitative interpretation, thereby contributing novel insights beyond policy-centric and statistical analyses.

5. SOCIO- CULTURE DETERMINANTS OF DROPOUT

Recent scholarship continues to emphasize that socio-cultural factors—particularly caste, class, gender, and language—play a decisive role in shaping student persistence in Indian higher education. Despite policy efforts to widen access, students from Scheduled Castes (SC), Scheduled Tribes (ST), and Other Backward Classes (OBC) remain disproportionately vulnerable to dropout due to entrenched inequalities in social capital and institutional inclusion. Empirical studies indicate that marginalized students often experience subtle forms of discrimination, lack of peer acceptance, and limited access to informal academic networks, which weakens their sense of belonging within university spaces (Thorat & Newman, 2020; Deshpande, 2022). Such exclusionary campus climates frequently translate into disengagement and eventual withdrawal. Socio-economic class further intersects with caste to intensify dropout risks. Students from low-income and first-generation backgrounds typically enter higher education with limited exposure to academic culture, digital infrastructure, and institutional expectations. Recent analyses using AISHE data reveal that financial insecurity, inadequate access to learning resources, and the need to engage in paid work alongside studies significantly undermine academic continuity (AISHE, 2023; Tilak, 2021). The mismatch between students' home

environments and university norms creates structural disadvantages that persist beyond mere financial constraints, reflecting deeper inequalities in cultural capital.

Gendered socio-cultural norms continue to shape educational trajectories, particularly for women students. While female enrolment in higher education has improved in recent years, dropout rates remain high due to expectations surrounding marriage, caregiving, and domestic labor. Studies conducted across northern and central India demonstrate that family pressures and mobility restrictions often interrupt women's academic progression, especially in rural and semi-urban contexts (Kaur & Kapur, 2021; Gupta & Sharma, 2024). In many households, higher education for daughters is still viewed as negotiable or expendable, reinforcing gender disparities in completion rates. Community perceptions and peer environments also exert significant influence on student persistence. In economically vulnerable regions, higher education is frequently evaluated through a cost–benefit lens, where immediate employment is prioritized over long-term educational investment. Recent qualitative studies show that students face discouragement from peers and relatives who perceive prolonged education as risky or impractical, particularly in contexts of unemployment among graduates (Nayak, 2022). Such social pressures can erode motivation and normalize early exit from academic programs. Language and cultural alignment with institutional practices remain critical yet under-addressed challenges. Students educated in regional-medium schools often struggle in English-dominant academic settings, affecting comprehension, assessment performance, and classroom participation. Contemporary research highlights that linguistic disadvantage is closely tied to academic self-doubt and marginalization, especially for first-generation learners (Mohanty & Panda, 2020; Kumar, 2023). These barriers reflect broader cultural hierarchies within higher education that privilege urban, English-speaking, middle-class norms, thereby perpetuating unequal outcomes and higher dropout rates among marginalized groups.

6. ECONOMIC DETERMINANTS OF DROPOUTS

Many research consistently identifies economic vulnerability as one of the most significant determinants of student dropout in higher education. Although enrolment has expanded substantially in India, the financial capacity to sustain participation remains uneven across socio-economic groups. Analysis of AISHE 2022–23 data shows that students from the lowest income quintiles continue to experience the highest attrition rates, particularly in public universities where indirect and non-tuition costs constitute a major financial burden (AISHE, 2023). Expenses related to accommodation, transportation, examination fees, learning materials, and digital access often exceed tuition fees, rendering higher education financially unsustainable for many students from economically weaker sections. The effectiveness of financial aid and scholarship schemes has also been questioned in recent studies. While several central and state-level scholarships aim to support marginalized students, delays in disbursement, limited coverage, and exclusion errors frequently undermine their impact. Empirical evidence indicates that interruptions in scholarship payments are strongly associated with increased dropout, especially among Scheduled Caste, Scheduled Tribe, and minority students who rely heavily on such assistance for subsistence (Deshpande & Ramachandran, 2021; NITI Aayog, 2022). Consequently, financial uncertainty persists throughout the academic year, pushing students to reconsider

continuation.

The compulsion to engage in paid employment alongside studies has emerged as a critical pathway to dropout. Recent longitudinal studies reveal that students from low-income households often undertake part-time or informal work to support both personal expenses and family income, leading to reduced study time, academic stress, and declining performance (Jaysawal et al., 2023; Tilak, 2021). In households facing chronic poverty or sudden economic shocks—such as illness, job loss, or agricultural distress—students are frequently required to abandon higher education altogether to stabilize family livelihoods. These pressures are particularly acute for women students, who must simultaneously negotiate economic constraints and unpaid domestic labor, further limiting their capacity to persist.

The urban–rural divide continues to exacerbate economic disparities in higher education outcomes. Rural students face substantially higher costs due to migration to urban centers for college education. Recent regional studies demonstrate that expenses related to housing, food, commuting, and adjustment to urban living significantly elevate dropout risks among rural and semi-urban students (Kumar & Singh, 2022). In contrast, urban students often benefit from proximity to institutions, stronger social networks, and greater access to flexible employment opportunities, which partially cushion economic strain.

Beyond visible expenditures, the hidden costs of higher education have intensified in the post-pandemic period. The increasing digitalization of teaching and assessment has made access to smartphones, laptops, stable internet connectivity, and online learning platforms indispensable. Recent evidence highlights that digital poverty remains a major contributor to academic discontinuity, particularly among first-generation learners and students from remote regions (UNESCO, 2023; Prakash & Behera, 2024). These costs, rarely accounted for in institutional budgeting, deepen inequalities and silently push students out of the system.

Micro-level case studies further illustrate how economic precarity translates into dropout decisions. Students from agrarian and informal-sector households are especially vulnerable to income fluctuations caused by climate events, market instability, or health emergencies. Such shocks often result in temporary withdrawal that eventually becomes permanent disengagement from higher education (Mubashir et al., 2021; Rao, 2023). Collectively, these findings underscore that dropout is not merely an individual failure but a structural outcome of persistent economic inequality within the higher education ecosystem.

7. INTERSECTIONS OF SOCIAL- CULTURE AND ECONOMIC FACTORS

Recent studies increasingly emphasize that student dropout in higher education cannot be adequately explained through isolated socio-cultural or economic factors; rather, it is the interaction between these dimensions that produces cumulative disadvantage. Intersectional analyses demonstrate that caste, gender, language, and class operate simultaneously to shape students' access to financial resources, institutional support, and academic belonging. Evidence from national-level datasets shows that students from marginalized social groups are overrepresented among economically vulnerable populations, making them disproportionately susceptible to attrition (Deshpande,

2022; AISHE, 2023). These interlocking inequalities create conditions in which socio-cultural marginalization amplifies financial precarity, thereby increasing dropout risks. Caste-based disadvantage continues to intersect strongly with economic deprivation. Recent empirical research indicates that students from SC and ST communities face both discriminatory campus environments and greater dependence on scholarships for survival. Delays or discontinuities in financial aid disproportionately affect these students, as they often lack alternative familial support systems (Thorat & Newman, 2020; NITI Aayog, 2022). Moreover, social exclusion within classrooms and hostels reduces access to informal networks that are crucial for information about fellowships, emergency funds, and academic support. As a result, economic stress is experienced not merely as material scarcity but as a socially mediated process shaped by caste hierarchies.

Gender further compounds these intersecting vulnerabilities. Recent studies highlight that women students from low-income households are more likely to experience dropout due to the convergence of financial insecurity and restrictive gender norms. Families frequently justify discontinuation of daughters' education on economic grounds—such as rising costs or household financial crises—while underlying motivations are rooted in expectations of marriage, caregiving, and domestic labor (Kaur & Kapur, 2021; Gupta & Sharma, 2024). This convergence of gendered cultural expectations and economic rationalizations results in higher attrition rates among women, particularly in rural and semi-urban contexts. Language and first-generation status also play a critical role in reinforcing economic disadvantage. First-generation learners educated in regional-medium schools often face academic difficulties in English-dominated institutions, leading to poor performance and reduced eligibility for merit-based scholarships. Recent qualitative studies show that linguistic marginalization limits students' confidence in seeking financial or academic assistance, thereby intensifying both cultural alienation and economic vulnerability (Mohanty & Panda, 2020; Kumar, 2023). In this sense, language operates as a bridge between socio-cultural exclusion and material deprivation.

Micro-level institutional studies and student narratives further reveal how these intersecting factors manifest in everyday academic life. Students from rural, low-income, and marginalized caste backgrounds frequently report withdrawing within the first year due to the combined pressures of unaffordable urban living, lack of institutional guidance, and experiences of social humiliation. Similarly, economic shocks such as job loss, health emergencies, or agricultural distress often trigger dropout, but their impact is magnified among socially marginalized groups who lack protective social capital (Rao, 2023). These findings reinforce the understanding that dropout is not the outcome of isolated disadvantages but the result of structurally produced intersections of socio-cultural and economic inequality within higher education.

8. DISCUSSION

This study examined student dropout in higher education through the lens of socio-cultural and economic determinants, guided by four interrelated research questions. The discussion demonstrates that dropout is not the result of isolated individual choices but a structurally produced outcome shaped by unequal access to resources, institutional exclusion, and differential integration within higher education systems. By aligning the findings with

established theoretical frameworks, the analysis offers a deeper understanding of how persistence and attrition are socially patterned. With respect to the first research question, the findings indicate that socio-cultural factors such as caste-based marginalization, gender norms, linguistic disadvantage, and first-generation status play a critical role in shaping students' likelihood of persistence. Students from marginalized social backgrounds frequently experience social exclusion, limited interaction with faculty, and difficulties in adapting to dominant academic cultures. These experiences weaken both academic and social integration, which Tinto's Student Integration Model identifies as essential for student persistence. From a Bourdieusian perspective, such challenges reflect unequal distribution of cultural capital, where students lacking familiarity with institutional norms, academic language, and symbolic recognition struggle to convert access into meaningful participation, thereby increasing the risk of dropout. In addressing the second research question, the study finds that economic constraints and financial pressures significantly influence students' decisions to discontinue higher education. Rising indirect costs, delays in scholarship disbursement, and the need to engage in paid employment alongside studies disrupt academic engagement and continuity. Financial hardship limits students' ability to participate fully in campus life, reducing opportunities for interaction and support. Within Tinto's framework, these pressures indirectly undermine persistence by weakening institutional integration, while Bourdieu's concept of economic capital helps explain how unequal material resources constrain students' capacity to sustain educational participation. Economic vulnerability thus emerges as a structural condition rather than a temporary or individual-level problem.

The third research question highlights the intersection of socio-cultural and economic determinants, revealing that these factors operate simultaneously and reinforce one another. Caste, class, gender, and language intersect to produce compounded disadvantages that intensify dropout risks. Students from marginalized caste and low-income backgrounds often face both financial precarity and discriminatory institutional environments, while women students encounter the dual pressures of economic insecurity and restrictive gender norms. Intersectionality theory provides a useful framework for understanding these layered experiences, demonstrating that dropout cannot be attributed to a single cause but must be understood as the outcome of overlapping systems of inequality that shape students' educational trajectories. Insights drawn from students' narratives, in relation to the fourth research question, further illuminate the gradual and process-driven nature of dropout. Students' accounts reveal that withdrawal from higher education is often preceded by prolonged experiences of academic struggle, financial stress, social isolation, and emotional distress. These narratives align with theoretical perspectives that view dropout as a longitudinal process rather than an abrupt decision. They also expose the limitations of policy approaches that focus narrowly on enrolment expansion or merit-based support, while overlooking the everyday realities faced by marginalized students within institutional settings. The theoretical alignment of the findings underscores that dropout in higher education is a consequence of structurally embedded inequalities rather than individual failure. Tinto's emphasis on integration, Bourdieu's analysis of capital and habitus, and intersectional perspectives together provide a comprehensive framework for understanding why certain groups of students remain disproportionately vulnerable to

attrition. The discussion suggests that reducing dropout requires systemic and inclusive institutional reforms that address financial insecurity, cultural exclusion, and unequal access to support mechanisms. Only by recognizing and responding to the complex social contexts of students' lives can higher education institutions move toward equity in participation and completion.

9. POLICY AND PRACTICE IMPLICATIONS

The findings of this study have important policy implications when viewed in the context of recent educational reforms, particularly the National Education Policy (NEP) 2020, which places equity, inclusion, and student retention at the center of higher education transformation. While NEP 2020 has successfully emphasized widening access through increased enrolment, flexible curricular structures, and multiple entry–exit options, the present analysis suggests that these measures must be complemented by stronger retention-focused strategies. Policies should move beyond access-oriented metrics and explicitly prioritize persistence and completion, especially for students from marginalized socio-cultural and economic backgrounds. In alignment with NEP 2020's commitment to inclusive education, the study underscores the need for robust institutional support systems for first-generation learners, students from Scheduled Castes, Scheduled Tribes, minority communities, and economically weaker sections. Timely disbursement of need-based scholarships and fellowships is critical, as financial uncertainty remains a major driver of dropout. Strengthening grievance redressal mechanisms and simplifying administrative procedures can further ensure that disadvantaged students are able to access financial and institutional support without procedural exclusion. The emphasis of NEP 2020 on academic flexibility and multidisciplinary education also carries implications for dropout reduction. While multiple exit and re-entry options offer students alternatives during periods of economic or personal crisis, this flexibility should be accompanied by structured academic mentoring and counseling. Without such support, flexible exits may inadvertently normalize early withdrawal among vulnerable students rather than facilitating re-entry. Institutions must therefore embed mentoring, bridge courses, and language support programs within the flexible framework envisioned by NEP 2020 to ensure meaningful continuity in learning.

The study also highlights the relevance of NEP 2020's focus on technology-enabled education and digital inclusion. As digital platforms become integral to teaching, assessment, and student services, policies must address digital inequality through subsidized devices, affordable internet access, and campus-based digital infrastructure. Inclusion initiatives should explicitly recognize digital access as a prerequisite for academic participation, particularly for rural students and those from low-income households, to prevent technology from becoming a new source of exclusion.The findings suggest that the success of NEP 2020 and related inclusion initiatives depends on their ability to address the intersection of socio-cultural and economic disadvantages that shape dropout experiences. Policy interventions must therefore adopt a holistic approach that integrates financial assistance, academic support, psychosocial services, and inclusive institutional cultures. Such an approach is essential for translating the goals of NEP 2020 into sustained participation and equitable outcomes in higher education.

10. CONCLUSION

The higher education dropout crisis is not merely an academic challenge but a multidimensional problem shaped by socio-cultural and economic factors. Research suggests that caste differences, gender disparities, language barriers, and cultural alienation often intersect with financial strains such as tuition fees, penalty charges, and family economic pressures to influence student discontinuation. These overlapping disadvantages are particularly pronounced among first-generation learners, women, and minority students, making dropout a reflection of deeper structural inequities in higher education.

Addressing this issue requires action at multiple levels. Institutions must adopt inclusive pedagogies, provide effective mentorship, strengthen responsive support services, and ensure timely and adequate financial assistance. At the same time, broader community engagement and family awareness are essential to reducing cultural pressures that discourage persistence, especially for women and rural students. Long-term solutions must be driven by policy reforms that include subsidies, affirmative action, and expanded student-support mechanisms.

Ultimately, reducing dropout rates is not only about improving completion figures but also about advancing equity, empowerment, and social justice. Only when higher education becomes inclusive and responsive to the diverse realities of students can it fulfill its transformative role in society.

Chaman Lal Mahavidhyalya
Landhaura, Haridwar, Uttarakhand
chauhanana6252@gmail.com

References

1. *Agarwal, S. & Singh, R. "Financial Constraints and Student Retention in Indian Higher Education Institutions," Journal of Educational Planning and Administration, Vol. 36, No. 4, 2022, pp. 421–437.*
2. *All India Survey on Higher Education. AISHE 2022–23, Ministry of Education, Government of India, 2023.*
3. *Chakraborty, S., Banerjee, M. & Roy, A. "Caste, Belonging, and Persistence in Indian Universities: Experiences of SC/ST Students," Economic and Political Weekly, Vol. 58, No. 32, 2023, pp. 45–52.*
4. *Desai, N. & Kulkarni, P. "Gendered Disruptions in Higher Education: Women Students in Post-Pandemic India," Indian Journal of Gender Studies, Vol. 30, No. 2, 2023, pp. 215–232.*
5. *Deshpande, A. The Grammar of Caste: Economic Discrimination in Contemporary India, Oxford University Press, 2022.*
6. *Deshpande, A. & Ramachandran, R. "Is Affirmative Action Working? Caste, Gender and Access to Higher Education in India," Economic and Political Weekly, Vol. 56, No. 8, 2021, pp. 45–53.*
7. *Gupta, N. & Sharma, S. "Gendered Pathways and Persistence in Indian Higher Education: A Socio-Economic Analysis," Journal of Gender Studies, Vol. 33, No. 2, 2024, pp. 187–201.*
8. *Hasan, Z. & Menon, R. Unequal Citizens: A Study of Muslim Women in India, Oxford University Press, 2004.*

9. *Iyer, R. "Rethinking Student Dropout in Indian Higher Education: Integrating Theory with Post-Pandemic Realities," Journal of Higher Education Policy and Management, Vol. 47, No. 1, 2025, pp. 89–104.*
10. *Jaysawal, N., Kumar, P. & Singh, R. "Working While Studying: Economic Stress and Student Attrition in Indian Universities," Higher Education for the Future, Vol. 10, No. 2, 2023, pp. 201–219.*
11. *Kaur, R. & Kapur, D. "Education, Marriage and Mobility: Constraints on Women's Higher Education in India," Contemporary South Asia, Vol. 29, No. 3, 2021, pp. 375–389.*
12. *Khan, M. A., Ansari, S. & Qureshi, F. "Part-Time Employment and Academic Engagement among First-Generation College Students in India," Higher Education for the Future, Vol. 11, No. 1, 2024, pp. 63–79.*
13. *Kumar, A. "Language, Identity and Exclusion in Indian Higher Education Classrooms," Journal of Educational Sociology, Vol. 15, No. 1, 2023, pp. 55–71.*
14. *Kumar, R. & George, A. "Academic and Social Integration as Predictors of Undergraduate Persistence in Indian Universities," Journal of Educational Studies, Vol. 18, No. 3, 2022, pp. 201–218.*
15. *Kumar, S. & Singh, V. "Rural–Urban Disparities in Higher Education Participation and Retention in India," Indian Journal of Social Development, Vol. 22, No. 1, 2022, pp. 89–105.*
16. *Majumdar, M. Education and Social Change in India, Orient BlackSwan, 2011.*
17. *Meena, R. & Das, P. "Institutional Climate and Dropout Intentions among Marginalized Students in Indian Higher Education," International Journal of Educational Development, Vol. 98, 2024, Article 102745.*
18. *Misra, P., Verma, S. & Raghuram, R. "Migration, Education and Inequality: Rural Students in Urban Universities," Indian Journal of Human Development, Vol. 8, No. 2, 2014, pp. 203–218.*
19. *Mohanty, A. K. Multilingualism of the Unequals and Predicaments of Education in India, Multilingual Matters, 2006.*
20. *Mohanty, A. K. & Panda, M. "Language Disadvantage and Educational Exclusion in India," Language and Education, Vol. 34, No. 5, 2020, pp. 453–470.*
21. *Mubashir, K., Ali, S. & Ahmad, F. "Economic Shocks and Higher Education Dropout among Agrarian Households," Journal of Rural Development, Vol. 40, No. 3, 2021, pp. 412–428.*
22. *National Education Policy. National Education Policy 2020, Ministry of Education, Government of India, 2020.*
23. *Nayak, P. "Aspirations, Employment Anxiety and Dropout Decisions among Indian Youth," Youth Studies India, Vol. 6, No. 2, 2022, pp. 67–83.*
24. *NITI Aayog. Financing Higher Education in India: Challenges and Opportunities, Government of India, 2022.*
25. *Patel, D. "Language, Power and Exclusion in English-Medium Higher Education Classrooms in India," Language and Education, Vol. 36, No. 5, 2022, pp. 421–435.*
26. *Prakash, J. & Behera, D. K. "Digital Poverty and Learning Inequality in Post-Pandemic India," International Journal of Educational Development, Vol. 102, 2024, Article 102865.*
27. *Rao, S. "Student Vulnerability and Attrition in Indian Public Universities: An Institutional Perspective," Higher Education Policy, Vol. 36, No. 4, 2023, pp. 589–606.*
28. *Rao, S. "Education, Marriage and Mobility: Gendered Pathways of Higher Education Discontinuation in India," Contemporary Education Dialogue, Vol. 21, No. 1, 2024, pp. 55–71.*

29. *Sharma, P., Verma, S. & Joshi, K. "Student Engagement and Attrition in Public Universities: Evidence from North India," Indian Journal of Higher Education Research, Vol. 5, No. 1, 2023, pp. 29–44.*

30. *Singh, A. & Batra, R. "Cultural Capital and Institutional Belonging in Indian Universities," Sociological Bulletin, Vol. 73, No. 1, 2024, pp. 96–113.*

31. *Spiel, C., Schober, B. & Strohmeier, D. Supporting Vulnerable Students in Education, Springer, 2018.*

32. *Thorat, S. & Newman, K. S. Blocked by Caste: Economic Discrimination in Modern India (2nd Ed.), Oxford University Press, 2020.*

33. *Tilak, J. B. G. "Financing Higher Education in India: Trends and Challenges," Social Change, Vol. 51, No. 1, 2021, pp. 1–19.*

34. *Tinto, V. Leaving College: Rethinking the Causes and Cures of Student Attrition (2nd Ed.), University of Chicago Press, 1993.*

35. *UNESCO. Global Education Monitoring Report: Technology in Education, UNESCO Publishing, 2023.*

36. *Verma, N. "Rising Costs and Student Dropout in Indian Higher Education," University News, Vol. 61, No. 12, 2023, pp. 7–14.*

Deconstructing Female Identity Politics: Philosophical Intersections in the Works of Beauvoir, Wittig, Butler, and Irigaray

Ravi Bhatt[1], Nipun Chaudhary[2]

Abstract

Contemporary feminist theories challenge the notion of an essential gender identity by revealing the inherent duplicity, dualism, and performative nature embedded within the concept of sex. Gender, therefore, is perceived as a mere facade that veils the rawness of sexuality. The subversion and displacement of binary oppositions are not only conceivable but imperative. Gender is portrayed as a constructed illusion, meticulously perpetuated by patriarchal structures to maintain masculinity as a coherent, universal, and dominant identity—one that contests, negates, and undermines the existence of its counterpart, namely, the female. The ennui experienced by women, a result of the phallogocentric framework underpinning cultural hierarchies, is a focal point for new-wave feminists. Feminism is replete with profound concerns and extensive issues rigorously examined, contextualized, scrutinized, and deconstructed by feminist scholars and intellectuals with emotional intensity. The historical narrative of humanity has predominantly showcased a singular dimension of the female spectrum—as the 'Other,' an alternative, a secondary non-primary self. This research article explores the complex and multifaceted deconstruction of female identity politics by examining the Philosophical intersections and divergence in the work of Simone de Beauvoir, Monique Wittig, Judith Butler, and Luce Irigaray. The analysis aims to understand the approach of each of the philosophers in question on the prevalent ideas of gender and identity, contributing new insights into how femininity is constructed and how it subverts patriarchal standards.

Keywords : Postmodernism, male hegemony, universal epistemology, phallogocentric discourse, feminism

Introduction

The discourse of contemporary feminist theories has radically transformed the understanding of gender and identity, challenging long-held notions of inherent truths and essentialist perspectives. By dissecting the constructs of sex and gender, feminist scholars such as Simone de Beauvoir, Monique Wittig, Judith Butler, and Luce Irigaray reveal the performative and constructed nature of these identities, exposing the dualistic and deceptive narratives that have long been upheld by patriarchal systems. Through a critical

examination of these theorists' works, one uncovers a concerted effort to deconstruct the binary oppositions that have historically framed gender relations, underscoring the illusion of gender as a mere tool used to uphold masculinity as the primary, dominant identity.

This patriarchal narrative perpetuates a cultural hegemony that not only marginalizes the female but also imposes a phallogocentric order, resulting in the systemic ennui and disenfranchisement of women. The new wave of feminist thought thus seeks to unravel these deeply ingrained structures, advocating for a more nuanced understanding of identity that transcends simplistic binaries and acknowledges the complex spectrum of human experience. As feminism continues to evolve, it remains replete with intense debates and reflections, offering a dynamic critique of the historical and cultural constructs that have confined women to the role of the 'Other,' an alternative identity relegated to the margins of societal recognition. This intellectual journey challenges us to rethink the very foundations of identity politics, advocating for a more inclusive and equitable framework that recognizes and celebrates diversity in all its forms.

Contemporary feminist theories reverse the claim of true gender status by exposing the inner duplicity, dualism and performative disposition of the concept of sex. Gender is a mere garb that clothes the nakedness of sexuality. The subversion and displacement of binary dualities are possible. Gender is an illusion that is nourished by the patriarchal society to preserve masculinity as a coherent, universal and master identity contesting, forfeiting and mitigating the existence of the other, i.e., the female. Judith Butler argues about the prevalent discourse of patriarchy deriving logic for domination over the other sex through the binary classification:

> The binary relation between culture and nature promotes a relationship of hierarchy in which culture freely “imposes” meaning on nature, and, hence, renders it into an “Other” to be appropriated to its limitless uses, safeguarding the ideality of the signifier and the structure of signification on the model of domination (Butler 37).

Feminists have charged Foucault for delimiting the scope of feminist analysis by remaining neutral in discussion and laying less stress on the falsity of binary division and, in a way, Foucault’s neutrality extends towards materialistic feminism and especially that of Wittig who also targets Foucault on the scale of division of power or monopoly on the gender issues. Wittig, like Foucault, challenges the norm of the hegemony of heterosexuality. Notably, Wittig furthers her argument in agreement with Foucault’s idea of neutrality or a neutral space of identity by an implication that if the notion of heterosexuality and its surveillance over the sexual life of an individual dissipates, then the strategic categorization or the conflict of sex becomes ineffective. Irigaray opines that language is the best medium for a blunt confrontation with the discriminatory practices designed by patriarchy. However, as far as Irigaray’s entrustment in linguistic discourse is concerned, she seems to share some proximity with materialist feminists like Wittig. Margaret Whitford comments on Irigaray’s writing style:

> Her work is offered as an object, a discourse for women to exchange among themselves, a sort of commodity, or as the sacrifice on which sociality is built. Instructions for use of Irigaray would include the message: Do not consume or devour. For symbolic exchange only (Whitford 52).

Beauvoir and the Existential Foundations of Gender

De Beauvoir argues that female attire and profile disposition have been designed to restrain activity. The feminine charm is more of a contrived charm, specially designed to keep her buckled or hooked. The mystic charm, replete with feminine physical delicacy has brought about her being evaluated by and esteemed for her appearance more than man, regularly to the exclusion of everything else, and has additionally incited the dread and fear of otherness. In The Second Sex (1949), Simone de Beauvoir explores the concept of "the Other" as a fundamental aspect of the oppression of women. She writes: “He is the Subject, he is the Absolute—she is the Other” (de Beauvoir 6). This quote encapsulates de Beauvoir's argument that men have historically been positioned as the default, primary subjects in society, while women have been relegated to the status of "the Other," defined as men and lacking an independent, autonomous identity. This construction of "the Other" underpins the systemic inequality and marginalization experienced by women. Indeed, even in this as far as anyone knows unbiased, free and dynamic culture femaleness is as yet upsetting enough to require supervision and regulation by types of order that men are not exposed to. The narrative of female liberation and expanding self-assurance is blurred by the proceeding with the nearness of prohibitive beliefs assured for womanhood however women need to rehash themselves against the cultural and social changes in their lives.

The postmodernist argument defines the human being as a split, multifarious, dynamic, and relational and above all a discursive identity. Illogical relations constitute identity. The discourse as an agent of ideological distribution of power channels the course of social life and society, in particular, forms the notions of coherence and continuity to create an ordered and symmetrical social life. In contrast to contemporary theorists, Beauvoir’s overt indulgence and focus on the disembodiment of female consciousness and breakage or rift from masculinity infuses a tension within the female consciousness. Beauvoir’s idea of the construction of a free body, more precisely, a body within a body splits the female skin from its essence and consequently, if a woman is measured on the scale of the amount of corporeality she contains, she can never exist freely. The mind/body duality focuses on gender inequality. Judith Butler contests Beauvoir’s argument in the following statement. The discursive construction of “the body” and its separation from “freedom” in Beauvoir fails to mark along the axis of gender the very mind/body distinction that is supposed to illuminate the persistence of gender asymmetry (Butler 12).

Peremptorily Beauvoir states her convicted belief in overlapping the status of binary dualities. Clamoring for the essential subjectivity of the female, she overruns her conviction by discrediting the essential subjectivity from its (feminine) canned or personal attributes and thus consequently rendering the subject (the female) an abstract status by repositioning the female to the fixed binary division. Ironically, Beauvoir’s critique of an

alliance between the essential feminine and the existential feminine resigns the female to an alien sphere. Butler argues that "This association of the body with the female works along magical relations of reciprocity whereby the female sex becomes restricted to its body, and the male body, fully disavowed, becomes, paradoxically, the incorporeal instrument as an ostensibly radical freedom" (11). Argumentatively the mind, often relegated to the male consciousness, has the power over the body, just as the neurons dictate the various organs of the body to function appropriately and regulate the body's tempers; it is quite symptomatic of the justification of the male hegemony over the female body. The concept of dominant/ universal male hegemony is celebrated by the acclaimed philosophers of the grey ages to the present time.

Invariably Plato, Descartes, Husserl, and existential exponent Sartre all displayed their interest in male subjectivity 'The cultural associations of mind with masculinity and body with femininity are well documented within the field of philosophy and feminism' (12). If Beauvoir laments for the unsuccessful interaction, organized and sanguine confabulation and unified signification between the two sexes, Luce Irigaray, on the other hand, questions the very structure of signification that is grounded in the male premises and is regulated by the masculine subjectivity. Explicitly Irigaray focuses on decentralizing the threshold of masculine subjectivity. Butler undermines Irigaray's argument in the following statement:

> Although Irigaray broadens the scope of feminist critique by exposing the epistemological, ontological and logical structures of a masculinist signifying economy, the power of her analysis is undercut precisely by its globalizing reach (Butler 13).

Irigaray subverts the ontological episteme established by various branches of knowledge for sustaining faith in the monologic masculine discourse. Irigaray bases her argument on the indictment that the sex or the concept of sex is confined to masculinity and it is generally assumed that there exists only a single universal sex that defines and confirms its existence through the dominated other. Thus, heterosexuality is assigned as the only singular, rational and possible residence for the entire human race. The gendered ontology and phallic ratiocination maintain the argument that the subject can be interpreted and comprehended only through the facade of gender discrimination. Another celebrated postmodern feminist critic Jacqueline Rose grounds her argument in the belief that the exclusion prepares a basis for repression; it delimits the scope of the subject to operate freely along the chain of signification: "Rose is no doubt right to claim that every identification, precisely because it has a phantasm as its ideal, is bound to fail" (Butler 55).

Wittig and the Materialist Rejection of "Woman"

Ironically the fallacy of representation opines that the woman serves as an agent who alters and gratifies the homosexual desires of the male. In her 1981 essay "One Is Not Born a Woman," Monique Wittig critiques the category of "woman" as a socially constructed and oppressive category. She writes: "There is no sex. There is but sex that is oppressed and sex that oppresses. It is oppression that creates sex and not the contrary" (Wittig 11). This quote illustrates Wittig's argument that the category of "woman" is not a natural or inherent identity but rather a product of social and political structures of oppression. For Wittig, "woman" is a category that exists only about its counterpart,

"man," within a system that oppresses women by defining them as fundamentally different from and subordinate to men. The subjugation of the woman is initiated through her misrepresentation as a medium of pleasure. Julia Kristeva decentralizes the phallogocentric logic of compulsive heterogeneity and for her, the female sex exists beyond the material cognition of patriarchy or the symbolic network of power relations. Judith Butler adds an insight to Kristeva's proposition that true liberty is a never-fulfilling task; true liberty is nothing more than a farce. Undoubtedly all the assumptions concerning unified, coherent identities turn superfluous since both mind and body are constructed socially. "The culturally constructed body will then be liberated, neither to its "natural" past, nor to its original pleasures, but to an open future of cultural possibilities" (Butler 93).

Butler and the Performative Turn

Hegelian model of self-realization/ recognition is further popularized by Marx and Lukacs who purport that [I] is split originally, i.e., [I] functions both as an object and as a subject and works along the free play of signification. Thus, any effort to deduce eternal meaning is self-defeating. The destiny of [I] is designed by the western epistemology. Consequently, [I] as a subject and as an object is never free and is imprisoned in an ever-shifting logic. That is the reason Foucault promotes the free play of signification of the categories of sex. Simone de Beauvoir made a clear distinction between sex/ gender and assigned variant spaces to both hence Beauvoir was charged by Wittig, the materialist feminist, who affirms that sex is not natural, but a political variant, used for the reproductive process. Wittig argues "There is no reason to divide up human bodies into male and female sexes except that such a division suits the economic needs of heterosexuality and lends a naturalistic gloss to the institution of heterosexuality." (Butler 112)

According to Wittig, a lesbian transgresses the domain of heterosexuality and becomes a non-identity, since she does not conform to the dual categories allocated for both sexes. Retroactively Butler targets Wittig's assertion of straight mind/ body heterosexual signification by positing that all structures overlap and intermingle in each other and the gist of homosexuality is all pervasive and flows through the universal heterosexuality. Thus, an assertion concerning absolute identities is a farce since the power is ever-shifting. In a way, Butler contends Wittig's argument appealing for destroying male hegemony through the propagation of lesbianism. Conversely, heterogeneity as a compulsory mode of domination is rejected by psychoanalysts since heterosexuality does not promise coherent sexuality.

Wittig's argument reifies her assertion that the ontological categorization enslaves women to a relatively subordinate position and only through an operational unimpeded non-signification; the biologically defined female, i.e., through optimum utilization of her corporal resources, can obtain a status equivalent to her counterpart, i.e., the male. However, Butler decentralizes Wittig's argument by countering that the ideal for obtaining true liberty is self-deceptive. She contends "If subversion is possible, it will be a subversion from within the terms of the law, through the possibilities that emerge when the law turns against itself and spawns unexpected permutations of itself" (Butler 93).

Interestingly Foucault intersects Butler and Witting's ideologies regarding the construction of gender identity and relatively appears near Wittig's materialistic divergence and affirms that the female body and its value are designed and determined through the network of power relations. However, Foucault stands in contradiction to Witting's assertion that the reproductive process, in a utilitarian context, uplifts the status of the female and he contends that the maternal body is subservient to and governed by the power structures of society thus he discredits the maternal role from its advocated utility. "The maternal body will no longer be understood as the hidden ground of all signification, the tacit cause of all culture. It would be understood, rather, as an effect or consequence of a system of sexuality in which the female body is required to assume maternity as the essence of its self and the law of its desire" (Butler 92).

Butler opines that to augment further discussion on Confederate politics, the dynamics of contradiction must be established with a positive gesture. The fictionally constructed space between the two sexes is unnatural. It may be referred to as the space of desire, a space constructed intentionally to subordinate and displace the other. A woman is a fictional space for the male and her body is the medium through which the masculine desire is gratified. As the desiring subject, the male becomes the nucleus whereas the female assumes the shape of the desired object and her social image remains pawned to the gaze of the masculine regime. Interestingly Foucault analyzed and explored the sexual identity as a cultural construct and he disapproved of all the theories regarding the natural functioning of biological systems Butler radicalized and advanced Foucault's ideas by adding that the sexual identity is not merely a cultural construct but also a systematized process, and a developmental process of formation, focusing on the centrality of heterosexuality.

Gender ideologies construct and assign specific roles for both the sexes and a judicial, accommodated and socially referred (role) enactment is stamped as authentic only by the society. The poststructuralists look awry towards the existential philosophers who, blatantly, conflated the ego of the individual by virtually concocting a nucleus within the subject and centralized the working of the human mind and suggested an optimal hope that the element of alienation, (that Freud purported is imbued within the human psyche), is external to human nature. There have been several developments in ideology regarding the role of each gender in the social functioning of life. Various scales of gender ideology mark a division between male and female. According to the traditional gender ideology, the female for being biologically less capacitated belongs to the domesticity and her magical/ mysterious charm renders life and liveliness to her family thus the control of home and social affairs rests in the hands of the male since he operates outside the home and provides economic security to the family. Contrarily the egalitarian ideology interrogates the biased discourse by maintaining that power is and should be equally distributed for each gender. The transgender community received an impetus from this ideology and raised the slogan of annihilation of gender categories or fairly dividing the gender by deconstructing the logic of binary division. Transitional ideology is a relatively advanced development that upholds the belief that the female is imbued with a heroic temper thus she can efficiently operate within and outside the domestic sphere of life. However, the transitional ideology emphasizes that home is the privileged place for a woman, in Lacanian terms; a privileged

signifier thus the female is free to work outside the domain of domestic life but the prime focus for her (my italics) should remain home.

Freud's lineage of castration corresponds to Lacan in developing the narrative of the oedipal complex and the latter expounds that all gendered controversies originate from the oedipal complex and converge to the point of contention between the two sexes. Desire flies on a metonymical plane and never remains static thereafter it reassumes another shape and gives birth to another unaccomplished desire. Female sexuality/ desire can be juxtaposed with the movement of the pendulum; a constant development of psychic energy; an uncontrollable entity and above all, a threat to masculine dignity. Markedly Lacan, to the great disillusionment of the feminists, accepted that the difference between masculinity and femininity is not unnatural; it is a real difference. Lacan was fiercely condemned for his supposed antagonism against the female sect but he furthered his argument by positioning women in a dignified space by allocating her at a differential space to the male.

Indian Contextual Anchoring

While Judith Butler critiques gender as a regulatory fiction in the Western context, Indian feminists such as Nivedita Menon argue that law and state power reproduce similarly exclusionary gender categories in postcolonial India, especially in relation to trans and intersex persons. Menon on *Gender Performativity in Law and Culture* says: "Law itself is a gendering institution, producing certain kinds of gendered subjects as legible and others as unintelligible." (Menon, 2012, p. 95) Sharmila Rege's work reminds us that gender cannot be theorized in isolation from caste, thus complicating Western feminist categories. She says: "The feminist challenge lies in recovering the histories of the everyday resistance of women at the intersections of caste, class, and gender." (Rege, 2006, p. 14) Uma Chakravarti, on the other hand, has worked on social orders. She says about the historical construction of women in *Brahmanical Patriarchy* that: "The Brahmanical social order constructed women primarily as sexual/reproductive beings whose sexuality had to be tightly controlled to ensure caste purity." (Chakravarti, 1993, p. 579) Kavita Krishnan on *Gender and Trans Rights in Contemporary* India suggests that: "We need to understand that the struggle for gender justice includes the right to self-identify — for women, for transgender people, for all those whose bodies and desires defy normativity." (Krishnan, 2020)

The above insights show that in the Indian context, gender cannot be separated from systems of caste, law, religion, and colonial-modern statecraft, making it a deeply social, historical, and intersectional construct that is both performed and regulated. While Butler's theory of performativity lays the groundwork for understanding gender as constructed and unstable, Indian feminists go further by embedding gender in structural inequalities and historical legacies—especially caste, colonialism, and legal violence. These thinkers reveal that performativity alone is insufficient without accounting for material and institutional forces that shape who is allowed to exist, resist, or be recognised.

Irigaray and the Psychoanalytic Feminine

In her 1977 book *This Sex Which Is Not One*, Luce Irigaray explores the concept of sexual difference and critiques how it has been understood in Western philosophy and psychoanalysis. She writes: "Sexual difference is probably the issue in our time which could be our 'salvation' if we thought it through" (Irigaray 5).

This quote reflects Irigaray's argument that rethinking sexual differences is essential for challenging the dominant patriarchal structures that have historically marginalized women. She emphasizes the need for a new understanding of sexual difference that acknowledges and values the distinctiveness of women's experiences and identities, rather than subsuming them under male norms and standards.

Kristeva, Irigaray, and Helen Cixous all agree that phallogocentric is the fountainhead of prevalent gender contention and these scholars accuse patriarchy and Western metaphysics of perpetuating the conflict. Kristeva opines that women act as nomads and frenzied persons and are usually treated as outsiders to male-dominated discourse, for two reasons: the predominance of drives related to anality and childbirth, and their marginal position in masculine culture. New feminists derive intellectual inspiration from existentialist Simone de Beauvoir, claiming that the locale is centered on women's otherness as Jacques Lacan focuses on symbolic order and its internalization, Jacques Derrida's theory of deconstruction annihilates dualistic thinking.

Feminist scholars seem to agree on the principle that constructing knowledge about women, with them as the focal point, is a high priority in the quest to end women's oppression. Feminist thinkers carry high the lantern of their thought process, wrapped in the veneer of critical discourse delineated by the aforementioned scholars and report their disbelief in sexually biased ideology. Feminism has radically altered the face of scholarship. The insistence is focused on hearing the voice of the woman in all its gaiety. Ursula King states that both men and women are in search of "wholeness", and "a sense of meaning and purpose which can direct their thought and action" (King 6). Feminism is replete with contentious issues that are assiduously studied, contextualized, deconstructed and wrestled by ever-growing clusters of feminist scholars. The aforementioned thinkers have stood against patriarchal dominance with upright enthusiasm and great resilience.

Intersectionality and Beyond

Female identity politics have changed a lot in recent times. Kimberlé Crenshaw, a legal scholar and critical race theorist, introduced the concept of "intersectionality" in her 1989 essay "Demarginalizing the Intersection of Race and Sex." Intersectionality examines how various social identities (such as race, gender, sexuality, and class) overlap and intersect, creating unique modes of discrimination and privilege. Crenshaw's work has been instrumental in shaping contemporary understandings of identity politics and advocating for a more nuanced approach to feminist theory and activism. Another writer Chandra Talpade Mohanty is an influential postcolonial feminist theorist who critiques Western feminist scholarship for often representing Third World women as a monolithic, oppressed group. In her seminal essay "Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses" (1984), Mohanty argues for a feminist politics that is attentive to the specific historical and cultural contexts of women's lives, advocating for a more inclusive

and global understanding of feminism. Angela Davis, on the other hand, is a prominent activist, scholar, and author who has written extensively on issues of race, class, and gender. In works like Women, Race, & Class (1981), Davis explores the interconnected nature of these social categories and argues for a feminism that is anti-racist and anti-capitalist. Her work highlights the importance of coalition-building among diverse groups to challenge systems of oppression. These writers have each contributed to the development of female identity politics by challenging traditional notions of gender and identity, emphasizing the social construction of these categories, and advocating for more inclusive and intersectional approaches to feminist theory and activism. Their works continue to inspire and inform feminist scholarship and movements around the world.

In the writings of Beauvoir, Wittig, Butler, and Irigaray, the idea of the body is profoundly rethought. In *The Second Sex*, Simone de Beauvoir notably states that "one is not born, but rather becomes, a woman," highlighting the body as a situation that is influenced by social and existential factors in addition to biological ones. Monique Wittig, on the other hand, contends that the term "woman" only exists inside the heterosexual regime and sees the body as a product of political categories. According to Wittig, the first step in destroying repressive systems is to eradicate the social construct of "woman." Judith Butler expands on this criticism by proposing that the body is discursively constructed and manifested through repeated performativity rather than existing as a pre-discursive reality. However, Luce Irigaray provides a psychoanalytic and phenomenological reassertion of female embodiment, arguing that mimetic techniques that challenge male-dominated language and desire are necessary to reclaim the feminine body, which is symbolically erased in phallocentric discourse. Though from various angles, all four theorists criticise language and subjectivity for their fundamental role in upholding gender stereotypes. According to Beauvoir, women have historically been excluded from subjectivity because they are positioned as "Other" in a symbolic hierarchy that is determined by men. Because language inscribes heteronormativity and needs to be drastically reconstructed, Wittig views language as the main source of oppression. She supports a lesbian subject position outside of patriarchal grammar. By rejecting the notion of a fixed "self," Butler argues that the subject is formed through speech, always in process, and intrinsically unstable, hence complicating subjectivity. Irigaray emphasises how phallocentric language ignores female subjectivity and suggests creating a feminine language that values multiplicity and fluidity while rejecting linear logic. Wittig and Butler seek a complete deconstruction of gender categories, whereas Beauvoir and Irigaray seek a reinterpretation or reclamation of the feminine within historical and symbolic contexts. Together, these theorists provide a rich comparative synthesis.

Conclusion

In concluding this exploration of identity politics through the lenses of Simone de Beauvoir, Monique Wittig, Judith Butler, and Luce Irigaray, it becomes evident that each philosopher offers a unique yet interconnected critique of the constructs surrounding gender and identity. Beauvoir's existentialist approach lays the foundation for understanding womanhood as a socially constructed identity, inherently tied to patriarchal oppression. Wittig further radicalizes this notion by dismantling the category of 'woman'

itself, arguing for liberation from all gendered classifications. Butler's theory of gender performativity extends this critique, illustrating how gender identities are not only socially constructed but also constantly reiterated through performance, thereby exposing the fluidity and instability of what is often perceived as fixed or natural. Irigaray, with her emphasis on language and psychoanalysis, critiques the phallogocentric structures that underpin Western thought, advocating for a reimagining of female subjectivity that transcends traditional binaries. Butler sees gender as something we do repeatedly, not something we are—our identities are shaped by social repetition, not fixed from birth.

Together, these thinkers challenge the hegemonic narratives of identity politics by revealing the performative, constructed, and inherently unstable nature of gender and identity. They collectively underscore the need to move beyond binary oppositions and essentialist thinking, advocating for a more nuanced understanding of identity that embraces multiplicity and difference. This multi-dimensional critique not only deconstructs existing paradigms but also opens up new avenues for reimagining identity, freedom, and equality in more inclusive and transformative terms. By interrogating the philosophical intersections and divergences of these theorists, this research has sought to illuminate the complex landscape of contemporary feminist thought, encouraging further dialogue and inquiry into the politics of identity and the possibilities for future feminist praxis. **Appendix: Glossary of Key Terms**

Phallocentrism: A worldview or system of thought that privileges the male perspective and centers male experience, often at the expense of women and gender non-conforming individuals.

Mimesis: A concept often used in psychoanalytic and feminist theory to describe imitation or representation, particularly how gender roles are learned and repeated through societal norms.

Discursive Formation: A term from Michel Foucault, referring to the systems of knowledge, language, and practices that define how we understand and categorize reality, such as sexuality or gender.

Citationality: A concept developed by Judith Butler, describing how gender is constructed through repeated acts or references to social norms—"citing" behaviors we've seen before.

Heteronormativity: The presumption that heterosexuality is the default or normal sexual orientation, which often marginalizes or delegitimizes other forms of sexual and romantic expression.

[1]Dept of English & Other European Languages
Dr. H.S.Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P)
ap_ravib@dhsgsu.edu.in
[2]Department of English
Sikkim University, Gangtok
nchaudhary@cus.ac.in

References

1. *Butler, J. (1990). Gender trouble: Feminism and the subversion of identity. Routledge.*
2. *Chakravarti, U. (1993). Conceptualising Brahmanical Patriarchy in Early India: Gender, Caste, Class and State. Economic and Political Weekly, 28(14), 579–585.*
3. *de Beauvoir, S. (1989). The second sex (H. M. Parshley, Trans.). Alfred A. Knopf.*
4. *Irigaray, L. (1977). This sex which is not one (C. Porter & C. Burke, Trans.). Cornell University Press.*
5. *King, U. (1993). Women and spirituality: Voices of protest and promise. Penn State University Press.*
6. *Krishnan, K. (2020, September 11). Trans Rights Are Human Rights: Why the Fight Against Patriarchy Must Include Gender Self-Determination. The Wire. https://thewire.in/rights/trans-rights-gender-self-identification*
7. *Menon, N. (2012). Seeing Like a Feminist. Zubaan.*
8. *Rege, S. (2006). Writing Caste, Writing Gender: Narrating Dalit Women's Testimonios. Zubaan.*
9. *Wittig, M. (1981). One is not born a woman. In C. R. McCann & S.-K. Kim (Eds.), Feminist theory reader: Local and global perspectives. Routledge.*
10. *Whitford, M. (1991). Luce Irigaray: Philosophy in the feminine. Routledge.*

Eco-critical Consciousness through Vedic Wisdom: Pṛthvī Sūkta and its Contemporary Relevance in Bridging Ecology and Literature

Sanjay Verma[1], Lalit Kumar[2]

Abstract

The essence of existence, consciousness, and morality contained in the ancient Indian philosophical tradition are well known. In Atharva Veda, specifically in the twelfth Kanda, titled Pṛthvī Sūkta, we find significant moral and spiritual scriptures which reference and reveal the ever-present relationship between humankind, nature and sustainability and its representation in literature. Pṛthvī Sūkta highlights the importance of being conscious about the Ecology of the land, not just as a Bhūti (an entity with mere physical features), but also as Śrī (having a spiritual existence). While analysing the emerging importance of Environmental Humanities as a discursive field, along with the rise in geopolitical disturbances, this paper undertakes a selective reading of Pṛthvī Sūkta. This paper also strives to map the ever-increasing importance of Vedic Hymns relating to nature, from the early times to their concurrent re-readings and commentaries. This happens in an era, where India leads the crucial fight against the Climate Change concerns and policies dealing with current Global Geopolitical crises, while also leading the welfare interests of Global South Nations, and of the World. To tackle the concerns of contemporary and ever-changing commentaries and trans-literations of the Vedic Ślokas, this paper employs Ranga Hari's commentary as found in *Prithvi Sookta: An Ode to Mother Earth (2023)*, as its primary source of reference. The paper also reads upon, along with other secondary sources, Vasudev Sharan Agrawal's Pṛthvī Putra (1949), originally published in Hindi, in which Agrawal analyses the Vedic perspectives as formulated in Pṛthvī Sūkta and equates Motherland and Nation with the Environmental stewardship.

Keywords: pṛthvī sūkta; ecology; vedic knowledge; motherland; environment.

Introduction

The Pṛthvī Sūkta from Atharva Veda is a manifestation of a remarkable thought process which provides moral direction and details profound insights about human-environmental-literary ties and eco-sustainable practices. The Vedic hymn represents an early description of Earth as a living being that nurtures all forms of living things throughout the planet. The Pṛthvī Sūkta serves as an educational text through which ecological consciousness appears first in human history thus offering modern perspectives on environmental matters. This paper reads upon Pṛthvī Sūkta and conducts and understanding that strives to bridge the growing

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp.154-163
Peer-reviewed biannual Research Journal

divide between ancient vedic hymns and their present day interpretations. The study chiefly relies on Ranga Hari's version of the vedic hymns found in *Prithvi Sookta: An Ode to Mother Earth* (2023). Ranga Hari, in his commentary, analyses the vedic concept that environmental care exists as an interlocking relationship between nature and territory, something that we can equate with the modern concept of nation.

This paper also blends Vasudev Sharan Agarwal's *Pṛthvī Putra (1949)* as a supplemental text which extends the academic exploration. Agarwal adopts similar ideas as those of Ranga Hari by emphasizing natural unity together with nature and its national development implications. According to Agarwal, society's literary and cultural background tightly binds with its ecological issues which require intellectuals to establish environmental obligations through writing and intellectual dialogue. Agarwal urges Indian academics to develop stronger perceptive skills for their physical environment especially regarding geographical and ecological elements of their own homeland. Through this process he aims to develop a literary heritage which closely binds itself to its foundation thus establishing an innate connection between cultural heritage and environmental protection. The two commentaries on Pṛthvī Sūkta are essential texts for the research purpose of this paper. Thus, based on both historical and contemporary discourse, this paper aims to demonstrate the significance of literary and philosophical traditions in the formation of modern ecological thought.

The Pṛthvī Sūkta provides numerous instances where it talks about ecological harmony, especially in relation to the sustainable coexistence of people and their surroundings with the natural resources. This means that interactions between the living organisms and the physical environment can totally exist without any violence inflicted, when the Earth is looked upon as the mother and the living being as its children, as has been stated in the much quoted and renowned Śloka 12, "Mata Bhumih putroham prithivyah **(माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः)** ". In view of the analysis of some selected Ślokas as translated by Ranga Hari, and as has been commented upon by both Hari and Agarwal, the paper extrapolates the correlation between the ritual practises and the environmental management, which shows a high level of respect for nature and towards the ideas for sustainability. Lastly, the paper advocates and suggests that these Vedic Hymns contain ecocritical perspectives which can be rendered valid for the current global Geopolitical crises, as the ideas invoked in those, seem to foreshadow concerns that relate to Climate change across the Globe. The analysis of such Vedic narratives is rendered significant for Modern India's quintessential role in leading the fight against the question of climate change and negotiating the terms and policies vis-a-vis internationally agreed environment laws as it reflects a long history of understanding land as a nurturing mother.

Ecocriticism, Ecocritical Consciousness and Sustainability: A Review of Literature

Ecocriticism or Ecocritical studies, as a literary theory, made its first appearance towards the end of the twentieth century. This theory considers the relationship between the environment and its reflection in literature. The rise of Ecocriticism in the mid-twentieth century, defined by Cheryll Glotfelty as "the study of the relationship between literature and the physical environment," (Glotfelty, 1996, p. 18) holds a greater significance in modern nationalistic discourse of development. A long history of colonisation and the industrialization which began in the West as well as the development of technological advancements in modern warfare led to a serious consideration of how the planet had been affected by human activities. More recently, the postcolonial turn in ecocriticism, profoundly articulated by Graham Huggan

and Helen Tiffin as "Green Postcolonialism" focuses on tensions among "the burgeoning alliance between postcolonial and environmental studies," (Huggan and Tiffin, 2010, p. 02). Beginning with the nexus of Empire and colonization, they show the subjugation of native people as equal to the subjugation of land and environment, referred to as "ecological imperialism" (Huggan and Tiffin, 2010, p. 04). They further posit that, "[o]ne of the central tasks of postcolonial ecocriticism" therefore is to contest "western ideologies of development" (Huggan and Tiffin, 2010, p. 27). On the other hand, Indian philosophical understanding which is also reflective of its ideas of developments as a nation, have always favoured the harmony between ecology and nature. Sri Aurobindo asserts in *The Foundations of Indian Culture*, that the Indian ideal of civilization is inherently linked to spiritual insight and the harmonious coexistence of humanity and nature (Aurobindo, 1953, p. 4). Classical texts like the Ṛgveda and the Bhagavad Gītā articulate a vision in which all living beings are seen as manifestations of the divine (Brahman), reinforcing the ethic of environmental responsibility (Sharma and Biswas, 2025, p. 35). The Dashāvatāra of Vishnu—specifically the incarnations such as Matsya and Varāha—also symbolises the parity between human and non-human life (Skolimowski, 1996, p. 12). Makarand Paranjape in his book *Dharma and Development (2005)*, makes suggestions towards rethinking development from the ground up, which means to see Dharma not merely as a religious construct, but as a living ethic that nurtures human prosperity in tandem with spiritual sanity. He also argues for the integration of moral dimensions into social change and exploration of holistic and culturally rooted development (Paranjape, 2005).

The gradual conceptualisation of Eco-critical theories along with the awareness about ecology and an environment friendly spirit, which it seems to elucidate, have been in discussion for a long time and approached in different ways. It is under this setting that the Pṛthvī Sūkta must be looked upon and discussed as part of the larger Vedic corpus, which still holds relevance vis-a-vis environmental consciousness and sustainability. One of the earliest reference, which seems conscious of itself towards nature, is found in "Bhū Sūktam" in the Ṛgveda. Later Vedic texts such as the Aranyakas along with the Upanishads focus directly on sustainability and resource usage ethics through their discussions about spiritual dimensions in nature. Sages who seek spiritual enlightenment and knowledge about nature through meditation, would retreat to the forests according to a practice, popularly called as Tapōvanam. The social and cultural activities of the Vedic society, depicted in these texts, demonstrated an awareness of natural ecological patterns through their agricultural practices and yearly festive celebrations. Such activities align with cycles of lunar and solar calendars demonstrating that people follow nature's way. The Bhagavad Gītā shares the concept of Dharma to reveal environmental protection since it represents a moral and religious commandment. The Sanskrit corpus of Sage writings most notably the Valmiki's Rāmāyaṇa and the works of Kālidāsa also contain ecological principles that seem valid according to need for a contemporary understanding. Through its natural representations the Rāmāyaṇa displays the fundamental connection between humans and their environment. Kālidāsa's works such as *Abhijñānaśākuntalam, Raghuvaṃśa, Kumārasambhavam, Meghadūta,* and *Ṛtusaṃhāra,* showcase nature in its diverse forms and use natural imagery as representing human emotions. Notably, Kālidāsa's personification of natural elements, such as clouds and seasons, predates the romantic poets' lyrical exploration of nature, way back in time (Sarma, 2015).

The Vedic texts present a comprehensive framework for human existence within the natural world. They conceptualize the ecosystem as a harmonious and interconnected system

composed of five elements (pañcabhūta): Earth, Water, Fire, Air and Ether. The Vedic texts emphasize the imperative for humans to maintain the balance and integrity of this system, warning against actions driven by selfishness that could disrupt or destroy it. The Pṛthvī Sūkta, however, is the most significant Vedic corpus that expands and elaborates on the concept of Mother Earth as a nurturing entity (Dwivedi, 1997).

Pṛthvī Sūkta: Bridging Vedic Knowledge and Contemporary Ecocritical Relevance

The Pṛthvī Sūkta is a founding text in the Atharva Veda which presents a holistic vision of the world in which the Earth plays the leading role of a maternal deity providing life to all existence. Enveloped in poetic language, the text celebrates the planet as a living, nurturing, and a secret being. Composed of a total of 63 Ślokas, Pṛthvī Sūkta lauds the Earth's motherly conduct, fecundity, aesthetic appeal, and her life sustaining capacities. The hymns' verses paint a picture of different aspects of the natural environment - rivers, mountains, plants, and animals - and emphasises upon the need to work in tune with nature. The Pṛthvī Sūkta functions as one of the earliest textual representations of ecological care and nature respect and connects spiritual, philosophical and practical perspectives into a document that shares both religious significance with ancient environmental wisdom.

The hymn delves into the detail of the subsystems of earth, namely, the atmosphere, the hydrosphere, and the biosphere, to identify the role of each in supporting life on this planet. The problems of the present day, including environmental degradation, geopolitical conflicts and sustainable practices, also find reflections in these verses and offer some insight regarding their possible solutions. Some of the most famous commentaries on the Pṛthvī Sūkta include Maurice Bloomfield's Hymns of Atharva Veda, Together With Extracts From the Ritual Books and the Commentaries, as part of the Sacred Books of the East, published in 1897; The Atharva Veda: Pṛthvī Sūkta commented upon by Shri N.C. Joshi; and the most recent and notable commentary titled, *Prithvi Sookta: An Ode to Mother Earth,* by Ranga Hari in 2023. This paper uses the commentary and explanation of the Ślokas from the most recent available work of Ranga Hari's *Pṛthvī Sūkta* and also examines the Vedic text and its importance in today's time as commented upon by V.S. Agarwal.

In the "Introduction" to his work, Ranga Hari talks about the importance of such commentary which derives from the cultural and syntactic analysis of the original language in order to properly interpret the Sanskrit Ślokas:

In these days of national resurgence, it is desirable that each and every national, whether man or woman, must understand this age-old Vedic hymn in and out. Only then it will be clear what Indian matriotism actually is and what more it has to offer in terms of defining an umbilical cord relationship between human beings and The Earth. Subsequently this will arouse in man, a robust common sense, not to exploit the Earth but to milk it. (Hari, 2023, p. 11)

The hymn appears in the twelfth section of Atharva Veda, known as 'kanda'. Pṛthvī Sūkta is the first Sūkta in the twelfth Kanda of the Vedic text. The very first Śloka itself begins with the seven abiding qualities, which are intrinsic, and are given to humans by nature itself:

स॒त्यं बृ॒हदृ॒तमु॒ग्रं द्दी॒क्षा तप॒ो ब्रह्म॑ य॒ज्ञः पृ॑थि॒वीं धा॑रयन्ति।
सा नो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य॒ पत्न्यु॒रुं लो॒कं पृ॑थि॒वी नः॑ कृणोतु ॥1.1॥

The fast allegiance to Truth, the wholeness, cosmic order, earnestness, dedication, ceaseless collective action these uphold The Earth which essentially controls what is past, present and future. Let that mistress guide and goad us."

The verse posits a geocentric ecosystem governed by immutable truths, established laws, and sacred offerings. It emphasises the importance of self-imposed penance, the attainment of supreme reality, and sacrificial stewardship of the Earth to ensure its continued vitality. The verse venerates the Earth as the presiding deity of all humanity, past, present, and future, and concludes with a prayer for its abundant provision of space and resources.

The foundational assertion of the Bhū Sūktam, as found in the Ṛgveda, that 'Earth is the mother and all beings are her children,' is also echoed throughout Pṛthvī Sūkta. The most reiterated of all the Ślokas is Śloka 12, which repeats the same principle:

यत्ते॒ मध्यं॑ पृथिवि॒ यच्च॒ नभ्य॒ं यास्ते॒ ऊर्ज॑स्त॒न्वः॑ संबभू॒वुः॑।
तासु॑ नो धेह्यु॒भि नः॑ पवस्व मा॒ता भूमिः॑ पु॒त्रो अ॒हं पृ॑थि॒व्याः॑
प॒र्जन्यः॑ पि॒ता स उ॑ नः॑ पिपर्तु ॥1.12॥

"Oh flat Earth, your outside and inside is replete with life-saving elements. Those who have grown in strength and might, have come together. They in turn guard and protect us. Oh Earth, you are our mother and we are your sons, the father being the rain that diligently protects us."

This Śloka further elaborates on this concept, asserting that Earth purifies herself for the benefit of humanity. This verse also reinforces the maternal-filial relationship between Earth and humankind, while identifying Parjánya as the celestial father. The innate matriotism of the descendants of Rishis remains a deeply ingrained quality, which is unlike the Western model often associated with warfare and conflict. Love for one's homeland, as understood in this context, is not a reactive, antagonistic, or exploitative sentiment. It is an intrinsic characteristic that transcends temporal and geographical considerations.

The Pṛthvī Sūkta posits Agni, the Vedic fire deity, as a ubiquitous force of nature. Śloka 19 enumerates the diverse manifestations of Agni, from the terrestrial to the corporeal, residing within earth, plants, waters, stones, and even human beings. Śloka 19 refers to fire as a life force, one of the five elements or pañcabhūta, and how it was the first element to take shape, followed by water and Earth.

अ॒ग्निर्भू॒म्या॒मोष॑धीष्व॒ग्निमापो॑ बिभ्रत्य॒ग्निरश्म॑सु।
अ॒ग्निर॒न्तः पु॑रुषेषु॒ गोष्वश्वे॑ष्व॒ग्नय॑ः ॥1.19॥

"In the Earth there is fire, in the vegetable kingdom there is fire, in the water there is fire. Firestones bear fire. Inside men there is fire. In cows and horses, there is fire."

Commenting upon this Śloka, Hari explains that there is latent fire in one or the other form of energy in water, stones, and men. He further says that there is fire in cows and horses, this fire is the force which gives milk producing capabilities to cows and it provides speed and capacity to carry in horses. To bring home the point, he also draws references to the very first verse of Ṛgveda, which begins with, "agním īḷe puróhitaṃ", that fire passes on our offerings to the concerned Gods. The subsequent Śloka 20, also refers to the role of Agni while focusing upon its cosmic importance. It refers to the cosmic zone which harbours the sun, the moon, the stars and all other celestial bodies that are invoked as containing fire inside them, which illuminates them and is the same as does lie between all of us.

The Earth, often characterised as the universal sustainer, is depicted as a bountiful source of resources and prosperity. In the Śloka 6, the planet is metaphorically described as a golden-breasted resting place, alluding to the wealth and sustenance harboured within its depths.

विंश्वंभ्रा वंसुधानीं प्रतिष्ठा हिरंण्यवक्षा जगंतो निवेशंनी।
वैंश्वानरं बिभ्रंती भूमिंरग्निमिन्द्रऋंषभा द्रविंणे नो दधातु ॥1.6॥

The Earth's generosity is further emphasised in Śloka 29, where it is portrayed as a nurturing provider of nourishment, prosperity, and sustenance.

विमृग्वंरीं पृथिवीमा वंदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मंणा वावृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रंतीमन्नभागं घृतं त्वांभि नि षींदेम भूमे ॥1.29॥

"Due to Brahman, she has prospered. She strengthens, she builds up, by providing ghee and other items and she maintains and protects. She is vast, she is patience incarnate. We pray to this land of ours. Oh! motherland, we take refuge in you."

Beyond its material contributions, the Earth is also presented as a sanctifying force. It is depicted as consecrating its inhabitants, bestowing upon them a sense of holiness or spiritual elevation. Furthermore, the Earth is characterized as a dutiful servant, ever ready to fulfil its obligation of providing for its progeny. By offering agility, prosperity and sustenance, the Earth demonstrates its unwavering commitment to the well-being of its inhabitants.

In Śloka 33, the Sūkta introduces Sun (Surya), the solar deity, as an indispensable companion of Earth. A human supplicant implores Earth to bestow upon them lifelong visual acuity.

यावंत्तेऽभि विपश्यांमि भूमे सूर्येण मेदिनां।
तावंन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तंरामुत्तरां समांम् ॥1.33॥

"Oh! motherland, the light that the sun emits all around, always illuminates you on and on. Kindly give us a long life to see it. Until the last let the sense organs like our eyes maintain their capacity intact, undiminished."

Medina, etymologically, refers to one who loves. Hari points out that this Śloka marks a shift in the way the mother Earth is being prayed to while the earlier Ślokas pray for security and peace, this one prays for progress in a positive direction. Collectively, these verses underscore the interconnectedness of the natural elements—fire, Sun, water, air and Earth—which collectively impart wisdom to humanity.

V.S. Agarwal also mentions about the importance of learning about the geography, flora and fauna of one's motherland for its inhabitants and especially the writers of that land, the composer of Pṛthvī Sūkta also shows a great consciousness and awareness about the crucial importance of seasons, and fertility of land. Ślokas 35 and 36 symbolise how the same consciousness about the land and seasons, and knowledge about both can be utilised for a better harvesting.

यत्तें भूमे विखनांमि क्षिप्रं तदपिं रोहतु।
मा ते मर्मं विमृग्वरि मा ते हृदंयमर्पिपम् ॥1.35॥

"Oh! Earth, let the seeds sown after proper ploughing give us a crop in time. Oh, Earth of various dimensions, may all your vitals be in the best condition. We hereby offer to you our very hearts."

Both Hari and Agarwal have commented upon this important phenomenon for the Indian subcontinent and how crucial crop production has been for the inhabitants of this land. If the land is not properly plowed and prepared, merely scattering seeds will not yield a timely or abundant harvest. The devoted individual in this context ensures that the soil is thoroughly tilled before sowing the seeds. Beyond this, his duty is complete—he can do no more but wait with hope and faith for nature to take its course.

Agarwal explains how despite advancements in science and technology, the Earth still holds countless mysteries, many of which remain undiscovered. The Earth possesses infinite resources to fulfill all human needs, yet it must be treated with the utmost respect (Agarwal, 1949, p. 11). In no way should a man disrupt the delicate balance of ecology. The devoted individual in this verse not only expresses his expectations for a prosperous outcome but also reinforces his unwavering commitment to living in harmony with nature (Agarwal, 1949, p. 13).

ग्रीष्मस्तें भूमे वर्षाणिं शरद्धेंमन्तः शिशिंरो वसन्तः।
कृतवंस्ते विहिंता हायनीरंहोरात्रे पृंथिवि नो दुहाताम् ॥1.36॥

"Oh! Vast Earth! Every year you go through six seasons, Greeshma, Varsha, Sharad, Hemant, Sishir and Vasant. Night and day let those seasons give us happiness and comfort."

Speaking about the above Śloka, Hari justifies why the names of the six seasons mentioned above have been left untranslated. He states that Western societies identify four seasons through spring, summer, autumn and winter. Traditional calendars in India contain six distinct seasons with two lunar months in each season according to the Indian traditional system. The seasonal cycle starts in summer during Greeshma before it reaches its finale during Vasanta in spring. During Greeshma the season is the hottest because temperature reaches high levels and heat becomes unbearable. Vasanta brings the floral blossoms as well as fruit ripening that celebrates renewal and vitality and abundance. Hemanta represents a deep winter season that affects northern regions of India where freezing conditions produce a chilling air. All six seasons differ from one another but they maintain a complete connection through which they support natural balance. Through his interesting explanation, Hari refers to Ṛtusaṃhāra to describe the spirit of these six seasonal periods. Kālidāsa describes nature's seasonal transformations as well as their effects on both natural and human realms. Hari points out that girl children in India, receive the names Greeshma and Varsha, but Shishira and Hemanta, along with Sharad, serve as boy's names.

In his review of this Śloka, Agarwal examines the two Sanskrit terms relating to the land: Bhoomi and Pṛthvī. The two words signify earth but present slight distinctions in their interpretations. The word Pṛthvī represents vastness, while Bhoomi signifies steady presence and strong foundation of the land along with its firmness (Agarwal, 1949, p. 25). Moreover the stanza has important historical implications. The description of six seasons defines India as distinct because the region remains one of the few places on Earth where this six-season pattern exists. According to Agarwal the vivid understanding of India's climatic cycle alongside its historic and cultural background enables people to fully grasp how the land and its eternal literary works link together.

Of all the verses of Pṛthvī Sūkta, one of the most illuminating is Śloka 45, which speaks of the concept of oneness and how mother earth looks at all of us with the same eye.

जनं॑ बिभ्र॒ती बहु॒धा विवा॑चस॒ं नाना॑धर्माणं पृथि॒वी यं॑थौक॒सम्।
स॒हस्रं॑ धारा॒ द्रवि॑णस्य मे दु॒हां ध्रु॒वेवं॑ धे॒नुरन॑पस्फुरन्ती ॥1.45॥

"This Earth harbours men who speak different languages; men who follow their own chosen paths. She looks after them all as if all are her children. Let her shower upon us wealth profusely just as a cow that oozes milk at the mere touch of the udder."

In the opinion of V.S. Agarwal, this verse embodies the spirit of inclusivism, which characterizes the land of India. "This sacred land recognizes, understands, and embraces the fact that every community has its own unique language, which is often incomprehensible to others" (Agarwal, 1949, p. 21). Such linguistic diversity is not a chore but a gift which Mother Nature has herself nurtured and preserved. Thus, while passively tolerating this variety, India has cherished, nurtured and celebrated every language as the genuine emotion and cultural spirit of humans. This profound appreciation has led to the noble idea that all languages used within the borders of India are national languages and are all equally recognized and respected (Agarwal, 1949, p. 21).

The same philosophy can be extended to the diverse paths of spiritual and intellectual pursuit. Hari writes that the ancient wisdom of India encapsulates this idea in the saying, "pinde pinde matirbhinnā", that every individual has a different mind and perspective (Hari, 2023, p. 57). This is very natural, we are all different persons and every person has a right to choose his or her path of spiritual, moral, and intellectual growth. This profound understanding found a resounding expression in the words of Swami Vivekananda at the 'Parliament of Religions' in Chicago in 1893, where he proclaimed with pride, "I am proud to declare that there is no word for exclusivism in my language, Sanskrit" (qtd. in Hari, 2023).

In order to fully understand this vast inclusivist philosophy, one has to compare it with the concept of 'onlyism', which has been the dominant approach in Semitic religions. While exclusivism claims there is only one single infallible way, the essence of India is 'alsoism' – the belief that there are many ways to truth and enlightenment (Hari, 2023, p. 58). This great spirit of assimilation that is inherent in the culture of India makes it easy to acquire knowledge, wisdom and material benefits from all over the world and then share them with all its children without prejudice. It is indeed interesting to note that this great idea of universalism, tolerance to diversity and the worth of every individual was embedded in the fabric of India many years before the United Nations adopted the Declaration of Human Rights in the twentieth century. This wisdom remains to this date and acts as a beacon, and a guide for the entire human kind to embrace unity and oneness.

By exploring ancient Indian philosophy which envisioned the Earth not merely as a resource for our survival, but also as a sacred and sentient entity deserving reverence and care, we can strive to develop its connection with India's contemporary environmental leadership. J.R. Bhatt in his article, "India's Climate Policy" writes that, "In India, forests and trees are revered and worshipped. India's forests provide all four types of ecosystem services: provisioning, regulating, supporting, and cultural. Bhatt further solidifies this whole argument by pinpointing the very idea about how, "[T]he four Vedas of India, among the oldest texts in the history of humankind, are replete with respect and adoration for Mother Earth. The Pṛthvī Sūkta of the Atharva Veda says that, **"मा॒ता भूमिः॑ पु॒त्रो अ॒हं पृ॑थि॒व्याः॑"** which means the 'Earth is our Mother', and we are her children. Sacred groves signify our deep and intrinsic connection with

Nature" (Bhatt, 2024). The nation's approach to environmental geopolitics is reflective of its equity-based negotiation, pragmatic leadership and also policy innovation. India spearheads the idea of Common but Differentiated Responsibilities (CBDR), which emphasise that developed nations should take responsibilities owing to their historical emissions, while developing countries need space for growth. Recently at the United Nations Climate Change Conference (COP 26) held at Glasgow, India made the bid for the "Panchamrit" (five nectar elements) strategy, which targets net-zero emission by 2070, and reducing emissions intensity of GDP by 45% by 2030. The crucial role that India plays in global initiatives, such as International Solar Alliance (ISA) in a joint collaboration with France at COP 21 in Paris which was launched in 2015, Global Biofuels Alliance at G20 Summit (hosted by India), Mission LiFE and aggressive renewable targets while dealing with domestic challenges make it a key player in shaping Global environmental governance. India's take on Global and Domestic environmental concerns is shaped not only driven by geopolitical necessity of economic pragmatism but also echoes its civilisation ethos. Hymns like Pṛthvī Sūkta reflect a holistic ecological worldview, which portrays nature as a living system interconnected with human life and shows how it can still be rendered valid and meaningful for India's climate related policies.

The imperatives of Environmental concerns and Economic development do not exist in a dichotomy but rather seem to be intrinsically woven. India's civilisational worldview gets its projection in the maxim of Vasudhaiva Kutumbakam - 'One Earth, One Family, One Future' - which offers a cohesive ethical foundation vis-a-vis global climate governance. In a great contrast to Western centric paradigms, India's model is based on inclusivity and justice. India's ecological worldview is deeply rooted in ancestral wisdom, which emphasises living harmoniously with nature rather than competing or seeking dominion over it. India firmly believes in empathy for all fellow species on earth and reverence for Nature as the only way to sustainability, choosing moderation over profligacy (Bhatt, 2024). India's path to sustainability thus emerges not just from austerity, but also from a Dharmic reverence for all life forms, that advocates empathy, balance, and moderation over consumption.

Conclusion

This paper finds its geopolitical relevance in an Ecocritical consciousness in the contemporary world characterized by escalating competition for land and natural resources. It helps to provide a more coherent and rapidly developing area of scholarship which allows us to gain a better understanding of Climate Change and Environmental Justice (Agoramoorthy & Hsu, 2011). As countries feel the impacts of climate change – sea level rise, weather fluctuations, and ecosystem damage – the importance of a cultural shift towards environmental stewardship is the need of the hour. Ecocritical elements in Vedic literature reveal cultural discourses which can serve as a means of raising awareness of climate justice and lessen the impacts of climate change. An approach like this would focus on the ethical responsibilities of industrialized nations to address their historic carbon emissions and to help support sustainable development in less developed nations.

Ecocritical discourse is also connected with the claim of Indigenous rights, including the ones that are based on traditional ecological knowledge, such as the Indian Vedic knowledge system, which is a system of sustainable practices for generations. Many of these communities are facing removal and environmental decay due to large scaled up development processes. Realizing the credibility of this corpus of Vedic knowledge and the Indigenous perspectives in

environmental stewardship can be a turning point in the geopolitics to sustainable practices, which are based on contemporary ecological knowledge.

Even though these verses have been chanted for thousands of years in the holy land of India, which introduced the concept of mother Earth in such a way, it does not refer to any particular nation or any part of the land. The beauty of Pṛthvī Sūkta is such that any nation in any part of the world can claim it without fear of copyright, according to Hari. This set of verses, which are dedicated to, and celebrate Mother Earth, also resonate with matriotism, nationalism, humanism and universalism at the same time. Though this does not come in the purview of this paper, but the nuances of integral humanism can also be read under the light of Pṛthvī Sūkta for a better understanding of spiritual well being balanced with material progress, thus fostering further harmony and humans and nature.

Department of English
University of Delhi
New Delhi-110007
[1]sverma@english.du.ac.in
[2]lalit.kashyap.754@gmail.com

References

1. *Agarwal, V.S. (1949). Pṛthvī Putra. Sahitya Mandal Prakashan.*
2. *Agoramoorthy, G., & Hsu, M. J. (2011). Ancient Hindu Scriptures Show the Ways to Mitigate Global Warming through Responsible Action. Anthropos, 106(1), 211–216. http://www.jstor.org/stable/23031817*
3. *Aurobindo, S. (1953). Foundations of Indian Culture. Sri Aurobindo Library.*
4. *Bhatt, J.R. (2024, July 15). India's Climate Policy. Vivekananda International Foundation. https://www.vifindia.org/article/2024/july/15/India-s-Climate-Policy.*
5. *DWIVEDI, O. P. (1997). Vedic Heritage for Environmental Stewardship. Worldviews, 1(1), 25–36. http://www.jstor.org/stable/43809624*
6. *Glotfelty, C., & Harold, F. (1996). The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology. University of Georgia Press.*
7. *Hari, R. (2023). Prithvi Sookta: An Ode to Mother Earth. Kitabwale.*
8. *Huggan, G., & Helen T. (2010). Postcolonial Ecocriticism: Literature, Animals, Environment. Routledge.*
9. *Paranjape, M. (2005). Dharma and Development: The Future of Survival. Samvad India Foundation.*
10. *Rai, P., & Rai, S.S. (2024). The Vedic Texts on Sustainable Development in Ancient South Asia. GeoJournal, 89 (90). https://doi.org/10.1007/s10708-024-11092-9*
11. *Sacred Books of the East. (1879-1910). Wikipedia, Wikimedia Foundation. en.wikipedia.org/wiki/Sacred_Books_of_the_East*
12. *Sarma, N. (2015). Environmental Awareness at the Time of Vedas. Veda-Vidyā 26, 221-224.*
13. *26_Eng._Nimish_sharma*
14. *Sharma, S. K., & D. Biswas. (2025). The Environment in Hindu Consciousness: Revisiting the Sacred Texts. In Environmental Humanities in India: Asia in Transition. (pp. 33–47). Springer.*
15. *Skolimowski, H. (1996). Philosophy, Dharma, Ecology. In Trivedi, P.R. (Ed.), Eco-Philosophy and Eco-Dharma. Indian Institute of Ecology and Environmental.*
16. *Trivedi, P. R. (1996). Eco-Philosophy and Eco-Dharma. Indian Institute of Ecology and Environmental.*

Exploring the Therapeutic Dimensions of Saptanga Yoga Of Gheranda Samhita

Dimpy Kapoor[1], Praveen Sharma[2]

Abstract

Yoga is an ancient discipline with profound therapeutic potential, as documented in classical Hatha Yogic texts. Among them, the Gheranda Samhita presents Saptanga Yoga, a structured sevenfold system integrating cleansing techniques, postures, breath control and meditative practices. This study systematically explores the therapeutic applications of Saptanga Yoga, evaluating its impact on cardiovascular health, respiratory efficiency, neural plasticity and stress regulation. A comprehensive integrative review of classical texts and modern empirical studies was conducted, critically analyzing its role in preventive healthcare, chronic disease management and mental well-being. Findings suggest that Saptanga Yoga fosters autonomic regulation, metabolic balance and psychological resilience, making it a promising complementary approach in integrative medicine. However, the study highlights lack of controlled clinical trials, emphasizing the need for empirical validation through randomized studies and neurophysiological assessments. By bridging ancient wisdom with modern evidence-based research, this paper advocates for incorporating Saptanga Yoga into contemporary therapeutic frameworks.

Keywords: saptanga yoga, gheranda samhita, therapeutic yoga, preventive healthcare, integrative approach.

1. Introduction

Yoga, as a spiritual and philosophical system, has evolved over thousands of years. The earliest references to yoga appear in the Rig Veda (circa 1500–1200 BCE), where meditation, concentration and ritualistic practices were mentioned. According to Anshu et al., yoga encompasses practices such as cleansing techniques, physical postures, breathing techniques and meditation, which collectively promote physical, mental, social and spiritual wellbeing.[1] However, it was through the Upanishads (the ancient philosophical texts) and the epic Mahabharata that the concepts of yoga were systematically explained.

Extensive empirical and phenomenological evidence highlighting Yoga's broad therapeutic potential has driven its rapid global adoption, with the National Institutes of Health classifying it as a form of Complementary and Alternative Medicine (CAM).[2] Its integrative approach to individual and collective well-being demonstrates remarkable adaptability

across diverse socio-cultural contexts. The practice's multidimensional interventional strategies - encompassing physiological, psychological and existential domains have positioned it as a sophisticated mechanism for holistic human optimisation. Contemporary scholarly discourse and phenomenological investigations increasingly validate Yoga's transformative capacities. Its systematic methodologies have been increasingly recognised as potent interventional techniques for managing complex medical conditions that often resist conventional therapeutic modalities. Moreover, Yoga's epistemological framework offers nuanced strategies for navigating existential complexities, thereby enhancing individual resilience and societal adaptive potential.[3]

Soni and Chatterjee, discussed that Yoga therapy has its origins in ancient traditions, beginning with the Vedic Scriptures and Patanjali's Yoga Sutras.[4] The Hatha Yoga is based on main principle of establishing balance between 'Ha' (Pingala Nadi) and 'Ṭha' (Ida Nadi) and through this facilitating the Pranavayu to enter into Sushumna as well as kundalini arousal and take the Pranavayu to Sahasrara at the top of the head. The texts which mainly deal with this concept and process of Yoga are called Hatha yogic texts. Many are the texts which can be ascribed to be the text of Hathayogic School. But for the purpose of our study, we have identified one representative Hathayogic text, Gheranda Samhita, which can be said to be presenting the concepts and practices of Hatha Yoga elaborately and completely.[5]

Table No. 1 - Highlights of Saptanga Yoga and Ashtanga Yoga

Feature	Saptanga	Ashtanga Yoga (Patanjali's Yoga Sutras)
Origin	17th-century text by Sage	200 BCE by Sage Patanjali
Path Structure	Sevenfold Path (Saptanga Yoga)	Eightfold Path (Ashtanga Yoga)
Focus	Emphasis on physical purification and spiritual progress	Emphasis on mental discipline and self-realization
Limbs	1. Shatkarmas (Cleansing) 2.Asanas(Postures) 3.Mudras (Gestures) 4.Pratyahara (Sense withdrawal) 5. Pranayama (Breath control) 6. Dhyana (Meditation) 7. Samadhi (Absorption)	1. Yama (Ethical restraints) 2. Niyama (Self-discipline) 3. Asana (Postures) 4. Pranayama (Breath control) 5. Pratyahara (Sense withdrawal) 6. Dharana(Concentration) 7. Dhyana (Meditation) 8. Samadhi (Absorption)
Therapeutic Approach	Focuses on detoxification, strengthening and longevity before deep meditation	Focuses on ethical living, self-discipline and mental stillness for self-realization
Application in Modern Healthcare	Used in detoxification, stress reduction and disease prevention	Used in psychological therapy, cognitive restructuring and emotional balance

The Gheranda Samhita is one of the key classical texts of Hatha Yoga, written systematically,

offering a comprehensive guide to the physical and spiritual practices of yoga. The Gheranda Samhita holds a unique and significant place in yogic literature as one of the principal texts of Hatha Yoga. Its name comes from the sage Gheranda, who is said to have imparted these teachings to his disciple, Chandakapali. The text is structured as a dialogue between Rishi Gheranda and Chandakapali, focusing on practical instructions for the purification and transformation of the body, mind and spirit. Dating back to the 17th century, the text does not use the word Hatha in the form of Yoga. The Yoga that has been discussed in it is called Ghatastha Yoga. This term is not used in any other treatises of Yoga. Ghata refers to the body and Ghatastha Yoga means Yoga based on the approach through the body. The text specifically outlines practices for health, longevity and the integration of mind body harmony.

The practice of Ghata Shuddhi involves a series of seven processes, each contributing to the purification and strengthening of the body and mind. These processes are: Shatkarma for Shodhana (cleansing), Asana for Drdhata (firmness), Mudra for Sthairya (steadiness), Pratyahara for Dhairya (courage), Pranayama for Laghava (lightness), Dhyana for Pratyaksha (direct perception) and Samadhi for Nirlipta (detachment), as presented in Table 2. Collectively, these processes are referred to as 'Saptanga Yoga', a sevenfold approach to achieving Ghata Shuddhi and by extension, spiritual and psychophysical transformation. 'Saptanga Yoga, in this context, emphasises a holistic approach to wellbeing and it details over 100 different yogic practices, which can be classified into these seven branches to facilitate a better understanding of their nature. The therapeutic uses of each limb are showing how they contribute to maintaining balance and healing in both body and mind.

Table No. 2 - Sevenfold approach of Gheranda Samhita with Number of practices

S. No.	Practice	Numbers
1	Ṣaṭkarmas (Six Purificatory Process)	21
2	Āsanas	32
3	Mudrās	25
4	Pratyāhāras	5
5	Prāṇāyāmas	10
6	Dhyānas	3
7	Samādhis	6
Total		**102**

This introduction delves into the core principles of Hatha Yoga and its significance in promoting holistic health in today's fast paced world. There are references to the therapeutic nature of yoga that date back to the thirteenth to fifteenth centuries. Our modern understanding of yoga therapy, however, appears to have its roots in India during the 1920s, and most particularly in the pioneering work of researcher and educator Swami Kuvalayananda and one of the most important figures in the modern revival of Haṭha Yoga, Shri Yogendra.[6] Rooted in the sevenfold path (Saptanga Yoga), this Gheranda Samhita emphasizes the therapeutic benefits of its prescribed practices, which are systematically outlined within its teachings.

2. Material and Methods

The study adopts a Systematic literature review approach to explore the therapeutic dimensions of Saptanga Yoga as outlined in the Gheranda Samhita. The review integrates classical yogic principles with modern empirical research to assess the physiological, psychological and therapeutic benefits of this practice. A comprehensive search was conducted across PubMed, ResearchGate, Google Scholar and Scopus to identify relevant scholarly articles, systematic reviews and clinical trials on the therapeutic effects of Yoga, particularly focusing on Saptanga Yoga techniques and its components. Various editions and commentaries of the Gheranda Samhita were also analyzed for their descriptions of the sevenfold yogic system. Keywords used are - Therapeutic Yoga, Saptanga Yoga, Gheranda Samhita, Yoga & Public Healthcare, Yoga & Preventive Healthcare and Yoga in Healthcare. To maintain credibility, following Inclusion criteria were applied: Peer-reviewed articles published in English; studies involving human subjects in clinical trials or observational research; research examining the physiological, neurological and psychological effects of Yoga; classical texts with validated translations and interpretations; and systematic reviews and meta-analyses on yoga's therapeutic applications.

3. Therapeutic Applications of Saptanga Yoga

Yoga extends beyond mere physical stretching, embodying a refined integration of physiological and spiritual practices aimed at enhancing holistic human potential. From its ancient roots to its evolution into a comprehensive therapeutic system, modern Yoga incorporates physical postures, energy practices and medicinal applications. Over time, Yoga therapy has developed into a sophisticated approach that merges traditional wisdom with contemporary healthcare, promoting overall wellbeing through structured energetic and physiological interventions. By harmonizing physical relaxation with spiritual awareness, Yoga provides a dynamic framework for personal transformation, addressing both the physical and psychological dimensions of human experience.

Over the last 10 years, a growing number of research studies have shown that the practice of Hatha Yoga can improve strength and flexibility and may help control such physiological variables as blood pressure, respiration, heart rate and metabolic rate to improve overall physical capacity. Therapeutic Yoga is defined as the application of Yoga postures and practice to the treatment of health conditions and involves instruction in yogic practices and teachings to prevent, reduce or alleviate structural, physiological, emotional and spiritual pain, suffering or limitations. Yogic practices enhance muscular strength and body flexibility, promote and improve respiratory and cardiovascular function, promote recovery from and treatment of addiction, reduce stress, anxiety, depression and chronic pain, improve sleep patterns and enhance overall well-being and quality of life.6 Neurodegenerative diseases and chronic stress cause Hippocampal Gray Matter (GM) shrinkage, while stress reduction increases GM density. Yogic intervention showed positive effects on stress management and neural structure, supported by blood pressure reductions. The lower GM density found in yoga cohorts suggests participants may have had an unconscious predisposition to stress vulnerability.[7]

Unlike conventional treatments that often focus on isolated symptoms, are targeted & reactive and treat specific health conditions with scientific validation, Saptanga Yoga on

the other hand emphasizes interconnectedness, aiming to harmonize the body, mind and spirit, as shown in Table 3. Modern research highlights its potential in managing stress, improving cardiovascular & respiratory health and fostering resilience against mental health disorders. This introductory framework underscores the therapeutic potential of Saptanga Yoga as a comprehensive, evidence-based practice for enhancing overall quality of life.

Table No. 3 - Saptanga Yoga vs. Modern Therapy

Feature	Saptanga	Modern Therapy
Approach	Holistic & Integrative: Works on body, breath and mind together	Symptom-specific: Addresses individual physiological or psychological conditions
Physical Health Benefits	Enhances detoxification, flexibility, respiratory efficiency, cardiovascular health	Physiotherapy enhances muscle function, mobility and pain management
Mental Health Benefits	Reduces stress, anxiety, depression and cognitive decline	Mindfulness-Based Stress Reduction, it reduces stress & emotional distress
Cognitive Therapy	Enhances focus, emotional resilience and mind-body connection	CBT (Cognitive Behavioral Therapy) restructures negative thought patterns
Neuroscientific Evidence	Studies show enhanced neural plasticity and reduced cortisol levels	CBT & MBSR are scientifically validated for mental disorders

3.1. Shatkarmas (Six Purificatory Process)

The Gheranda Samhita emphasizes Shatkarmas as the foundational step toward achieving physical, mental and spiritual harmony. These cleansing practices play a crucial role in detoxification, disease prevention and physiological equilibrium. While each technique contributes to holistic well-being, their therapeutic benefits differ based on their target areas - digestive system, respiratory function, mental clarity and nervous system regulation. In the present era, Shatkarma aids in disease prevention and treatment, but it's selection must align with the ailment to avoid adverse effects.[8]

3.1.1. Dhauti

Dhauti is a scientifically significant practice aimed at detoxifying the digestive tract and internal organs, removing toxins, undigested food particles and excess mucus. By regulating stomach acid levels, it helps alleviate acidity, constipation and indigestion. Dhauti has also shown benefits in respiratory health by clearing throat congestion and reducing bronchial infections.[9] It indirectly supports liver and kidney function by reducing the body's overall toxic load. Overall it improves gut health, enhances enzymatic activity, relieves gastrointestinal disorders and supports detoxification.

3.1.2. Basti

Basti is a colon-cleansing technique that promotes optimal bowel function by flushing out accumulated toxins, fecal matter and promotes nutrient absorption. It is highly effective in managing irritable bowel syndrome (IBS), chronic constipation and bloating. In addition, Basti supports gut microbiota balance, which plays a key role in metabolism and immune function. By reducing toxic buildup, it also indirectly benefits the liver and kidneys. Basti is believed to reduce stress and anxiety by calming the nervous system, thereby enhancing mental clarity and focus.

3.1.3. Neti

Neti Kriya is a nasal cleansing technique that clears nasal congestion by removing allergens, pollutants and excess mucus, improving sinus health and breathing efficiency. It is particularly beneficial for individuals suffering from sinusitis, allergic rhinitis and asthma. Furthermore, enhanced oxygenation through Neti has been linked to cognitive improvements, reducing mental fatigue and enhancing focus.[10] It also prepares the body for advanced yogic practices, improving breathing for pranayama and meditation by ensuring clear nasal passages and promoting smooth breath flow.

3.1.4. Trataka

Trataka is a concentrated gazing technique that strengthens ocular muscles, enhances vision and improves concentration and memory retention. It is widely used for eye disorders such as myopia and astigmatism. The effects of Tratak on mental stillness make it a powerful tool for reducing stress & mental clutter and enhancing emotional balance.

3.1.5. Nauli

Nauli, as outlined in Verse 52 of Gheranda Samhita, is a dynamic abdominal churning technique that activates digestive fire (Agni), thereby enhancing metabolism and intestinal motility. It stimulates internal organs such as the stomach, liver and intestines, which supports digestion and detoxification. Nauli also plays a role in balancing the nervous system, reducing stress & anxiety and improving core strength.

3.1.6. Kapalbhati

Kapalbhati, as stated in Gheranda Samhita has three types: Vatakrama, Vyutkrama and Sheetkrama. Vatakarma Kapalbhati is a widely practiced technique and is a powerful breathing technique, eliminating carbon dioxide and toxins through rapid exhalations, improving lung capacity and oxygenation. It has been shown to reduce stress, enhance brain function and improve cardiovascular health.[11] Kapalbhati also stimulates prana (life force energy), which is essential for maintaining vitality, mental alertness and supports hormonal balance.

3.2. Asanas

Asanas are considered the foundational limb of the Saptanga Yoga framework, integral to preparing the body for advanced yogic practices. Gheranda Samhita outlines 32 asanas, each contributing to body alignment, disease prevention and overall health. Yoga's core principles stem from a deep understanding of the human system, emphasizing self-awareness, physical structure and movement for effective asana practice and optimal

results. The therapeutic applications of the asanas outlined in the Gheranda Samhita offer profound benefits for both physical and mental wellness. Frequent yoga practice, especially five or more days per week, strongly predicts physical, mental, emotional, spiritual and relational benefits, while practice duration and timing have minimal impact, allowing for personalized routines with similar outcomes. These asanas, each designed with specific purposes, contribute to enhancing flexibility, improving strength and promoting cardiovascular health by improving circulation and respiratory efficiency. Shalabhasana enhances abdominal strength and tones internal organs such as the liver and spleen. Studies suggest Bhadrāsana reduces abdominal and back pain by 23% to 33%, making it a practical, non-invasive option for labor pain and a feasible solution for managing SUI, especially for those without specialized treatment access. As outlined in the Gheranda Samhita, asanas such as Padmasana, Bhujangasana, Matsyasana, Simhasana, Mayurasana, Shavasana, etc. play a crucial role in promoting overall physiological wellbeing. These postures are known to induce an anti-stress effect, supporting mental relaxation and emotional stability. They also contribute to strengthening the digestive, neurological and musculoskeletal systems, enhancing overall bodily function. Furthermore, these asanas improve respiratory efficiency, regulate blood sugar levels and facilitate detoxification processes, thereby promoting holistic health. By integrating asanas into regular practice, individuals can cultivate resilience, inner balance and a deeper connection between mind and body, ultimately enriching their overall wellbeing and yogic journey.

3.3. Mudra

Gheranda Samhita outlines a variety of Mudras (gestures or seals) that are integral to yogic practice, offering therapeutic benefits across physical, mental and spiritual domains. Fingers are reservoirs of magnetic energy and practicing Mudrā specific hand gestures balances these energy elements, this balance is crucial, as energy imbalances are the root cause of diseases. Mudrās regulate and harmonise the flow of energy within the body. These mudras help regulate the flow of prana (life force energy) within the body, promoting balance and enhancing overall health. Specific lung Mudrās enhance lung function and may benefit individuals with restrictive or obstructive lung conditions, including post COVID-19 patients with residual impairments.[12] Mudras like Nabho and Khechari leverages the tongue's root proximity to the carotid sinuses, subtly stimulating them to trigger a reflexive drop in heart rate and blood pressure, promoting relaxation and stress relief. Mula Bandha Mudra benefits digestion, supports urogenital muscles, and alleviates conditions such as haemorrhoids, constipation, hypertension, menstrual problems and anxiety.

3.4. Pratyahara

Pratyahara is emphasised as the practice of sensory withdrawal, where the practitioner consciously detaches their senses from external stimuli to focus inward. This step serves as a vital bridge between the external practices of yoga (asanas and pranayama) and the internal practices (dhyana and samadhi). It helps prepare the mind for meditation and reduces psychological disturbances by managing how we interact with our environment. Its therapeutic applications are broad, contributing to both mental and physical wellbeing by fostering a balanced and harmonious internal state. This practice is particularly

effective in reducing stress and anxiety by promoting mental calmness and creating an environment conducive to relaxation. Understanding Pratyahara helps overcome flaws like selfishness, greed, desire, ego, promoting positive interactions and cultivating self-awareness and mindfulness.[13] Pratyahara is beneficial in managing sensory overload, a common issue in the modern, stimulus-rich environment, by providing a mental respite that reduces fatigue. Pratyahara supports mental health by conserving energy for healing and growth while promoting physical well-being by controlling sensory impulses and fostering healthier habits. The practice further aids in improving sleep quality by calming the mind and promoting deep relaxation, which is essential for individuals suffering from insomnia and ADHD. It can help reduce pain even when there is a confirmed physical condition like a herniated disc. Through enhanced self-awareness and introspection, Pratyahara encourages mindfulness, facilitating personal growth and self-regulation. It supports the balance of prana, contributing to the body's detoxification and overall vitality. The practice of Pratyahara offers a multifaceted approach to wellbeing, making it an integral component of the yogic system.

3.5. Pranayama

Pranayama, as detailed in the Gheranda Samhita, is a fundamental yogic practice that regulates breath to harmonize prana (vital energy), fostering physical purification, mental clarity and spiritual awareness. It incorporates Kumbhaka (breath retention), divided into Antar Kumbhaka (after inhalation) and Bahir Kumbhaka (after exhalation), to refine energy control. The text highlights Ashta Kumbhaka (Eight Breath Retentions): Sahitha, Suryabhedana, Ujjayi, Sheetali, Bhastrika, Bhramari, Moorcha, and Kevali, each serving distinct physiological and psychological functions.

Pranayama techniques offer a wide range of therapeutic applications, benefiting respiratory function, cardiovascular health and nervous system regulation.[14] Practices such as Bhramari generate acoustic vibrations, stimulating brain activity and autonomic balance,[15] while Bhastrika facilitates detoxification, enhances pranic flow and reduces anxiety. Ujjayi Pranayama has been linked to improved respiratory efficiency, metabolic balance and endocrine function, though further empirical research is needed, particularly regarding its effects on hypothyroidism.[16] Beyond physical health, pranayama enhances cognitive function, emotional stability, and sleep quality, making it an effective tool in managing insomnia, anxiety and stress-related disorders. Neurophysiological studies indicate that breath regulation influences brain regions involved in emotional processing, including the amygdala, anterior cingulate, and prefrontal cortex.[17] Additionally, its metabolic benefits aid in weight management, digestion and toxin elimination. By refining breath awareness and energy control, pranayama serves as a bridge between physiological well-being and deeper meditative states, positioning it as a powerful integrative tool in holistic health and modern therapeutic models.

3.6. Dhyana

Dhyana involves sustained focus on a single object or concept to stabilize the mind. Dhyana, a meditative practice in yoga, leads to Samadhi by fostering peace, balance and mental clarity. It helps overcome stress, fears and mental obstacles by enabling self-awareness and control over thoughts. The therapeutic applications of Dhyana include stress reduction,

emotional balance, enhanced cognitive function and an improved ability to navigate life's challenges with mindfulness. The practice of Dhyana enhances mental clarity and focus by facilitating sustained attention, which improves cognitive function and reduces mental fatigue. Dhyana reduces sympathetic nervous system activity, particularly influencing heart rate variability and sensory processing, which may enhance perception by delaying sub-cortical transmission and improving auditory processing in the brain.[18] Meditation activates the parasympathetic nervous system, inducing relaxation and reducing stress through the regulation of cortisol levels. Enhanced self-awareness, a core aspect of Dhyana, fosters greater emotional intelligence and mindfulness, allowing practitioners to navigate their thoughts and behaviors more effectively. From a physiological perspective, Dhyana contributes to pain management by reducing pain perception and enhancing immune function. It also promotes cardiovascular health by lowering blood pressure and heart rate, contributing to overall physical wellbeing.

3.7. Samadhi

Samadhi, the final stage is described as the ultimate state of yogic practice, where the practitioner attains complete absorption in the object of meditation. It is the state of oneness with the universe, transcends individual consciousness and experiences pure bliss (Ananda). The Gheranda Samhita outlines Samadhi as the gateway to self-realization and liberation (Moksha). Samadhi promotes mental clarity, emotional resilience, physical relaxation, and spiritual fulfillment, making it a holistic practice for overall wellbeing. The practice of Samadhi enhances mental clarity by promoting deep concentration, which in turn improves cognitive functions such as memory, decision-making, and problem-solving abilities. Its long-term practice leads to structural brain changes, increasing cortical thickness and gray matter volume in areas linked to sensory processing, emotional control and stress regulation.[19] This focused state reduces mental clutter, fostering clearer thinking and sharper attention. The meditative state also enhances emotional resilience by promoting detachment from reactive emotional patterns, aiding in emotional regulation. Samadhi has been shown to induce beneficial physiological changes, such as lower blood pressure, reduced heart rate and improved immune function, contributing to overall health. Furthermore, the heightened awareness cultivated in Samadhi allows practitioners to experience deep self-awareness and introspection, which facilitates the release of long-standing mental and emotional patterns, supporting personal growth. Since Samadhi is a subjective experience, it cannot be fully explained through words or teachings. However, scientific studies help validate physiological changes during Samadhi, linking the experience of bliss to altered body functions, controlled breathing and meditation.[20]

Discussion

The therapeutic significance of Saptanga Yoga, as outlined in the Gheranda Samhita, lies in its structured approach to holistic well-being, integrating physical purification, breath regulation and meditative practices. Theoretically, the text emphasizes the importance of Shatkarmas aids in detoxification and physiological balance, Asanas improve musculoskeletal strength and flexibility, Pranayama regulates autonomic function and enhances cognitive clarity and Dhyana and Samadhi foster mental resilience and spiritual well-being. However, empirical validation of these claims remains limited. Modern

scientific research supports yoga's role in stress reduction, cardiovascular health and neural plasticity, with studies indicating improvements in autonomic regulation, metabolic balance and emotional resilience. While Hatha Yoga practices, including those found in Saptanga Yoga, have shown promise in managing chronic illnesses like hypertension, diabetes and anxiety disorders, further randomized controlled trials are necessary to establish causality.

On the contrary, comparing Saptanga Yoga with Ashtanga Yoga reveals - while both systems emphasize discipline and self-regulation, Ashtanga Yoga, as per Patanjali's Yoga Sutras, prioritizes ethical observances (Yama and Niyama) and cognitive refinement, whereas Saptanga Yoga focuses on physical and energetic purification as a prerequisite for higher states of consciousness, which establishes its impact in therapeutical field. Similarly, when contrasted with modern therapeutic models, such as CBT and MBSR, Saptanga Yoga offers an integrative, preventive approach, addressing not only mental resilience but also physiological detoxification and internal balance. While CBT and MBSR rely on structured psychological interventions, Saptanga Yoga encompasses somatic, breath-centric and meditative techniques, potentially offering a broader spectrum of therapeutic applications. However, despite its profound theoretical framework, Saptanga Yoga lacks the empirical robustness that characterizes contemporary medical interventions.

Modern scientific research increasingly corroborates ancient yogic principles, providing empirical evidence for the therapeutic benefits of Saptanga Yoga on both mental and physical health. Neuroimaging studies reveal structural and functional changes in the brain associated with sustained practice, while physiological research highlights improvements in cardiovascular efficiency, immune function and stress regulation. They underscore Saptanga Yoga's role as a complementary therapeutic approach within integrative medicine.

Conclusion

This study highlights the therapeutic dimensions of Saptanga Yoga, as outlined in the Gheranda Samhita, reinforcing its potential role in holistic health, disease prevention and mental well-being. The comparative analysis with Ashtanga Yoga underscores Saptanga Yoga's emphasis on physical purification as a foundation for meditative practices, distinguishing it from Patanjali's focus on ethical and cognitive disciplines. When contrasted with modern therapeutic models, Saptanga Yoga emerges as a complementary approach, integrating breath, movement and mental discipline to address both psychophysiological and emotional health. Despite these promising insights, the study's reliance on secondary sources and textual interpretations presents a key limitation. While empirical research on Hatha Yoga and its therapeutic applications exists, there is a lack of controlled clinical trials specifically validating Saptanga Yoga's efficacy. Most available studies focus on individual yogic techniques, rather than evaluating the combined effects of the sevenfold system as a comprehensive therapeutic intervention.

To establish a stronger scientific foundation, future research should prioritize clinical trials, neurophysiological studies and comparative efficacy analyses. Investigating Saptanga Yoga's effects on cardiovascular health, metabolic disorders, mental health conditions, and neuroplasticity through randomized controlled trials (RCTs) would provide valuable

empirical support. Integrating biomedical assessment tools such as functional MRI (fMRI), heart rate variability (HRV) and biochemical markers could offer deeper insights into its physiological and neurological benefits. By bridging ancient wisdom with modern scientific validation, this research advocates for the integration of Saptanga Yoga into contemporary healthcare. However, its acceptance as a mainstream therapeutic approach requires further empirical substantiation. Future interdisciplinary collaborations between yogic scholars, medical researchers and clinical practitioners will be instrumental in unlocking its full therapeutic potential and facilitating its incorporation into evidence-based holistic medicine.

Department of Yoga
Faculty of Alternate Therapy
Mewar University, Chittorgarh, Rajasthan
[1]dimpy0391@gmail.com
[2]dr.praveensharma81@gmail.com

References

1. *Anshu, Singh, N., Khanna, Y., Bhatt, V., Tushar, Uttam, & Shubham. (2024). Role of yoga and naturopathy in lifestyle disorders: A review. Library Progress International, 44(3), 18657–18661.*
2. *Williams K, Steinberg L, Petronis J. Therapeutic application of iyengar Yoga for healing chronic low back pain. Int J Yoga Ther. 2003;13:55–67.*
3. *Borah Madha, Maske Ujjwal Arun (2021). Therapeutical effects of Swatmaram's Hatha Yoga pradipika and Patanjali's Yoga sutra's a comparative study. http://hdl.handle.net/10603/584111.*
4. *Soni, M. K., & Chatterjee, P. (2024). Efficacy and importance of the techniques of Hatha yoga in the modern therapeutic world. International Journal of Science and Research, 13(4), 1121–1125.*
5. *Yahiya, H. N. (2010). Impact of hatha Yoga exercises on some of the physiological, psychological variables and the level of performances in judo. Procedia-Social and Behavioral Sciences, 5, 2355-2358.*
6. *Walkikar, S.S., Mishra, D. (2023). Therapeutic Effects of Shatkarma on Health Through Ayurvedic Perspective. Ayushdhara, 10(5), 26-30.*
7. *Garner, Malvina & Reith, Wolfgang & Krick, Christoph. (2019). 10-Week Hatha Yoga Increases Right Hippocampal Density Compared to Active and Passive Control Groups: A Controlled Structural cMRI Study. Journal of Neuroimaging in Psychiatry and Neurology. 04. 10.17756/jnpn.2019-027.*
8. *Patidar, P., & Yadav, K. (2023). Importance, techniques, benefits, safety, and adverse effects associated with Shatkarma mentioned in traditional Hatha Yoga texts (HYP & GS) along with comparison: A review on Shatkarma. Journal of Ayurveda and Integrative Medical Sciences, 8(4), 55–61.*
9. *Das, D., Tripathy, S., & Mishra, J. (2023). Conceptual study of Shatkarma for prevention of disease. Journal of Ayurveda and Integrative Medical Sciences, 8(1), 81–84.*
10. *Naragatti, S., & Hosakote, V. (2022). Neti Kriya enhances the nasal functions. Current Medical Research and Opinion, 5(8), 1281–1283. https://doi.org/10.52845/CMRO/2022/5-8-1*
11. *Thangavel, D., Gaur, G., Sharma, V., Subramaniyam, V., & Bhavanani, A. (2013). Effect of 12 weeks of Kapalbhati Pranayama training on cardio-respiratory parameters in young, healthy volunteers of JIPMER population. International Journal of Medical & Pharmaceutical Sciences Research and Review, 1(1), 53–61.*

12. *Palaniappan, S., Siddhan, R. M., Sengottaiyan, A., Mohanraj, S., & Paul, R. (2021). Effect of lung-specific yoga Mudrās on pulmonary function tests in subjects with FEV1% predicted values less than 80%. International Journal of Scientific Research in Dental and Medical Sciences, 3(3), 117–121. https://doi.org/10.30485/IJSRDMS.2021.290063.1168*
13. *Chandratre, V. V. (2021). Pratyahara regarding Swami Kripalvanandji: A study. GAP Bodhi Taru: A Global Journal of Humanities, 4(3), 17–24.*
14. *Jayawardena, R., Ranasinghe, P., Ranawaka, H., Gamage, N., Dissanayake, D., & Misra, A. (2020). Exploring the therapeutic benefits of pranayama (yogic breathing): A systematic review. International Journal of Yoga, 13(2), 99–110.*
15. *Kuppusamy, M., Kamaldeen, D., Pitani, R., Amaldas, J., & Shan mugam, P. (2018). Effects of Bhrāmarī Pranayama on health – A systematic review. Journal of Traditional and Complementary Medicine, 8(1), 11–16.*
16. *Gupta, A. P., & Shokhand, H. (2022). Ujjayi Pranayama in hypothyroidism: A scoping review. International Journal of Physical Education, Sports and Health, 9(1), 107–110.*
17. *Novaes, M. M., Palhano-Fontes, F., Onias, H., Andrade, K. C., Lobão-Soares, B., Arruda-Sanchez, T., Kozasa, E. H., Santaella, D. F., & de Araujo, D. B. (2020). Effects of yoga respiratory practice (Bhastrika pranayama) on anxiety, affect, and brain functional connectivity and activity: A randomized controlled trial. Frontiers in Psychiatry, 11, Article 467.*
18. *Telles, S., Singh, N., Gupta, R. K., & Balkrishna, A. (2016). A selective review of dharana and dhyana in healthy participants. Journal of Ayurveda and Integrative Medicine, 7(4), 255–260. https://doi.org/10.1016/j.jaim.2016.09.004*
19. *Yamashiro, J. (2015). Brain basis of Samadhi: The neuroscience of meditative absorption. The New School Psychology Bulletin, 13(1), 1–10.*
20. *Moharir, A. (2022). A scientific basis of Samadhi - A yogic feat of conditioning the human body to a specific physiological state for experiencing a mentally blissful condition: A note for critical appraisal. 1-21.*

Comparison of end semester achievement in assessment of learning course of open book and closed book sessional exam groups

Preeti Wadhwani

Abstract

The traditional ongoing exam system has been under question due to its drawbacks of not being potent enough to, give precise feedback to all stakeholders, to assess deep learning, to enable learners face the exams without any anxiety, to enable learners do further learning through exams. COVID 19 forced people to switch to alternatives and open book was one of those. Though NEP 2020 has been focussing on open book exams yet the system at large doesn't permit the educators to change the format of external end semester exam which is often closed book. There have been researches that state open book exams has the potency to overcome many limitations of traditional exams but there is a paucity of research in regard to how exposure to open book exam affects achievement in closed book exams. This study compared the end semester achievement in assessment of learning course of open book and closed book sessional exam groups. The sample comprised of 80 undergraduate students of integrated B.Ed. semester 6 of Dr. Harisingh Gour university sagar. The open book sessional group took 2 open book sessionals where they were allowed to use books, notes and printed material and questions were of application, analysis, and evaluation level. The traditional closed book sessional group took 2 traditional closed book sessional exams. The end semester achievement in assessment of learning course was assessed by a closed book Achievement test which was commonly taken by open book sessional and closed book exam sessional groups. Data were analysed with the help of independent samples t-test. It was found that exposure to open book sessional was found to be beneficial to students than closed book sessional in gaining high end semester achievement in assessment of learning course.

Key words: Open book exam, Achievement, closed book exam, end - semester exams, sessional exams

Introduction

This is a phase where gross enrolment ratio (G.E.R.) of education system is improving which is 28.4% in higher education as per India Budget economic survey 2024--25 but the employment rate is 47.20% (MOSPI,2025) and has not scaled up in proportion to the rise in G.E.R. Researchers have been trying to find out solutions to this problem since

Mudaliar Commission times that spoke of multipurpose schools where vocational aspect of education was emphasised along with academic subjects after a specific stage.

This divide in academic and vocational courses existed for many decades. The constructivist philosophy shifted the focus and new paradigm emerged when it was said learner constructs knowledge and thus practical aspect of learning gained importance in a new way looking at it as an integral part of theory. This had wide implications for assessment of learning too as the drawbacks of system that were being discussed included non- holistic approach that merely gave feedback on memorizing potential, the stress and anxiety experienced by examinee, no precise feedback on learning outcomes / competencies gained.

COVID 19 became another major reason to rethink assessment strategies as the traditional method of exam could not imagine the process where examinee was not monitored during the evaluation period by a physically present evaluator. During the period the whole system was under arrest and students were scattered and out of physical reach of examiners. Education system had to accept the distance between learner and teacher/ evaluator as an indispensable component of the system which was till then only a feature in distance education programmes (Todorova & Bjorn-Andersen, 2011). Technology came as a saviour but due to digital divide it could not bring uniformity to the process as merely basic and superficial requirements were fulfilled during the whole evaluation process, time invested in it seem going a waste as no valid results were gained from it regarding actual learning outcomes.

RTE (2009) had already emphasised that evaluation system in education needs to fulfil some demands which are clearly not being fulfilled by closed book education system as revealed by reviewed studies. The purpose of education is to see learning as search of knowledge along with gaining skills, and assessment needs to reflect application of such learning, without fear and traumas. Recently NEP 2020 has come with a refreshed focus on reforms in assessment to give molecular feedback in terms of learning outcomes, skills developed and competencies gained.

There is a need to search alternatives that solve these issues and on review of studies there are findings that state open book exams is an alternative mode, universities switched over to open book exams during natural calamities and COVID 19 leaving the reluctance for less tried options (Mohapatra,2020; Strielkowski, 2020). Researchers compared the results of open and closed book exams and found marks in open book exams were significantly higher than marks in closed books exams. (Krarup, Naeraa, & Olsen, 1974; Francis, 1982; Agarwal, Karpicke, Kang, Roediger, & McDermott, 2008; Gharib, Phillips & Mathew, 2012; and Ashri & Sahoo, 2021). Contrarily there was no significant difference found in the marks of learners in open book and closed book exams (Pauker, 1974; Ioannidou, 1997; Brightwell, Daniel, & Stewart 2004).

Ashri and Sahoo (2021) also reported non availability of material, lack of digital infrastructure as a major challenge to open web exam, curriculum also lacked the scope of conceptual and applied learning. Further, open book exams gave opportunity to evaluate the skills for application, analysis, synthesis and evaluation of information rather than merely delivering text. Research findings found that open book exams replaced surface learning with deep learning (Myyry & Joutsenvirta, 2015) and encouraged higher cognitive

process (Gulikers, Bastiaens, & Kirschner, 2006). Open book exams preparations lead to mastering the content, involvement in learning process, use of knowledge gained creatively and face exams with optimism (Theophilides and Dionysiou, 1996). Broyles, Cyr, and Korsen (2005) found three outcomes of open book exams, one reducing examination tension and stress, second lasting learning outcomes and third motivating students to prepare themselves in more constructive ways reducing rote memorization of facts. The students more likely exhibit "independent judgement and critical appraisal. The open book exams assessed abilities not usually revealed (Heywood, 1989). Heijne-Penninga, Kuks, Hofman, & Cohen-Schotanus, (2010) found outcomes measured by open-book tests predicted closed-book test results better than the other way around (beta-coefficients 0.72 and 0.11, respectively).

Wooten (2016) found frequent online open book test may improve student learning as these students scored significantly higher in final exams. Heijne-Penninga, Kuks, Schonrock-Adem, Snijders, & Cohen-Schotanus (2008) found open book tests complemented the current assessment programs. Students who took open-book exams the entire semester experienced significantly lower grades on closed-book final exams relative to those who took closed-book exams the entire semester (Moore & Jenson, 2007). Green, Ferrante, and Heppard (2016) found students who took open book quizzes did better on open book final exams but not on other exams. In a more recent study, student judgements of comprehension were higher when students were benefited from being able to use the open-book format (Ackerman & Leiser, 2014).

Thus, there were few studies comparing whether the open book and closed book exam achievement differ and findings are inconclusive. There are studies that highlight the strengths of open book exams in terms of facilitating deep learning without negative psychological influences and problems associated with it. But there is one study that states open book test takers score high in final exams. The educators do not have control over the pattern of external exams but can expose the students to open book exams in sessional. There was one study to explore the influence of open book sessional on open book final exam but there was no study to compare the achievement in end semester closed book exam of two groups one exposed to open book exams and another to traditional closed book exams in their sessional. This study was an attempt to explore the question, whether an exposure to open book exam in sessional influenced the achievement of undergraduate students in the end semester closed book exams?

Objectives

To compare the mean scores of end semester achievement in assessment of learning course of open book and closed book sessional exam groups.

Hypothesis

There is no significant difference in the mean scores of end semester achievement in assessment of learning course of open book and closed book sessional exam groups.

Methodology

The present study was a descriptive survey in nature.

Sample

The group comprised of 80 undergraduate students. These were selected from enrolled batch of integrated B.Ed. sixth semester at department of education, Dr. Harisingh Gour Vishwavidalaya, Sagar, representing both rural and urban residential background and belonging to different socio-economic levels. The age of students ranged between 19-23 yrs. There were 39 students in open book sessional group and 41 students in closed book sessional group.

Tools

In the present study, the end semester Achievement in assessment of learning course was assessed by an Achievement in the subject 'Assessment of Learning' test which was commonly taken by open book sessional and traditional exam sessional groups. The test comprised of all compulsory 10 objective questions in section A, four short answer questions to be attempted out of six in section B, and three long answer questions to be attempted from five in section C. The test was of 60 maximum marks (10 marks objective + 20 marks short answer + 30 marks long answer). The time duration was three hours for both the groups.

Procedure of data collection

The open book sessional group took two open book sessional exams in the course 'Assessment of learning' with a gap of 45 days where they were allowed to use the class notes, books or any printed material to answer the questions of sessional exam designed as per norms of open book exam where the levels of questions were application, analysis, and evaluation. The closed book sessional group took two traditional closed book sessional exams in the course 'Assessment of learning' with a gap of a 45 days. End semester exam was a closed book exam conducted one month after second sessional was over. Data were collected in respect of end semester achievement in assessment of learning course from the marksheets issued to the subjects of the study.

Data Analysis

Independent samples t - test was used to analyse the data.

Results and Interpretation

Comparison of mean scores of end semester achievement in assessment of learning course of open book and traditional closed book sessional exam groups

The objective was to compare the mean scores of end semester achievement in assessment of learning course of open book sessional and closed book sessional groups. The data were analyzed with the help of independent sample t - test. The results are given in Table 1.

Table 1: Group-wise Mean, SD, N and t-values of end semester achievement in assessment of learning course of students

Type of sessional group	Mean	SD	N	t- Value	Remarks
Open book sessional group	38.76	10.85	39	5.65	$p<0.001$
Closed book sessional group	27.24	6.78	41		

From Table 1, it can be seen that the t – value is 5.65, which is significant at 0.01 level with df = 63.20 when Equal Variance was not assumed (Black, 2007). It indicates that the mean scores of end semester achievement in assessment of learning course of open book sessional group and closed book sessional group differ significantly. In the light of this, the null hypothesis that "There is no significant difference in the mean scores of end semester achievement in assessment of learning course of open book and closed book sessional exam groups" is rejected. Further, the mean score of end semester achievement in assessment of learning course of open book sessional group was 38.76, which is significantly higher than that of closed book sessional group whose mean score of end semester achievement in assessment of learning course was 27.24. It reflects that the exposure to open book sessional significantly influenced end semester achievement in assessment of learning course. It may, therefore, be said that exposure to open book sessional was found to be beneficial to students than closed book sessional in gaining high end semester achievement in assessment of learning course.

Discussion

The finding of this study reflects that an open book exam exposure enabled the learner to achieve high in following closed book end semester exam in the same course. Similar findings by Heijne-Penninga et al., 2010 and Wooten, 2016 supported this result. This also indicates that open book exam is supporting learning rather than merely reporting achievement as a purpose of assessment suggested by researchers (Torrance, 1993; Glaser, 1990; black, 1995). This study also indicated that open book exams can supplement the traditional mode of exams for gaining purpose of assessment that is to enhance the process of learning along with gaining feedback on learning as supported by findings of Kaufman (1994); Theophilides and Koutselini (2000); Myyry and Joutsenvirta (2015). Thus, this study is useful in supporting the assertion that an exposure to open book sessional significantly improves the end semester achievement in closed book exam as compared to group exposed to closed book sessional.

Open book exams give opportunity to learners to express their learning in their own words as it often doesn't focus on standard answers. It seeks an explanation on the mode of reaching the answer given by learner. Aided with books it seems, such dynamic assessment which allows their free reference to books lowers their negative apprehensions towards exams and thus enables them to eventually overcome the exam anxiety and show their intellectual skills better as also indicated in findings of Bethge Carlson and Wiedl (1982); Hamers and Resing (1993) perhaps this positive affect and deep learning is also carried forward in the following closed book exams leading to better achievement as open book exams have been found to affect the student experience in preparing for exams (Henderson, Chung, Awdry, Ashford, Bryant, Mundy,& Ryan, 2023)

Implications

Current system of exam is too information oriented and has outlived relevance in theory and practice and innovative practices are facing many constraints due to big paradigm shift needed to implement such changes. The results of the study recommends that one can immediately begin with small changes of adapting open book exams as internal sessional exams to derive benefits from it without waiting for a big change in the system allowing

use of open book exams as accepted pattern of exams.

Key to successful implementation of open book exams also rests with educators involved in the process. This bears implications for teachers who design curriculum and teaching learning strategies to mould the process such as to facilitate students to face open book exams, this is also supported by the findings of Ashri and Sahoo (2021). The designing of open book exams is a specialised task and teachers often are not trained for same. If not designed and used properly by orienting the students and teachers involved, it can lead to some disadvantageous results as seen in research findings (Moore & Jenson, 2007).

There is a great resistance to the use of new approaches and a unified effort is needed to make sure that educational fraternity agrees to invest into new modes. This lays implications for teacher education department to design their curricula such that it prepares the school teachers with competencies enabling them to adapt such innovative pedagogical practices and revolutionise the teaching, learning and assessment process.

The teachers in higher education institutions who do not get any degree from teacher education department are deprived of any orientation on philosophical- technical aspects of curriculum and assessment. In these times of text generative artificial Intelligence entering educational arena it's important to understand and implement more worthwhile and effective ways of assessment as also supported by Jochim and Lenz-Kesekamp (2024). Hence it's imperative that such courses which educate teachers for using open book assessments be included in other degrees courses of higher education.

This study leaves research indications for future researchers to understand how this exposure affects learners with different demographic characteristics. Longitudinal studies can help understand the effects of such exposure on various learner characteristics over a period of time. There is a need to understand different modes of open book exams in terms of restrictions, only print material access, web access etc and studies need to explore the difference in potential of each in terms of their psychological effects, academic and cognitive benefits.

Department of Education
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar
pwadhwani@dhsgsu.edu.in

References

1. *Ackerman, R., & Leiser, D. (2014). The effect of concrete supplements on metacognitive regulation during learning and open-book test taking. British Journal of Educational Psychology, 84(2),329-348. Retrieved from https://doi.org/10.1111/bjep.12021*
2. *Agarwal, P. K., Karpicke, J. D., Kang, S. H., Roediger, III H. L., & McDermott, K. B. (2008). Examining the testing effect with open- and closed-book tests. Applied Cognitive Psychology, 22(7), 861-876. Retrieved from https://doi.org/10.1002/acp.1391*
3. *Ashri, D., & Sahoo, B. P. (2021). Open Book Examination and Higher Education During COVID-19: Case of University of Delhi. Journal of Educational Technology Systems, 50(1), 73-86. Retrieved from https://doi.org/10.1177/0047239521013783*

4. *Bethge, H., Carlson, J., & Wiedl, K.H. (1982). The effects of dynamic assessment procedures on Raven Matrices performance, visual search behaviour, test anxiety and test orientation. Intelligence,6(1),89-97. Retrieved from https://doi.org/10.1016/0160-2896(82)90022-8*

5. *Black, K. (2007). Business Statistics: for Contemporary Decision making. U.S.A.: John Wiley & sons.5 edn.*

6. *Black, P.(1995). Can teachers use assessment to improve learning? British Journal of Curriculum Assessment, 5(2),7-11. Retrieved from: https://www.researchgate.net/publication/38103844_Can_teachers_use_assessment_to_improve_learning*

7. *Brightwell, R., Daniel, J. H., & Stewart, A. (2004). Evaluation: Is an open book examination easier? Bioscience Education, 3(1), 1-10. Retrieved from: https://doi.org/10.3108/beej.2004.03000004*

8. *Broyles, I.L., P.R. Cyr, & N. Korsen (2005). Open book tests: Assessment of academic learning in clerkships. Medical Teacher, 27(5), 456-462. Retrieved from: https://doi.org/10.1080/01421590500097075*

9. *India Budget Economic Survey (2024-2025). Govt. of India Retrieved from: https://www.indiabudget.gov.in/economicsurvey/doc/stat/tab8.3.pdf*

10. *Francis, J. (1982). A case for open-book examinations. Educational Review, 34(1), 13-26.*

11. *Retrieved from: https://doi.org/10.1080/0013191820340102. Gharib, A., Phillips, W., & Mathew, N. (2012). Cheat sheet or open-book? A comparison of the effects of exam types on performance, retention, and anxiety. Psychology Research, 2(8), 469478. Retrieved from: https://doi.org/10.17265/2159-5542/2012.08.004*

12. *Glaser, R. (1990). Toward new models for assessment. International Journal of Educational Research,14(5),475-483.*

13. *Green, S. G., Ferrante C. J., & Heppard K. A. (2016). Using Open-Book Exams to Enhance Student Learning, Performance, and Motivation. The Journal of Effective Teaching, 16(1), 19-35. Retrieved from: https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1092705.pdf*

14. *Gulikers, J. T. M., Bastiaens, T. J., & Kirschner, P. A. (2006). Authentic assessment, student and teacher perceptions: the practical value of the five-dimensional framework. Journal of Vocational Education and Training, 58(3), 337-357. Retrieved from : https://doi.org/10.1080/13636820600955443*

15. *Hamers, J.H.M. & Resing, W.C.M. (1993). Learning potential assessment: Introduction. In J.H.M. Hamers, K.Sijtsma and A.J.J.M. Ruijssenaars(eds.) Learning potential assessment:Theoritical, Methodological and Practical Issues. Amsterdam: Swets and Zeitlinger. Retrieved from: https://doi.org/10.1201/9781003077398*

16. *Henderson, M., Chung, J., Awdry, R., Ashford, C., Bryant, M., Mundy, M., & Ryan, K. (2023). The temptation to cheat in online exams: moving beyond the binary discourse of cheating and not cheating. International Journal for Educational Integrity,19,21. Retrieved from: https://doi.org/10.1007/s40979-023-00143-2*

17. *Heywood, J. (1989). Assessment in Higher Education. London: John Wiley and Sons.*

18. *Heijne-Penninga, M., Kuks, J. B. M., Hofman, W. H. A., & Cohen-Schotanus, J. (2010). Influences of deep learning, need for cognition and preparation time on open- and closed-book test performance. Medical Education, 44(9), 884-891. 2 edn. Retrieved from: https://doi.org/10.1111/j.1365-2923.2010.03732.x*

19. *Heijne-Penninga, M., Kuks, J.B.M., Schonrock-Adem, J., Snijders,T.A.B., & Cohen-Schotanus, J. (2008).Open-book tests to complement assessment-programmes: Analysis of open and closed-book tests. Advances in Health Sciences Education,13(3),263-73. Retrieved from: https://doi.org/ 10.1007/s10459-006-9038-y.*

20. *Ioannidou, M.K.(1997). Testing and life-long learning: Open-book and closed-book test in a university course. Studies in Educational Evaluation,23,131-139. Retrieved from: https://doi.org/10.1016/S0191-491X(97)00008-4*

21. *Jochim, J., & Lenz-Kesekamp, V.K. (2024). "Teaching and testing in the era of text-generative AI: exploring the needs of students and teachers". Information and Learning Sciences, Vol. ahead-of-print No. ahead-of-print. Retrieved from: https://doi.org/10.1108/ILS-10-2023-0165*

22. *Kaufman, A.(1994). Intelligent testing with WISC-III. New York: John Wiley.*

23. *Krarup, N., Naeraa, N., & Olsen, C. (1974). Open-book tests in a university course. Higher Education, 3(2), 157-164. Retrieved from: https://doi.org/10.1007/BF00143789*

24. *Ministry of Human Resource Development, Government of India (2020). National Educational policy 2020. Retrieved From: https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf*

25. *Ministry of Law and Justice (2009). The right of children to free and compulsory education Act 2009.Govt. of India. Retrieved from: https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/rte.pdf*

26. *Ministry of Statistics and Programme Implementation (MOSPI) (2025). India worker population ratio. Trading Economics. Retrieved from: https://tradingeconomics.com/india/employment-rate*

27. *Mohapatra, A. K. (2020). Impact of COVID-19 on higher education. Journal of Management and Public Policy, 11(2), 4–6. Retrieved from : https://search.proquest.com/openview/8516412d1ebb4441b95dcffc8a8c919d/1?pq-origsite=gscholar&cbl=906342*

28. *Myyry, L., & Joutsenvirta, T. (2015). Open-book, open-web online examinations: Developing examination practices to support university students' learning and self-efficacy. Active Learning in Higher Education, 16(2), 119-132. Retrieved from: https://doi.org/10.1177/1469787415574053*

29. *Moore, R., & Jensen, P. A. (2007). Do open-book exams impede long-term learning in introductory biology courses?. Journal of College Science Teaching, 36(7), 46-49. Retrieved from: https://www.jstor.org/stable/42992504*

30. *Pauker, J.D. (1974). Effect of open book examinations on test performance in an undergraduate child psychology course. Teaching of Psychology, 1(2), 71–73. Retrieved from: https://doi.org/10.1177/009862837400100205*

31. *Strielkowski, W. (2020). COVID-19 pandemic and the digital revolution in academia and higher education. Preprints, 1,1-6. Retrieved from : https://doi.org/10.20944/preprints202004.0290.v1*

32. *Theophilides, C., & Dionysiou, O.(1996). The major functions of the open book examination at the university level: A factor analytic study. Studies in Educational Evaluation, 22(2),157-70. Retrieved from: https://doi.org/10.1016/0191-491X(96)00009-0*

33. *Theophilides, C., & Koutselini, M. (2000). Study Behavior in the Closed-Book and the Open-Book Examination: A Comparative Analysis. Educational Research and Ealuation , (4),379-393. Retrieved From : https://doi.org/10.1076/edre.6.4.379.6932*

34. *Todorova, N., & Bjorn-Andersen, N. (2011). University learning in times of crisis: The role of IT. Accounting Education, 20(6), 597–599. Retrieved from https://doi.org/10.1080/09639284.2011.632913*

35. *Torrance, H. (1993). Formative assessment: some theoretical problems and empirical questions. Cambridge Journal of Education, 23: 333-343. Retrieved From: https://doi.org/10.1080/0305764930230310*

36. *Wooten, T. (2016). Leveraging Online Testing to Enhance Student Learning, Advances in Accounting Education: Teaching and Curriculum Innovations. Leeds: Emerald Group Publishing Limited. Retrieved From: https://doi.org/10.1108/S1085-462220160000019006*

They Long to Belong: Character Conflict in Mahesh Dattani's *Dance Like a Man* and *Final Solutions*

Prerna Sharma[1], Nadeem Ahmad Rather[2]

Abstract

The fundamental human need for connection and belonging provides a sense of security, validation, purpose, and mental and emotional stability. It also plays a crucial role in shaping one's identity and interactions with others. This paper applies Abraham Maslow's 'hierarchy of needs' and Alfred Adler's theory of individual psychology to explore the impact of unfulfilled belonging on an individual's sense of self, behavior, and actions. It examines Jairaj and Javed, central characters in Mahesh Dattani's plays *Dance Like a Man* and *Final Solutions*, highlighting the absence of belonging as the root cause of their internal and external conflicts. The study analyses the selected characters within their familial and societal roles, emphasizing the intrinsic need for belonging and the consequences of its denial. Using a psychoanalytic lens, it reinforces belonging as a vital component of human experience and its importance in promoting psychological and social well-being.

Keywords: belonging, conflict, hierarchy of needs, identity, psychoanalysis.

1. Introduction

Belonging is a fundamental human need[1], essential for psychological and emotional well-being. The desire to belong—to be seen, understood, and accepted by others—transcends cultural, temporal, and geographic boundaries. However, despite its universal significance, belonging often lies at the core of internal and societal conflicts, as it stands against the forces of exclusion and individual identity struggles. In a rapidly globalizing world marked by shifting socio-cultural norms and complex power structures, the relevance of belonging as a value closely linked to security becomes important.

मध्य भारती -88, जनवरी-जून, 2025 ISSN 0974-0066, pp. 185-193
Peer-reviewed biannual Research Journal

The plays of Mahesh Dattani explore contemporary issues, particularly the tension between societal norms and individual identity. Family, cultural, and social contexts shape the identity of his characters, yet their conflicts become more apparent when they deviate from expected societal conventions. This paper focuses on two of Mahesh Dattani's plays, *Dance Like a Man* (1989) and *Final Solutions* (1993), to examine the way in which belonging, or its absence, impacts individual lives and broader social relations. It investigates the influence of extrinsic determinants on the security of belonging and the intrinsic human need to connect and belong within a specific social framework. Using a psychoanalytic perspective, the present study argues that the struggle to belong can lead an individual to adverse psychological and social consequences.

Dance Like a Man explores the protagonist Jairaj Parekh's struggles within his family, where characters strive for power, authority, and control. It brings forth questionable angles on gender stereotypes, patriarchy, traditions, modernity, and family dynamics. Rather than assessing Jairaj's righteousness, this paper focuses on the underlying cause of his conflicts: his lack of a secure sense of belonging. Similarly, *Final Solutions* addresses communal disharmony in India, exploring conflicts between different religions, dilemmas and disturbances within the same religion, and prejudices and power struggles across three generations of a family. This study focuses on Javed, a character in conflict throughout the play, not to judge his actions but to understand the causes of his tragic circumstances: a disrupted sense of belonging shaped by societal exclusion and internalized prejudices.

By examining Jairaj and Javed, this paper identifies a common ground for character conflicts in both plays. Using Abraham Maslow's hierarchy of needs, it traces the characters' conflicts to their need for security and belonging. Alfred Adler's theory of individual psychology further supports this study as it highlights the necessity of a sense of belonging for a healthy and fulfilling life. The analysis, therefore, situates belonging as a vital, though often overlooked, component of human experience.

2. Sense of Belonging and Character Conflict

The sense of belonging is "defined as the experience of personal involvement in a system or environment so that persons feel themselves to be an integral part of that system or environment" (Hagerty et al., 1992, p. 173). For individuals, the ability to meaningfully connect, interact, and engage with others is a fundamental necessity. This potential to belong works as an intrinsic motivation that helps to adapt, behave, respond, and act well (Baumeister & Leary, 1995, pp. 497–529). The security that comes with belongingness is a core human need with far-reaching physical, mental, social, and behavioral outcomes.

Yet, loneliness, isolation, and the pursuit of identity are increasingly prevalent in today's world. Over time, the loss of a sense of belonging can lead to psychological isolation and drive individuals towards conflict, both within themselves and with the external world, influencing their thoughts, actions, and interactions.

The presence of a sense of belonging plays a crucial role in creating and finding meaning in a person's life (Stillman & Baumeister, 2009). When individuals feel connected to their social environment, they develop a stable sense of identity, purpose, and emotional security. In contrast, a lack of belonging can result in feelings of alienation, leading to frustration, resentment, and a struggle to establish one's place in the world. This may compel individuals to seek validation or recognition in ways that cause emotional distress or conflict with others.

In the present discussion, character conflict refers to an individual's internal or external struggle. The characters of Jairaj Parekh in *Dance Like a Man* and Javed in *Final Solutions* have been observed through the lenses of gender studies, communal strife, and postcolonial perspectives. Yet, the often-overlooked need for belonging and security remains the root cause of their conflicts.

3. The Hierarchy of Needs and the Adlerian View of Belonging

Abraham Maslow's hierarchy of needs, introduced in his psychological theory of motivation, provides a framework for understanding fundamental human desires, including physiological needs, safety, love and belongingness, esteem, and self-actualization. The first two levels deal with the basic amenities of life— 'physiological' and 'safety' needs— while the third and fourth levels focus on psychological needs, well-being, and fulfilment (1943a, 1943b).

The third level, 'belongingness and love,' relates to the need for interpersonal relationships across different spheres such as family, friends, society, and work. A lack of acceptance, understanding, appreciation, and involvement at this level can have detrimental consequences, obstructing progress to the fourth level, 'self-esteem,' which involves prestige and accomplishment. 'Self-actualization,' the pinnacle of Maslow's pyramid, represents self-fulfillment, self-acceptance, creativity, and realization of one's full potential. Individuals who struggle with unfulfilled needs at the lower levels of Maslow's hierarchy find it difficult to progress towards self-actualization (Maslow, 1943a).

Alfred Adler's theory of individual psychology treats every person as a distinctive whole entity, shaped by both intrinsic and extrinsic factors. According to Adlerian psychology, man functions well when he feels that he belongs; however, things deteriorate

in the absence of this feeling (Ferguson, 2010, pp. 1–7). Belonging is intrinsic to human nature, and any disruption to its fulfilment can create a sense of emptiness, often leading to undesirable behaviors and actions.

Alfred Adler in *Understanding Human Nature: A Key to Self-Knowledge* (1954) states, "Fear of human beings can be dissolved solely by that bond which binds the individual to humanity. Only that individual can go through life without anxiety who is conscious of belonging to the fellowship of men" (p. 165). This idea highlights the necessity of interpersonal bonds for psychological well-being. Without a strong sense of belonging, individuals are likely to experience alienation, self-doubt, and emotional turmoil, preventing them from reaching their highest levels of capability.

Both Jairaj and Javed experience a lack of belonging at different stages of life, yearning for acceptance within their communities and families. Jairaj, in his struggle for artistic freedom, faces alienation within his family and society, where his aspirations stand against traditional values. His longing for validation and acceptance directly influences his self-esteem and personal growth. Similarly, Javed's experiences reflect the complexities of belonging in a socio-cultural context where his identity and aspirations place him in opposition to societal expectations. The struggles of Jairaj and Javed, shaped by both internal conflicts and external pressures, show that the lack of belongingness can hinder an individual's psychological and emotional growth.

Both theories highlight that unmet needs at the lower levels of an individual's development can prevent them from achieving higher levels of self-fulfillment and actualization. The present study uses the circumstances and experiences of Jairaj and Javed to focus on the crucial role of belonging in one's life, as defined by Abraham Maslow and emphasized by Alfred Adler.

4. Aspects of Belonging and the Struggle for Identity

Belonging, as a fundamental human value, extends across various facets of life, from the home and family environment to societal acceptance, professional pursuits, and emotional or mental stability. For Jairaj and Javed, the absence of belonging on multiple levels shapes their identities, actions, and internal struggles. The tension between external pressures and personal desires in both characters reveals their conflicts and sufferings.

4.1. Home and Family

At the foundation of Abraham Maslow's hierarchy lie basic survival needs, usually fulfilled by the security and comfort of home. During the first few years of life, Jairaj and Javed have their physiological needs met by their families. However, home is "not merely a physical

structure or a geographical location but always an emotional space…" (Rubenstein, 2001, p. 1). For both characters, their environments fail to provide the nurturing and emotional connection required for lasting stability.

Jairaj faces fewer challenges at the initial levels of the pyramid. His father, Amritlal Parekh, ensures his financial stability, physical comfort, and rest, but the environment at home lacks affection and understanding. In the absence of a mother figure, Jairaj grows without maternal warmth and emotional security. Amritlal, a strict and authoritative figure, projects a liberal-minded image but adheres to conventional principles and beliefs that overburden Jairaj. He lacks the comfort of being cared for or understood, resulting in fallen confidence and affirmation in his actions and words. His home, where Jairaj loses his infant son, becomes a place of confinement rather than comfort, which is symbolized by suffocating doors, reminiscent of the doors of hell. Jairaj refers to it as 'the house of Sri Amritlal Parekh' rather than a home where he feels he belongs (Dattani, 2000, p. 440).

Similarly, Javed's physiological needs are initially met by his family, but a traumatic childhood experience threatens his psychological safety, leaving him vulnerable at the second level which in turn also impacts the first level of physiological needs. Unfortunately, over time, he becomes a part of the mob that snatches away the feeling of security from others. Javed's childhood confrontation with communal disputes distorts his perception of society, planting a seed of alienation that intensifies as he enters adulthood (pp. 200–201). Disowned by his family due to his unethical activities and distrust of law and order, Javed feels lost, insecure, and disconnected. These are reflected in the repetition of his dialogues and the dilemma in his thoughts. Despite claiming to know many people in town, his confidence vanishes when he is caught, reflecting his struggle (pp. 176–177).

Both Jairaj and Javed are deprived of a 'homely' feeling at home and, consequently, the fundamental sense of belonging and safety at the third level of the pyramid. The absence of understanding, belonging, and trust leaves them enraged, lonely, and secluded.

4.2. Marriage and Community

The need to belong shapes individuals' understanding of themselves and their relationships with others. As May (2013) states, "Belonging can also be characterized as feeling at ease with one's self and one's social, cultural, relational and material contexts. We come to understand who we are partly on the basis of where and with whom we belong, which is why belonging is of fundamental importance to the self" (2013, p. 3). Within marriage and community, this sense of belonging is particularly significant, as it provides a foundation for identity and emotional security. However, when these structures fail to nurture a person's sense of self, it may lead to isolation and disillusionment.

The third level in Abraham Maslow's framework— 'belongingness and love'—is a painful void for Jairaj. The lack of a nurturing relationship at home leaves him devoid of connection. His father's rigid expectations and societal standards challenge Jairaj's passion for dance, isolating him both within his family and the larger community. Unlike the other aspects of his life, Jairaj's marriage is a choice that he makes for himself, however contrary to what she claims, his wife, Ratna marries Jairaj not because he is a dancer but because he allows her to dance (Dattani, 2000, p. 426). Amritlal Parekh's approval of Jairaj's marriage is not for his son's happiness but to maintain his liberal image as a person who allowed a daughter-in-law from outside the community. Throughout, Jairaj is seen as inadequate by his father and wife, who do not find him man enough. Ratna's constant undermining of Jairaj's masculinity and ability, such as in her remark that he "stopped being a man" upon returning to his father's house, increases Jairaj's sense of inadequacy, ultimately depriving him of any sense of true belonging within his own family or community (p. 402).

Similarly, Javed's struggles with acceptance from an early age, as societal prejudice and discrimination push him towards radical associations in a misguided attempt to reclaim his identity. Alienated from his family and mainstream community, Javed seeks solace among rebel groups, only to find that his experiences with them intensify his disillusionment. In Act II, it is revealed that during a Rath Yatra of Hindus, a mob of Muslim rioters intervened, threw stones, broke the idol of a Hindu deity, created a ruckus in the name of Jihad, and killed the poojari. However, in Act III, while explaining the incident at the chariot, Javed discloses that although he had been assigned the task of murdering the poojari and had the opportunity to do so, he did not go through with it. Instead, another man in the mob picked up the knife and carried out the killing. Javed's agony is evident when he exclaims, "……Why am I here? What am I doing here? Get me off! I want to get off!' … The joyride was over" (p. 208). This incident further alienates Javed from his family and community.

Jairaj and Javed struggle to find recognition and support from their communities, turning to alternative paths in search of belonging—Jairaj through his marriage and Javed through radical associations. However, these pursuits further deepen their alienation rather than providing genuine acceptance. Jairaj remains trapped in a marriage that reinforces his insecurities, while Javed's disillusionment with radicals leaves him directionless. Their experiences highlight the psychological impact of a lack of acceptance within one's family and community on an individual's identity, leading them to isolation and self-doubt.

4.3. Profession and Recognition

Jairaj's passion for dance, which begins as a hobby and later turns into a professional pursuit, clashes with societal norms, isolating him further from his father's circle. Amritlal Parekh's disapproval, combined with Ratna's betrayal, results in a secret agreement between Amritlal and Ratna to restrict Jairaj's dancing aspirations (p. 427). This not only obstructs Jairaj's artistic dreams but also deprives him of a sense of purpose, further taking away his chances of belonging. The few moments of pride he might have experienced in his art are dismissed, as Ratna diminishes Jairaj's contributions and claims their shared achievements solely for herself (pp. 438–439). The familial disapproval and professional setbacks leave Jairaj aimless. He struggles to find self-esteem or accomplishment at the fourth level of Maslow's hierarchy, where recognition and personal accomplishment could have provided Jairaj with a stronger sense of identity and belonging.

As DeWall and Richman (2011) state, "…the desire for reconnection can lead socially excluded people to engage in unhealthy behaviors that may earn them acceptance" (p. 920). This idea is reflected in Javed's journey, where his exclusion from society pushes him to seek belonging in radical circles, even though it ultimately fails to provide him with true recognition or purpose. As a child, Javed's simple, beautiful, and attractive view of the world is shattered by an early experience of communal prejudice. While delivering a letter to a man from a different religion, Javed is asked not to enter the house but to leave it on the wall. After this, the man enters and cleans the spot on the gate where Javed's hand touched it as if the child had tainted the sanctity of his house. The sound of prayer bells from the house that follows becomes a haunting reminder of his exclusion. The next day, the accusation of meat dropping in the man's house, which he might have done, tarnishes Javed's hero status for those around him (pp. 200–201). This incident marks a turning point in his life, leading him to drop out of school and lose any chance of professional belonging. Beyond this early disruption in his path, Javed seeks comfort among rebels and radicals whom he joins; believing that their shared anger will offer him the solace and acceptance that he craves, but fails to become one of them. He confesses, "I was swayed by what now appears to me as cheap sentiment" (pp. 204–205). Serving merely as a pawn in a violent agenda, Javed is unable to find recognition or a legitimate place in society. His fleeting moments of pride and purpose in life are overshadowed by an overwhelming sense of guilt and emptiness, further intensifying his internal conflict.

5. The Elusive Search for Self-Actualization

Jairaj and Javed struggle with emotional and mental isolation, the ultimate barrier to self-actualization. Jairaj craves for the basic warmth of human connection, seeking someone

"to talk to" in the depths of his loneliness (p. 442). Without support from family, emotional intimacy in marriage, or acceptance from the community, Jairaj's self-esteem diminishes, as witnessed in his plea to Ratna when he says, "I want you to give me back my self-esteem" (p. 443). Javed is in dilemma, self-doubt, pain, and anger, but not directed at one person, to be specific. He might be commonly described as a rioter or outcast; however, his inner chaos becomes visible when he reflects on the riots he participates in, expressing regret and disappointment at the violence and hatred that consumed him.

As a result of having been trapped in an environment that suppresses his artistic aspirations and emotional needs, Jairaj succumbs to self-doubt and cynicism. He is unable to reach a state of self-fulfillment. Similarly, childhood trauma, communal alienation, lack of constructive guidance, and his experiences in radical circles lead Javed away from self-fulfillment. Neither character achieves self-actualization; their lives are marked by unfulfilled potential, self-doubt, and a yearning for a secure place in a world that repeatedly denies them the belonging they seek.

The struggles of Jairaj and Javed resonate deeply with the third and fourth levels of Maslow's hierarchy of needs, revolving around love, belongingness, and esteem. Both characters face alienation and emotional isolation. One after the other, Jairaj feels let down at the hands of his father, wife, and society. Therefore, at the fourth level of the pyramid, the chances of feeling successful or accomplished are lost. Similarly, Javed, in *Final Solutions*, is estranged from family, community, and self. In his state of dilemma, Javed knows that he is not doing the right thing, but at the same time, questions the substance of righteousness. With no education, profession, home or achievement, the fourth level does not even enter Javed's world. While describing the scene of the mob, he uses the words "Of finding a cause to give purpose to his existence" (p. 205).

With so much happening at the first four levels of Maslow's hierarchy, the fifth level of self-actualization remains unattainable for Jairaj and Javed. They struggle with feelings of insecurity while their unresolved psychological conflicts prevent them from reaching their full potential. Consequently, they are unable to fully rationalize their thoughts or embrace their emotions, leaving them stuck somewhere between the two extremes.

6. Conclusion

At the intersection of Maslow's pyramid and Adlerian psychology, Jairaj and Javed exemplify the struggle for belongingness amidst familial discord, societal prejudice, and the absence of a supportive social framework. Despite their different paths and conflicts, both characters remain trapped in the vicious cycle of unfulfilled longing. They do not find acceptance in their families, communities, professions, and homes. The deprivation of

love and belonging destroys their self-esteem, confidence, and worth. This affects even the most basic aspects of their lives and eventually leads them into conflict. The experiences of Jairaj and Javed highlight the fundamental human need for love, belongingness, validation, and social connection. At the same time, they reveal the adverse consequences of emotional neglect and social isolation. While the actions, behavior, and decisions of Jairaj and Javed may be open to interpretation, their longing to belong remains the central cause that underlies their struggles. Their journeys serve as a reminder that the absence of acceptance and support can hinder personal growth, leaving individuals lost in the search for identity and fulfilment.

[1]Department of English
University of Jammu, Jammu
123prerna45616@gmail.com
[2]Department of Humanities & Social Sciences
IIT Jammu
nadeemiitjmu@gmail.com

References

1. *Dance like a man. In Collected Plays (Vol. 1, pp. 381–447). Penguin Books.*
2. *Dattani, M. (2000). Final solutions. In Collected Plays (Vol. 1, pp. 159–226). Penguin Books.*
3. *DeWall, C. N., & Richman, S. B. (2011). Social exclusion and the desire to reconnect. Social and Personality Psychology Compass, 5(11), 919–932. https://doi.org/10.1111/j.1751-9004.2011.00383.x*
4. *Ferguson, E. D. (2010). Adler's innovative contributions regarding the need to belong. The Journal of Individual Psychology, 66(1), 1–7.*
5. *Hagerty, B. M., Lynch-Sauer, J., Patusky, K. L., Bouwsema, M., & Collier, P. (1992). Sense of belonging: A vital mental health concept. Archives of Psychiatric Nursing, 6(3), 172–177. https://doi.org/10.1016/0883-9417(92)90028-h*
6. *Maslow, A. H. (1943a). Preface to motivation theory. Psychosomatic Medicine, 5(1), 85–92. https://doi.org/10.1097/00006842-194301000-00012*
7. *Maslow, A. H. (1943b). A theory of human motivation. Psychological Review, 50(4), 370–396. https://doi.org/10.1037/h0054346*
8. *Maslow, A. H. (1958). A dynamic theory of human motivation. In C. L. Stacey & M. DeMartino (Eds.), Understanding human motivation (pp. 26–47). Howard Allen Publishers. https://doi.org/10.1037/11305-004*
9. *May, V. (2013). Connecting self to society: Belonging in a changing world. Palgrave Macmillan.*
10. *Rubenstein, R. (2001). Home matters: longing and belonging. In Home Matters: Longing and Belonging, Nostalgia and Mourning in Women's Fiction (pp. 1–9). Palgrave Macmillan US eBooks. https://doi.org/10.1057/9780312299750_1*
11. *Stillman, T. F., & Baumeister, R. F. (2009). Uncertainty, belongingness, and four needs for meaning. Psychological Inquiry, 20(4), 249–251. https://doi.org/10.1080/10478400903333544*

She Research Network in India (SheRNI) of Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya (A Central University), Sagar, Madhya Pradesh: Altmetrics Study

Rakhi Khatik[1], Mahendra Kumar[2]

Abstract

This study performs Altmetrics analysis intending to identify the significant contributions of women faculty of Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, Madhya Pradesh. The contribution of scholars in Altmetrics has increased rapidly, so Altmetrics and their research work is an important base of analysis. Altmetrics is used to share research work on social media, which divides authors' priority. This research work is based on secondary data of the profile of She Research Network in India (SheRNI) service of Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya Sagar, Madhya Pradesh which has 7 disciplines and 55 women faculty work. Subject-specific Altmetrics have been analyzed using social media tools. Biological Sciences has been placed at the top with 1523 (41.67%). In which most research works have been shared on social media tools Mendeley and minimum contribute on Google Plus. Among the different types of documents, articles have the highest share at 953 (64.18%), followed by book chapters at 217 (14.61%) and reviews at 84 (5.66%).

Keyword: Research output, Social media tools, Altmetrics analysis, Social media networking sites, Faculty profile, Social media software, Author contribution, She Research Network in India (SheRNI), DHSGVV, Women Faculty, INFLIBNET.

INTRODUCTION

The She Research Network in India (SheRNI) is a specialized network designed to connect and utilize the knowledge, abilities, and expertise of women from different sectors in India. Its goal is to empower women by offering opportunities for collaboration, guidance, and the sharing of knowledge. The project aims to establish a nationwide expert profile system for women academics and to encourage the sharing of knowledge, insights, and experiences among women experts in various areas.

This network helps women scientists and faculty members to develop robust professional networks that support collaboration, guidance, and opportunities for career growth. The SheRNI expert network acts as an active platform for women professionals to connect,

collaborate, and support each other, which in turn aids in the progress of women in different fields. The network will henceforth formalize the mentorship program pairing senior faculties with early-career scholars and develop international partnerships to foster global knowledge exchange. She Research Network in India (SheRNI) looks forward to hosting international conferences and workshops to gather women faculties from India and beyond to share findings and best practices in these fields.

Altmetric is used to measure the impact of research. It measures the impact of research being conducted on social media through online activity. Social media tools are used for altmetric analysis which measure data. Example: Facebook, Twitter, Google Plus, News, Mendeley etc. Formerly known as Sagar University, Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya Sagar, Madhya Pradesh (A Central University) was established on July 18, 1946, by Dr. Sir Hari Singh Gour (26 November 1870 – 25 December 1949) with funds from his life savings. It is Madhya Pradesh's oldest and biggest university and the eighteenth in all of India. Jawaharlal Nehru Library offers a web-based service called She Research Network in India (SheRNI), which provides profiles of all the universities and institutes women faculty. Data on faculties' profiles was collected from web-based service She Research Network in India (SheRNI) Altmetric analysis was conducted on faculties' profiles on web-based service She Research Network in India (SheRNI) to measure the faculties' research output impact on social media tools like News, Facebook, Twitter, Mendeley and Google Plus.

REVIEW OF LITERATURE

Muruli & Harinarayana (2023) This research analysed the research output of central universities in the Western Himalayan region based on Scopus data from 2012 to 2021. It used various bibliometric indicators to assess research analysis in different types of tables. Publications and co-authorship have been expressed to be increasing in these papers. Chetry, Dey & Chhetry (2022) The research output main objective of this research, the Assam Agricultural University's Faculty Agriculture from 2009 to 2018 was the which was based on 378 papers gathered from Scopus. The analysis revealed that 77 articles, or 20.37 %, were published in 2017, and that 25.4% of those articles had more than five authors. Although Bradford's Law was not followed in the distribution of core journals, Lotka's Law was the law that was commissioned. Kannan and Thanuskodi (2021) The aim of the study is to develop a faculty profile management system using Indian Research Information Network System (IRINS) for seven IITs by analysing their research contributions using bibliometric indicators. The methodology used in this research paper is for research assessment, funding allocation and institution ranking from 2010-2019. Anaraki, Razmgir and Moradzadeh (2020) Their aim in the paper is to showcase the activities of faculty members of Iran University of Medical Sciences and the strategy they adopt to communicate with the academic community through ResearchGate. According to the analysis, 91% of the documents they shared were journal articles, and their average RG score was 15.26, with 94% of the total publications reporting results. Moreover, the results revealed a significant correlation between the RG variable and Scopus and Google Scholar indicators. Ahmad (2019) conducted an altmetric analysis of profiles of the Aligarh Muslim University (AMU) and Jawaharlal Nehru University (JNU) researchers on ResearchGate. The research intended to explore the participation, contribution and impact of research by AMU and

JNU researchers on the academic social network ResearchGate. The objectives of the study were to access the overall research productivity of researchers on ResearchGate in AMU and JNU, the overall research productivity of researchers based on altmetric indices like RG score, publications, citations, contributing departments, citations, reads, downloads and views, to explore the potential research collaboration among faculty members in both universities and to find out the highly cited and top h-indexed author on ResearchGate in both universities. Both scientometrics and altmetrics approaches had been considered for the study. Data was collected manually by visiting the profiles of both universities. The research demonstrated that both universities are actively using ResearchGate. Major findings were AMU had more publications than JNU, membership in both universities are almost equal, RG Score of AMU is higher than that of JNU and senior members are having active presence in ResearchGate. Shrivastava & Mahajan (2017) This paper analyses altmetric data of faculty members and research scholars of the Department of Physics and Astrophysics, University of Delhi using the academic social networking site ResearchGate The study analyzed data from 173 members of the Department of Physics and Astrophysics at the University of Delhi, India, on their ResearchGate profiles. The study found that publications added by researchers were low, with 28.32% not adding any publications to their profiles. The average reads per person was 909.49, with a median value of 95. Most researchers had impact points in the 0.2-50 range, followed by 35.844% with followers in the 1-10 range and 52.024% with profile views in the 1-100 range. The highest correlation of RGScore was found with publications added by researchers, followed by reads, profile views, full text and followers. Erfanmanesh (2017) examined the extent to which papers published in Scopus-indexed LIS journals were mentioned on social media platforms. The study aimed to identify the altmetric presence of LIS publications, LIS publications with highest altmetric scores and the top journals with the highest altmetric presence. The population of the research constituted a total of 193 Scopus-indexed LIS journals in 2015. Digital Object Identifiers of articles for each journal were extracted and searched in Altmetric Explorer to retrieve all attention received by articles. Results revealed that 28.8 percent of total LIS publications had non-zero altmetric scores. Twitter was the major altmetric source for the LIS papers. Altmetric coverage of LIS journals varies greatly. The highest altmetric presence was found in the Journal of Information Science". Except for one paper, the total amount of attention paid to social media platforms was higher than the number of citations received in Scopus. Altmetrics, webometrics and scientometrics were the most popular topic in the top 20 articles. Shrivastava & Mahajan (2015) This study examines the relationship between altmetric indicators from ResearchGate (RG) and bibliometric indicators from Scopus citation indicators of allied medical sciences lecturers and their academic rankings. A cross-sectional, descriptive analysis was conducted, revealing a statistically significant relationship between RG indices and Scopus citation indicators with lecturers' academic rankings. The findings suggest that policymakers should encourage lecturers to be more active on RG, potentially promoting university rankings in global and national rankings systems. Zahedi and Wouters (2014) studied whether Mendeley Readership Scores (RS) could identify highly cited publications more effectively than Journal Citation Scores (JCS). The study was based on a dataset of 9,152,360 WoS publications with DOIs from the years 2004- 2013. Only document type articles and review were considered. The JCS and

top 10 per cent most highly cited publications were calculated for each publication. Publications were ranked by their individual RS in a descending order and the precision-recall analysis was performed. Results showed that on average all publications received more WoS citation scores than RS. These results supported the idea of a faster accrual of Mendeley Readership Scores over citation scores. The study also found that, the readership density of publications varies per fields. Precision-recall analyses revealed that readership scores recognize highly cited publications better than JCS for all the publication years in the dataset. Alhoori and Furuta (2016) proposed and investigated a venue-ranking approach based on scholarly references from academic social media sites. It was also compared the number of citation-based rankings with social-based rankings. The investigators downloaded 5,54,023 files from CiteULike. Each file contained a reference to a paper and the users who added it to reference manager. The files which contained details of either journals or conferences were selected for the study. Total number of samples includes 407,038 files and then extracted the details of places. A total of 1,317,336 postings of researchers-article pairs and 614,361 number of researcher-venue pairs were collected. The three social based metrics defined and used in venue-ranking are readership, article count and active researchers rating. Spearman's correlation-based rankings was used to compare social based rankings with different citation-based rankings such as SCImago's h-index, Google's h5-index, the Thomson Reuters Impact Factor, the Eigenfactor score and total citations. Statistically significant correlations between the two approaches were found with disciplinary differences. It was also revealed that social based rankings esteem open access platforms over platforms that required a subscription. Shrivastava and Mahajan (2016) studied top 100 cited papers in Physics to investigate the relationship between citation counts and Mendeley readership metrics and evaluated the Mendeley readership metrics for two time periods to investigate its nature as an altmetric indicator. The data were collected manually using the Scopus database. Top 100 papers published in Physics during 2005 and 2010 were collected and correlation between citations in Scopus and Mendeley readership was calculated. It is found that for both years there is a positive correlation between citation and Mendeley readership. It is suggested that the use of Mendeley readership as a tool for research evaluation depended largely on the coverage of the discipline in Mendeley.[12]

OBJECTIVES

1. To analysis subject wise distribution of women faculties
2. To find the number of women faculties and their subjects.
3. To determine the subject-wise distribution of social media tools.
4. To analysis the contribution of women faculties on social media.
5. To find out the document type of literature.

METHODOLOGY

For this study, the women faculty profile of She Research Network in India (SheRNI) of Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, Madhya Pradesh has been selected. Altmetrics (social media tool) analysis based on the study of women faculty members and subjects has been taken from the She Research Network in India (SheRNI) profile. There are 55 women faculty members and a total of 7 disciplines. To successfully display the study,

statistical techniques like line, bar, and pie diagrams as well as tabular presentations of various data are used.

Table 1 SUBJECT WISE NUMBER OF WOMEN FACULTIES

S.NO.	Subjects	Faculties	Percentage
1	Social Sciences	29	52.73
2	Biological Sciences	8	14.55
3	Arts & Humanities	6	10.91
4	Chemical Sciences	3	5.45
5	Physical Sciences	5	9.09
6	Engineering & Technology	2	3.64
7	Medical & Health Sciences	2	3.64
	Total	**55**	**100.00**

SUBJECT WISE NUMBER OF WOMEN FACULTIES

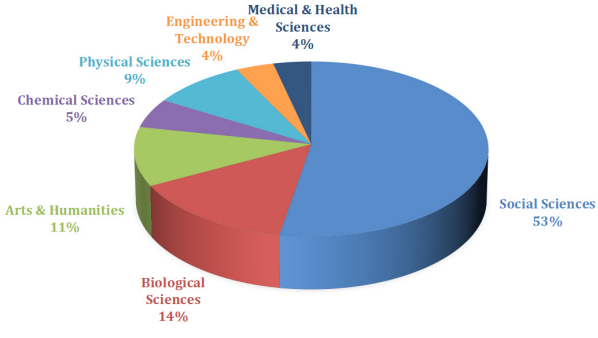


Figure 1

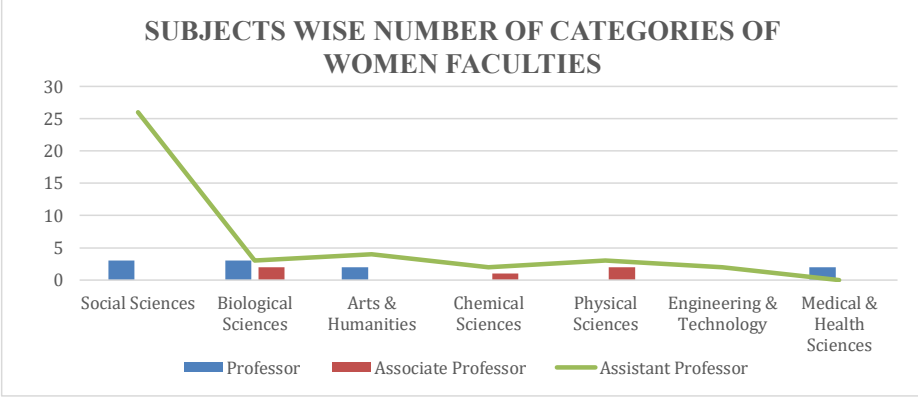
Table 1 and Figure 1 above lists 55 women faculty members and a total of 7 disciplines under the She Research Network in India (SheRNI) profile of Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, Madhya Pradesh. The first 29 are in social sciences, the next 8 are in biological sciences, and the last 6 are women faculty in arts and humanities.

Table 2 SUBJECTS WISE NUMBER OF CATEGORIES OF WOMEN FACULTIES

S. NO.	Subjects	Professor	Associate Professor	Assistant Professor	Total	Percentage
1	Social Sciences	3	0	26	29	52.73
2	Biological Sciences	3	2	3	8	14.55
3	Arts & Humanities	2	0	4	6	10.91
4	Chemical Sciences	0	1	2	3	5.45
5	Physical Sciences	0	2	3	5	9.09

6	Engineering & Technology	0	0	2	2	3.64
7	Medical & Health Sciences	2	0	0	2	3.64
Total		**10**	**5**	**40**	**55**	**100.00**

Figure 2



There are ten women professors, five-woman associate professor and forty women assistant professors listed in Table 2 and Figure 2 above. The field of biological sciences has the maximum three women professors two-woman associate professor and three women assistant professors and social sciences have three women professors and twenty-six women assistant professors.

Table 3 SUBJECT WISE NUMBER OF SOCIAL MEDIA TOOLS

S.No.	Social media	Soc.	Bio.	Arts & Hum.	Chem.	Phy. Sc.	Eng.& Tech.	Med.& Health Sc.
1	News	0	33	0	2	0	532	21
2	Facebook	0	14	0	2	0	10	21
3	Twitter	0	60	0	5	0	20	36
4	Mendeley	0	1402	0	219	0	390	842
5	Google Plus	0	14	0	3	0	8	21
Total		**0**	**1523**	**0**	**231**	**0**	**960**	**941**
Percentage		**0**	**41.67**	**0**	**6.32**	**0**	**26.27**	**25.75**

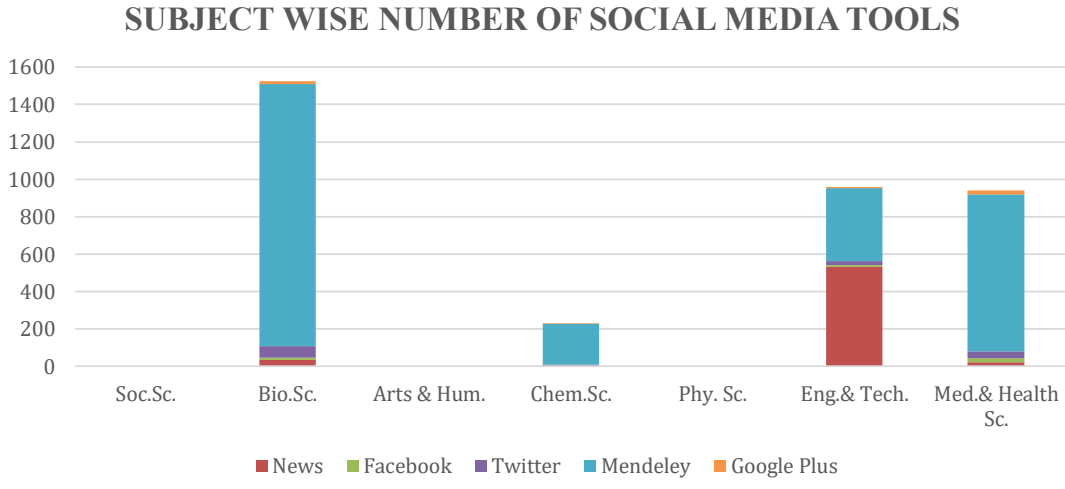


Figure 3

Table 3 and Figure 3 shows how social media tools performed subject-specific altmetrics analysis. The order of preference is Biological Sciences 1523 (41.67%), Engineering and Technology 960 (26.27%), and Medical and Health Sciences 941 (25.75%).

Table 4 CONTRIBUTION OF WOMEN FACULTIES ON SOCIAL MEDIA

S.No.	Social	Soc. Sc.			Bio. Sc.			Arts & Hum.			Chem.			Phy. Sc.			Eng.& Tech.			Med.& Health Sc.			Total	%
		Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.	Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.	Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.	Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.	Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.	Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.	Prof.	Asso. Prof.	Asst. Prof.		
1	News	0	0	0	30	1	2	0	0	0	0	0	2	0	0	0	0	0	532	21	0	0	588	**16.09**
2	Fb.	0	0	0	10	1	3	0	0	0	0	0	2	0	0	0	0	0	10	21	0	0	47	**1.29**
3	Twt.	0	0	0	51	2	7	0	0	0	0	0	5	0	0	0	0	0	20	36	0	0	121	**3.31**
4	Mdl.	0	0	0	1388	12	2	0	0	0	0	0	219	0	0	0	0	0	390	842	0	0	2853	**78.06**
5	Goog. Plus	0	0	0	13	1	0	0	0	0	0	0	3	0	0	0	0	0	8	21	0	0	46	**1.26**
Total		**0**	**0**	**0**	**1492**	**17**	**14**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**231**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**960**	**941**	**0**	**0**	**3655**	**100.00**

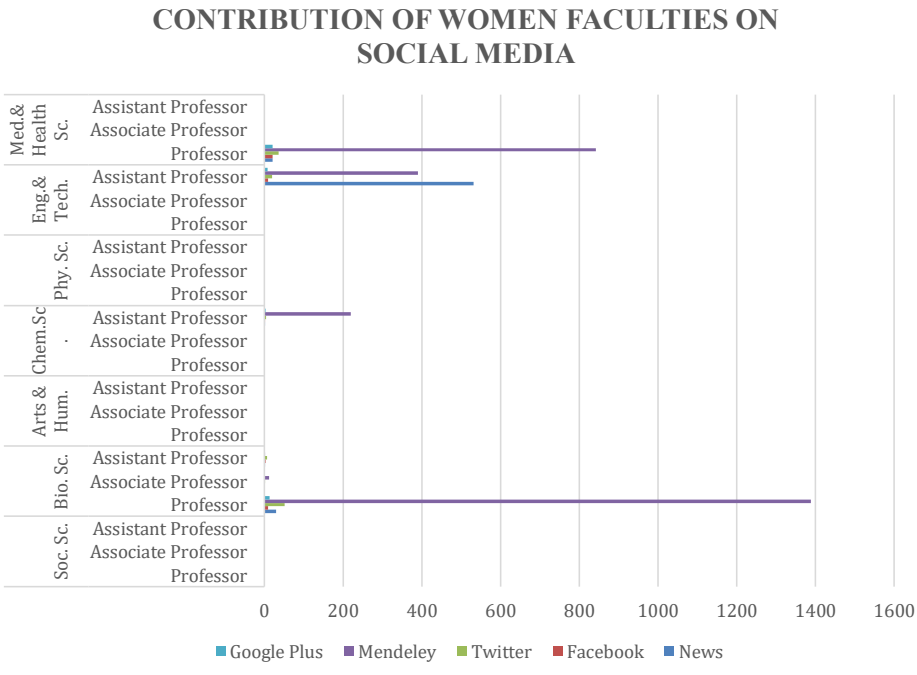


Table 4 and Figure 4 above shows the different categories of women faculty members in different subjects, such as Professor, Assistant Professor and Associate Professor. These women faculty members contribute the most to the social media platform MENDELEY and minimum contribute on GOOLE PLUS.

Table 5 DOCUMENT TYPE OF LITERATURE

S.NO.	Document Type	Record count	Percentage
1	Article	953	64.18
2	Book Chapter	217	14.61
3	Book	69	4.65
4	Project	48	3.23
5	Data Paper	28	1.89
6	Conference Proceeding	66	4.44
7	Review	84	5.66
8	Short Survey	3	0.20
9	Letter	1	0.07
10	Editorial Material	2	0.13
11	Others	14	0.94
Total		**1485**	**100.00**

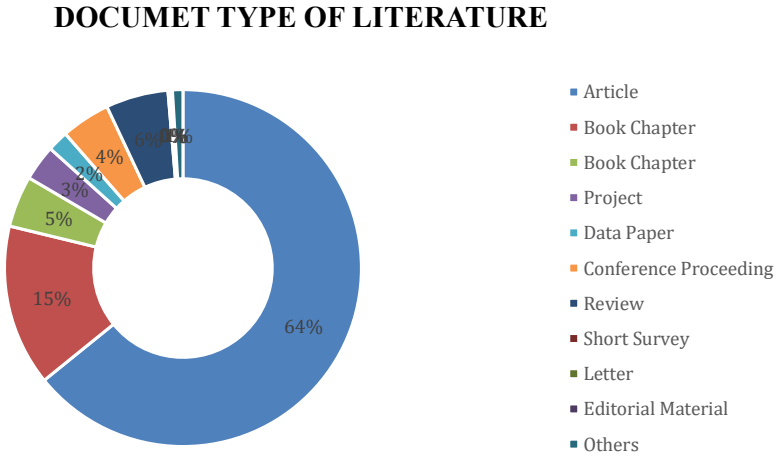


Figure 5

Table 5 and Figure 5 above shows the document type of literature, in which the highest percentage of literature is in the form of articles 953 (64.18%), book chapters 217 (14.61%) and reviews 84 (5.66%).

FINDINGS

- This figure and **Table 1** bring to fore the presence of 55 women faculty members across seven departments at Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, as profiled on SheRNI. They are dominated by Social Sciences (29), followed by Biological Sciences (8) and Arts & Humanities (6).
- These figure 2 and **Table 2** indicate the breakdown by designation 10 Professors, 5 Associate Professors, and 40 Assistant Professors. The field of biological sciences has the maximum three women professors two-woman associate professor and three women assistant professors and social sciences have three women professors and twenty-six women assistant professors.
- In figure 3 and **Table 3** discusses altmetrics performance subject-wise. Biological Sciences lead with the highest (1523 mentions, 41.67%), followed by Engineering & Technology (960, 26.27%) and Medical & Health Sciences (941, 25.75%), showing high digital presence.
- These figure 4 and **Table 4** show academic ranking and social media activity. Mendeley is the most popular platform for sharing research, while Google Plus is used minimally, demonstrating a preference for academic platforms.
- This figure 5 and **Table 5** classify document types. Journal articles are preponderant (953, 64.18%), then book chapters (217, 14.61%) and reviews (84, 5.66%), highlighting journal publishing as the primary research output.

CONCLUSION

Altmetrics analysis of 55 women faculty members from Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, as captured in the She Research Network in India (SheRNI) profiles, brings out some important patterns pertaining to academic presence and online activity of the seven areas analyzed, the largest number of faculty members belonged to the Social Sciences, reflecting a robust presence of women faculty in that field. . In this, the first 29 faculties are social sciences, the second 8 are biological sciences, and the third 6 are arts and humanities. During the study, it was found that there are 10 professors, 5 associate professor, 40 assistant professors. Among these, a maximum of 3 professors are in biological sciences, 1 associate professor 3 assistant professors in biological sciences, and 3 professor and 26 assistant professors in social sciences. About subject-wise altmetric attention, Biological Sciences garnered the most mentions (1523, which is 41.67% of the total), followed by Engineering and Technology (960 mentions, 26.27%) and Medical and Health Sciences (941 mentions, 25.75%), exhibiting significant online exposure and scholarly outreach within these areas. The study also indicates that compared to other social media platforms for research sharing, Mendeley was the most popular, indicating support for platforms that have academic and professional targets. Google Plus, on the other hand, registered the lowest level of engagement, providing evidence of limited applicability or adoption by the faculty under study. Further, the form of documents that were being produced was also analyzed, with journal articles being the most common (953 publications, or 64.18%), followed by book chapters (217, 14.61%) and review articles (84, 5.66%). This pattern shows that peer-reviewed journal articles are still the major vehicle for intellectual communication and visibility among the women faculty members in all fields.

[1]Jawaharlal Nehru Library
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.)
libass1@dhsgsu.edu.in

[2]Department of Library and Information Science
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.)
mahendrak@dhsgsu.edu.in

References

1. *Muruli, N., & Harinarayana, N. S. (2023). Scientometric Analysis of Faculty Publications of Central Universities in the Western Himalayan Region of India. In University of Mysore & Central University of Himachal Pradesh, Journal Of Indian Library Association (Vol. 59, Issue 2).*
2. *Chetry, D. M., Dey, N. C., & Chhetry, N. (2022). Mapping Research Output of Faculty of Agriculture, Assam Agricultural University: A Bibliometric Assessment From 2009 To 2018. In Assam University & IIM Shillong, Journal Of Indian Library Association (Vol. 58, Issue 2, pp. 72–74).*
3. *Kannan, P., Thanuskodi, S.(2021). Development of Faculty Profile Management System Using Indian Research Information Network System: A Study of Indian Institute of Technology (IITs) in India. Library Philosophy and Practice (E-journal), 6473. https://digitalcommons.unl.edu/libphilprac/6473*
4. *Shehata, A., Dakar, M. E., & Salem, N. (2021). Top COVID-19 100 vaccine papers: An Altmetric study. 2021 22nd International Arab Conference on Information Technology (ACIT). https://doi.org/10.1109/acit53391.2021.9677241*

5. *Nemati-Anaraki, L., Razmgir, M., & Moradzadeh, M. (2020). Scientific impact of Iran University of Medical Sciences researchers in ResearchGate, Google Scholar, and Scopus: An altmetrics study. Medical Journal of the Islamic Republic of Iran. https://doi.org/10.47176/mjiri.34.142*
6. *Sedighi, M. (2020). Evaluating the impact of research using the altmetrics approach (case study: the field of scientometrics). Global Knowledge Memory and Communication, 69(4/5), 241–252. https://doi.org/10.1108/gkmc-02-2019-0013*
7. *Mohammadi, M., Mirkarimi, M., Paranam, Z., Banisafar, M., Rezanezhad, R. M., Tatari, M., & Mahboubi, M. (2020). A study on the status, citation analysis, and altmetric indices of journals of Golestan University of Medical Sciences. Journal of Research Development in Nursing and Midwifery, 17(1), 22–38. https://doi.org/10.29252/jgbfnm.17.1.22*
8. *Ahmad, Z. (2019). Profiles of the AMU and JNU Researchers on ResearchGate: An Altmetric Analysis. Kelpro Bulletin, 23(1), 101–112.*
9. *Salahshoori, F., & Abedini, Z. (2019). Investigating the Social Media Presence of Articles in Altmetrics Field Indexed in Scopus Database: An Altmetrics study. Library Philosophy and Practice. Retrieved from https://digitalcommons.unl.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=6336&context=libphilprac*
10. *Shrivastava, R., & Mahajan, P. (2017b). An altmetric analysis of ResearchGate profiles of physics researchers. Performance Measurement and Metrics, 18(1), 52–66. https://doi.org/10.1108/pmm-07-2016-0033*
11. *Erfanmanesh, A. (2017). (PDF) Highly-alted articles in Library and Information Science. Webology, 14(2), 1–12.*
12. *Hassan, S., Imran, M., Gillani, U., Aljohani, N. R., Bowman, T. D., & Didegah, F. (2017). Measuring social media activity of scientific literature: an exhaustive comparison of Scopus and novel altmetrics big data. Scientometrics, 113(2), 1037–1057. https://doi.org/10.1007/s11192-017-2512-x*
13. *Shrivastava, R., & Mahajan, P. (2017). An altmetric analysis of ResearchGate profiles of physics researchers. Performance Measurement and Metrics, 18(1), 52–66. https://doi.org/10.1108/pmm-07-2016-0033*
14. *Alhoori, H., & Furuta, R. (2016, September 8). Do Altmetrics Follow the Crowd or Does the Crowd Follow Altmetrics? IEEE/ACM Joint Conference on Digital Libraries (JCDL). https://doi.org/10.13140/2.1.3364.6726*
15. *Kumar, A., Shivarama, J., Angadi, M., & Choukimath, P. A. (2016). AltMetrics: The Emerging Alternative Metrics for Web Research Analysis. NO. Retrieved from http://ir.inflibnet.ac.in:8080/ir/bitstream/1944/2033/1/29.pdf*
16. *Gul, S., Shueb, S., & Hussain, A. (2016). Research in the spotlight on social web: Analyzing the top 100 Altmetric articles of 2015. Library Philosophy and Practice. Retrieved from https://digitalcommons.unl.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=4229&context=libphilprac*
17. *Shrivastava, R., & Mahajan, P. (2015). Relationship amongst ResearchGate altmetric indicators and Scopus bibliometric indicators. New Library World, 116(9/10), 564–577. https://doi.org/10.1108/nlw-03-2015-0017*
18. *Costas, R., Zahedi, Z., & Wouters, P. (2014). Do "altmetrics" correlate with citations? Extensive comparison of altmetric indicators with citations from a multidisciplinary perspective. Journal of the Association for Information Science and Technology, 66(10), 2003–2019. https://doi.org/10.1002/asi.23309*
19. *Das, A., & Mishra, S. (2014). Genesis of altmetrics or article-level metrics for measuring efficacy of scholarly communications: Current perspectives. Journal of Scientometric Research, 3(2), 82. https://doi.org/10.4103/2320-0057.145622*

Justice Delayed, Justice Denied: Analyzing Sexual Violence in Sudan Civil War

Bhaswati Bhattacharjee[1], Rashmi Singh[2]

Abstract

Rape and other forms of sexual violence have long been employed as weapons of war and tools of genocide, serving as deliberate strategies to inflict terror, exert control, and annihilate targeted communities. However, the prosecution of conflict-related sexual violence has historically been slow and inadequate, reflecting systemic failures in international legal mechanisms. The ongoing Sudan Civil War is no exception, with widespread reports of wartime and genocidal rape met with a glaring lack of legal accountability. This article critically examines the magnitude of these crimes in Sudan and the persistent gaps in prosecuting the perpetrators through the theoretical lenses of intersectionality and biopolitics. By providing a historical overview of the conflict and a detailed analysis of the strategic use of sexual violence, this study identifies the structural deficiencies within international legal frameworks that hinder effective justice. Finally, it explores potential solutions to ensure justice for survivors of conflict-related sexual violence.

Keywords: war, rape, genocide, sexual violence, intersectionality, biopolitics

> The history of conflict-related sexual violence is as old as war itself
> – Nadia Murad (Council of the EU, 2022, 16:46-56)

Wartime sexual violence has long been a horrific aspect of human conflict, used to terrorize, dominate, and commit genocide. Despite global condemnation, international efforts to combat this crime remain slow and insufficient. Sudan, particularly during the Darfur genocide and the renewed civil war in 2023, has seen widespread sexual violence, with justice for victims still elusive. This article examines the gaps in international legal systems that enable such crimes, focusing on Sudan through the lenses of intersectionality and biopolitics. It also draws on survivor testimonies to explore solutions and promote accountability.

History of the Civil War in Sudan

The Sudan Civil War incorporates a series of conflicts that have shaped the socio-political landscape of Sudan for decades. Here is an outline of the Sudan Civil War's historical context:

The colonial legacy

Sudan was ruled by various kingdoms before Arab nomads settled in the 14th and 15th centuries. In the 19th century, it fell under Egyptian rule and became a British-Egyptian condominium in 1899, with the British governing the north and south separately, deepening cultural, religious, and economic divides. In the words of Kim Searcy: "Britain's "divide-and-rule" policy separated southern Sudanese provinces from the rest of the country and slowed down their economic and social development" (Searcy, 2019). Besides, arbitrary "borders drawn without regard to ethnic or cultural boundaries contributed to internal divisions and conflicts" (Sapa, 2024). The divide-and-rule strategy prevented a cohesive national identity, leaving Sudan struggling to form an inclusive government after independence in 1956.

Beginning of civil unrest

After independence, northern elites maintained centralization policies that marginalized Southern Sudan, ignoring demands for autonomy and equitable development, sparking resentment, uprisings, and Africa's longest civil war after the 1958 elections. In his comprehensive historical account, *Darfur's Sorrow* (2007), M. W. Daly meticulously elaborates on this situation:

Whereas gradual assimilation of both Arabs and non-Arabs into the "Sudanese" culture as defined in the Nile valley had been progressing for years, suddenly Darfur – "the abode of the Fur" – was proclaimed an "Arab" land, whose non-Arab usurpers could rightfully be dispossessed. The result, in the early 1990s was race war. When Khartoum failed to protect them, the non-Arab population formed self-defense forces in Darfur…. But that movement (and others) was no match for the combined strength…of the Sudanese army and *janjawid*, who acted in tandem to subject Northern and Western Darfur to ethnic cleansing. (Daly, 2007, p.4)

In August 1955, a mutiny, fueled by fears of northern domination and broken promises of federalism, was started by southern soldiers in the Equatoria Corps in Torit. Christopher Tounsel says: "The Torit Mutiny of August 18, 1955, is the kairotic moment of South Sudanese nationalism and has been commonly used to mark the beginning of the First Sudanese Civil War" (Tounsel, 2021, p. 45). The Anyanya guerrilla movement emerged in response to a 1955 mutiny, igniting the First Sudanese Civil War (1955–1972), as the south demanded autonomy from the northern government. The conflict ended with the 1972 Addis Ababa Agreement, but unresolved tensions led to renewed conflict. In 1983, President Nimeiry revoked southern autonomy and imposed Sharia law, sparking the Second Sudanese Civil War (1983–2005). The SPLA/M, led by John Garang, fought for southern autonomy, leading to widespread violence and severe humanitarian crises. According to a report published by the U.S. Committee for Refugees, 2 million people died in this civil war and nearly 4 million people (nearly 80%) of the southern Sudanese

population were forced to flee their homes ("U.S. Committee For Refugees: Crisis in Sudan," n.d.). The Comprehensive Peace Agreement (CPA), signed on January 9, 2005, ended the Second Sudanese Civil War, leading to a 2011 referendum that resulted in South Sudan's independence on July 9, 2011.

Current scenario

Despite ongoing peace efforts, conflict persisted in Sudan. In 2003, during the Second Sudanese Civil War, the SLA and JEM rebel groups attacked government targets, accusing President Omar al-Bashir's regime of neglect and oppression. The government responded by deploying the Janjaweed militia, leading to the Darfur genocide, marked by mass killings, rapes, and ethnic cleansing against the Fur, Masalit, and Zaghawa ethnic groups. In the words of Robert O. Collins, the Arabo-centric enthusiasm of President Bashir and his government "injected an ideological and racist definition as to who is "Arab" and who are *zuruq*, black, or the more pejorative epithet *abid*, slave, to distinguish between Arab and African and justify the killing, rape, and enslavement of these marginalized people" (O. Collins, 2006, p. 9). The 2020 Darfur Peace Agreement brought a temporary halt to the conflict, but violence persisted. In April 2023, a new civil war erupted between the Sudanese Armed Forces (SAF) led by Abdel Fattah al-Burhan and the Rapid Support Forces (RSF) commanded by Hemedti, reigniting ethnic violence against the Masalit people. "Human Rights Watch has documented targeted ethnic killings, systematic rape and sexual violence, and mass displacement by the RSF in West Darfur" and the "United States government said on January 7, 2025 that it had determined that Rapid Support Forces (RSF) forces committed genocide in Darfur during the current conflict in Sudan" ("US: State Department Determines Genocide in Sudan," 2025).

Rape as a Weapon of War in Sudan

"'In this society if you rape one woman, you have raped the entire tribe' - so said one observer of the mass rape occurring in Darfur" (Scheffer, 2008). During the Darfur genocide, mass rape was systematically used as a weapon of war by the Sudanese government and Janjaweed militias to terrorize the Fur, Zaghawa, and Masalit communities. This targeted violence, intended to "cause serious bodily or mental harm to members of the group" and "impose measures intended to prevent births within the group," had a genocidal nature. According to a report published by the Harvard School of Public Health, "A Darfurian NGO has documented 9,300 cases of rape, although other observers on the ground have argued that the number of rapes is closer to double that figure" (Gingerich & Jennifer, 2004, p. 16). Sexual violence was used to instill fear and helplessness, aiming to destroy the cultural and social fabric of communities. Attacks occurred in villages, displacement camps, and during daily tasks like collecting water or firewood. Victims often faced extreme violence, including beatings and torture, with many gang-raped or assaulted repeatedly. Pregnant women, the elderly, young girls, and even men and boys were targeted, highlighting the brutality and indiscriminate nature of the assaults. (Ferrales, Brehm, & McElrath, 2016, p. 566).

With the renewed war in Sudan in 2023, rape has again been used as a strategic weapon to forcibly displace the Masalit people amid ongoing genocidal violence. Between April 2023 and July 2023,

> 88 cases of rape as a result of the conflict have been verified. This includes at least 42 alleged cases in the capital, Khartoum, and 46 in the Darfur region. However, according to the Sudanese Unit for Combating Violence against Women, a Government Unit, this figure likely on represents 2% of total cases – meaning there have been a possible 4,400 cases of sexual violence in 11 weeks alone. *(Sudan: Children as Young as 12 Raped and Assaulted, as Sexual Violence Rips Through the Country, 2023)*

As of March 2024, at least 417 cases of rape in conflict zones have been reported since April /;2023 ("Sudan Women's Groups Demand UN Probe into Rape in Conflict Zones," 2024). In March 2025, UNICEF has published a report that claims that infants as young as one year old are getting raped by the RSF. According to the report, "although 221 rape cases against children have been officially reported since the start of 2024, the true number is likely to be much higher"; the report also says that a third of the victims are boys (Usher & Booty, 2025). "We have seen a 288% increase in demand for life saving support for rape and sexual violence survivors. We are beginning to see the systematic use of rape and sexual violence as a weapon of war" – said Anna Mutavati, the regional director of UN Women, in April 2025 (Le Poidevin, 2025). After two decades, the International Criminal Court has issued arrest warrants for only six individuals, four of whom face rape charges. Of these six, four—including former president al-Bashir—remain at large, one case was dropped for lack of evidence, and only one person is in ICC custody. ("Darfur, Sudan," n.d.).

Intersectional and Biopolitical Nature of the Crime

An Intersection of Race and Gender

Emily Wax, a national staff writer of *The Washington Post*, published a report titled "'We Want to Make a Light Baby' Arab Militiamen in Sudan Said to Use Rape as Weapon of Ethnic Cleansing" on 30 June 2004. Her report included an incident of a woman getting raped by the Janjaweed militia who said to her: "Black girl, you are too dark. You are like a dog. We want to make a light baby." Wax mentioned another woman with a similar experience where her abusers said: "Dog, you have sex with me. The government gave me permission to rape you. This is not your land anymore, *abid* [slave], go" (Wax, 2004). Dr. Mukesh Kapila in his 2013 book *Against a Tide of Evil* recounts a similar incident where black Sudanese people describe how black women were targeted for sexual abuse:

'Of course, race is the thing!' Idris replied angrily. 'The Arab raiders call us abusive names. *Zurka. Abeed.* This means like "nigger" and "slave". It is hugely insulting.'

> 'And with the women, they say, "We'll give you slaves Arab babies!"' the rainbow-scarfed woman added. '"We'll rid this land of you niggers!"' (Kapila & Lewis, 2023, p. 145)

Black women in Sudan get raped not only because of their race or their gender, but because of a convergence of these two identity markers. And, that is why, it becomes important to understand and interpret their situation according to the theory of intersectionality.

In her 1989 paper "Demarginalizing the Intersection of Race and Sex," Prof. Kimberlé Crenshaw coined the term 'intersectionality' to describe how overlapping systems of oppression—like racism, sexism, and classism—create unique forms of

discrimination for people in multiple marginalized groups (Coaston, 2019). Crenshaw coined "intersectionality" to show how Black women face unique discrimination not captured by race or gender alone. She argued that legal and social systems often overlook these overlapping identities, so true justice requires understanding how multiple forms of oppression interact.

Intersectional analysis reveals that ethnically motivated mass rape in Sudan targets Fur, Zaghawa, and Masalit women both for their gender and ethnicity. Survivors report racial slurs like "slave" during assaults, underscoring intent to degrade them as women of marginalized, darker-skinned groups. Elizabeth A. Armstrong, Miriam Gleckman-Krut, and Lanora Johnson in their paper "Silence, Power, and Inequality: An Intersectional Approach to Sexual Violence" emphasize that conflict-related sexual violence inherently "reproduces inequalities of gender, race/ethnicity, class, age, sexuality, ability status, citizenship status, and nationality" (Armstrong, Gleckman-Krut, & Johnson, 2018, p. 99). The UN's latest report on wartime rape concurs, noting that survivors "of conflict-related sexual violence are not a homogenous group, hence the need for an intersectional analysis" (United Nations, 2023). In sum, an intersectional lens shows Black Sudanese women face layered oppression—misogyny, racism, and exclusion—leaving them acutely vulnerable to the RSF's gendered violence.

Biopolitical Oppression

Michel Foucault, in his eminent lecture "Society Must Be Defended", described modern warfare as a

> discourse of a battle that has to be waged not between races, but by a race that is portrayed as the one true race, the race that holds power and is entitled to define the norm, and against those who deviate from that norm, against those who pose a threat to the biological heritage. (Foucault, 2003, p. 61)

In the same lecture, he said that "war is about two things: it is not simply a matter of destroying a political adversary, but of destroying the enemy race, of destroying that [sort] of biological threat that those people over there represent to our race" (Foucault, 2003, p. 257). Also, in the first volume of *The History of Sexuality*, Foucault said: "If genocide is indeed the dream of modern powers, this is not because of a recent return of the ancient right to kill; it is because power is situated and exercised at the level of life, the species, the race, and the large-scale phenomena of population" (Foucault, 2020, p. 137). This "large-scale phenomena of population" or "massifying, that is directed not at man-as-body but at man-as-species" is what Foucault called "a "biopolitics" of the human race" (Foucault, 2003, p. 243).

In Sudan, the atrocities meted out to the black people, especially the gendered crime against the women, can be accurately examined according to the Foucauldian idea of biopolitics. Foucault described biopower/biopolitics not only as the modern state's power over life, involving the "effective administration of bodies and the calculated management of life" ["Michel Foucault (Stanford Encyclopedia of Philosophy)," 2022] but also as a "power to expose a whole population to death" (Foucault, 2020, p. 137). In other words, biopolitics not only "makes live" (care for citizens) but also "lets die" (abandons or targets those deemed undesirable) (Foucault, 2003, p. 241). In Sudan, the state's ideology of Arab supremacy reflects Foucauldian logic by portraying Fur, Zaghawa, Masalit, and other

African-descended groups as biologically inferior. During rape campaigns, Janjaweed and RSF militias used slurs like "all girls must be pregnant by the Janjaweed" and "We will make you, the Masalit girls, give birth to Arab children" (Ahmed, 2025), exemplifying the Foucauldian "administration of bodies" and "the calculated management of life." Forcibly impregnating black women also reinforces the biopolitical identification of the female body which was "placed in organic communication with the social body" and "whose regulated fecundity it was supposed to ensure" (Foucault, 2020, p. 104).

Giorgio Agamben expands Foucault's biopolitics by showing how states suspend rights during crises. In his *Homo Sacer: Sovereign Power and Bare Life* (1998), Agamben explains, in the "state of exception" normal law is suspended, and individuals are reduced to "bare life" *(Homo sacer)* – life that can be killed with impunity. Agamben argues that the modern sovereign's power rests on this right to kill beyond the law (Felluga, 2015, p. 25). In Sudan, African-origin communities like the Masalit are left unprotected as RSF militias act with impunity—often with past government support. Civilians are forcibly stripped of legal protection: RSF fighters go door-to-door, killing men and assaulting or expelling women (Ahmed, 2025). These crimes occur without punishment, exemplifying Agamben's "state of exception." The result: these groups exist as "bare life," exposed to unchecked violence.

Achille Mbembe extends Foucault's biopolitics to necropolitics – the explicit rule over death. Mbembe defines necropolitics as the "subjugation of life to the power of death" (Pele, 2020). In contemporary necropolitical regimes, the state (or other authority) deploys "weapons…for maximum destruction" to create "death-worlds," unique social existences in which populations live as "living-dead" under conditions of extreme violence (Pele, 2020). Violence in Sudan's civil war exposes this necropolitical power: RSF commanders decide who lives or dies, massacring men and raping women to enforce social death. Forcing Masalit women to bear Arab children reveals a necropolitical strategy—those who "convert" survive, others are killed ("Darfur: Rapid Support Forces, Allied Militias Rape Dozens," 2023).

A peer-reviewed study by Hagan, Rymond-Richmond, and Palloni found combined Sudanese army and Janjaweed attacks used racial slurs in rape more than either alone, indicating deliberate government involvement. The authors conclude that "the Sudanese government is participating in the use of sexual assault as a racially targeted weapon against ethnically African civilians" (J. Hagan et al., 2009, p. 1386). In other words, sexual violence is integrated into the state's violent biopolitics: it is used to stigmatize, terrorize, and control an entire ethnic group on the basis of race.

Breaking the Silence: Memoirs and Testimonies from the Survivors

Halima Bashir, a Sudanese doctor and genocidal rape survivor, wrote in *Tears of the Desert* (2008): "Once I'd started talking, I began to feel better about it... Perhaps it gave some meaning to all that I had suffered" (Bashir & Lewis, 2008, p. 336). Yet, few survivors speak out. Hala al-Karib states, "Some (survivors) do not want to speak about it... Very few have elaborated on what has happened to them" (Ali, 2023). Barriers include legal ignorance, slow investigations, lack of medical care, fear, stigma, and migration (Bhattacharjee, 2024). Still, brave women break silence, offering counter-narratives and

proof of crimes. Bashir recalls Janjaweed fighters taunting her: "You know what rape is? ... We'll show you what rape is," showing sexual violence as terror (Bashir & Lewis, 2008, p. 4-5). While she was targeted for aiding survivors and reporting to the UN, Safiya Ishaq, a student, was gang-raped for protesting and displaying flyers (Ahmed Sardop, 2011). After journalist Fatima Gazali exposed such cases, "the Sudanese government… took me to court and unjustly charged me with 'publishing false news'" for speaking out ("#16 Days Survivor Stories: Fatima Gazali," n.d.). Darfuri activist Hawa Mohamed says "the world has failed the women of Darfur" ("#16 Days Survivor Stories: Hawa Mohamed," n.d.). These accounts show Sudanese courts and international bodies failed survivors. One Human Rights Watch report cites a survivor refusing help "because police are part of the problem" (Henry, 2023).

Since April 2023, Sudan's Darfur survivors report brutal crimes. Activist Zahra Khamis says "sexual assault was used as a weapon to destroy our community" (Wadekar & Flood, 2025). A 19-year-old ("Fatema") recalls gang-rape: "Among the eight \[women and girls] who were raped, two died on the spot because they were too young. ... Blood was pouring out of their mouths" (Wadekar & Flood, 2025). A 24-year-old ("Amira") was forced at gunpoint: "Take off your clothes. And if you don't do that, I will kill your mother" (Wadekar & Flood, 2025). Witness Gamar al-Deen heard fighters shout "'This area belongs to us, not you, you are slaves'" as they raped a woman (Harter, 2023). A UN report quotes a victim: "We will make you, the Masalit girls, give birth to Arab children" (Farge, 2024), showing ethnic terror unchecked by law.

Prosecution of Genocidal Rape across the World and the Position of Sudan

The main obstacles to prosecuting wartime rape are its vague definition, failure to recognize it as genocide, and its dismissal as a wartime inevitability. As David Scheffer says:

> People hear the word genocide and think of six million victims of the Holocaust or an estimated 800,000 dead in Rwanda. They do not imagine that mass rape can be so well planned and targeted that it wipes out a substantial part of an ethnic group as thoroughly, though more slowly, than widespread killings. (Scheffer, 2008)

Echoing this, Joshua Kaiser and John Hagan said:

> Like most conflict-related discourse, accounts of Darfur's atrocities concentrate on killings - disproportionately of "battle-aged" men. Women, children, the elderly, and even surviving young men are forgotten. They are commonly treated as irrelevant to genocide - as "merely" tortured, beaten, raped, and left to die from malnourishment and disease. (Kaiser & Hagan, 2015, p. 70)

The Nuremberg Trials and the Tokyo Tribunal prosecuted major war crimes, but rape was not charged separately—only subsumed under broader atrocities like sexual slavery. (Schröder, 2024).

The International Criminal Tribunal for the Former Yugoslavia (ICTY, 1993-2017) was the first international tribunal to prosecute rape as a war crime and crime against humanity. In cases like Dražen Erdemović's, it exposed systematic rape as a tool of genocide during the Bosnian War. Serb forces used rape camps (e.g., Foča) to terrorize

Bosniaks in an "expulsion through terror." Women were gang-raped, enslaved, and told to bear "Serb babies." The Čelebići case (1998) first recognized rape as torture. In Kunarac et al. (1999–2001), three officers were convicted of rape and sexual enslavement; over 20 women testified to gang-rapes and forced prostitution in Foča, part of a policy of ethnic cleansing. The ICTY later reflected that despite their fear, survivors' "courage… was crucial in enabling the prosecution of wartime sexual violence." The ICTY convicted dozens—including Serbs, Croats, and Bosniaks—for sexual violence; over one-third faced such charges. Bosnia's War Crimes Chamber (est. 2004) continued these prosecutions using ICTY precedent. ("Landmark Cases | International Criminal Tribunal for the Former Yugoslavia," n.d.). Survivors like Bakira Hasečić, human rights activist and the founder of Association of Women Victims of War, continue fighting for justice for Bosnian Genocide rape victims. (Khan, 2022).

The International Criminal Tribunal for Rwanda (ICTR, 1994-2015) recognized rape as genocide in Prosecutor v. Akayesu, ruling it aimed to destroy the Tutsi group. Twelve were convicted of rape as war crime, crime against humanity, or genocide. Rwanda's gacaca courts at first ranked rape lower, but activism—led by Godelieve Mukasarasi—made it a top-tier offense. This led survivors like JJ, NN, and OO to testify in Tanzania about mass rapes in Taba (Guilbert, 2015).

"However, since these precedents were set, prosecutors have not used them to prosecute similar crimes in other times of genocide or ethnic cleansing," writes Bailey Fairbanks in the article "Rape as an Act of Genocide" and further adds: "Although we have since seen examples of mass sexual violence during genocide in places like Darfur, it has not been prosecuted on the same scale as Bosnia or Rwanda" (Fairbanks, 2019, p. 109). The ICC became involved in Sudan's Darfur conflict after a UN Security Council referral via Resolution 1593 on March 31, 2005—the first such referral under Chapter VII of the UN Charter (SECURITY COUNCIL REFERS SITUATION IN DARFUR, SUDAN, TO PROSECUTOR OF INTERNATIONAL CRIMINAL COURT | Meetings Coverage and Press Releases, 2005). On July 14, 2008, ICC Chief Prosecutor Luis Moreno Ocampo charged Omar al-Bashir with genocide, crimes against humanity, and war crimes for a campaign to destroy the Fur, Masalit, and Zaghawa peoples through murder, rape, and deportation:

> His motives were largely political.... His alibi was a counterinsurgency. His intent was genocide.... Al-Bashir organized the destitution, insecurity and harassment of the survivors...He did not need bullets. He used other weapons: rapes, hunger and fear. As efficient, but silent. (Simons & Polgreen, 2008)

The ICC issued arrest warrants for al-Bashir in 2009 and 2010, making him the first sitting head of state charged by the court. Sudan, not party to the Rome Statute, refused to execute them. Al-Bashir received strong international support. The Arab League stated: "We stress our solidarity with Sudan and our rejection of the ICC (International Criminal Court) decision" ("Arab Leaders Back 'wanted' Bashir," 2009). Gaddafi called the indictment "a practice of First World terrorism" and "an attempt by [the West] to recolonise their former colonies" ("Sudan Leader in Qatar for Summit," 2009). Egypt was "greatly disturbed" and urged a UN meeting; Russia also condemned the warrant (Rice, 2009). Amr Moussa said it was "undermining the unity and stability of Sudan" ("Arab Leaders Snub al-Bashir

Warrant," 2009). After his 2019 ousting and imprisonment for corruption, al-Bashir was moved to a military hospital when war resumed in April 2023 ("Ousted Sudanese President Omar al-Bashir Held at Army Hospital," 2023).

Besides al-Bashir, the ICC issued warrants for five others linked to the Darfur genocide; three face charges of mass rape. Only Ali Muhammad Ali Abd-Al-Rahman has been transferred to ICC custody, surrendering on June 9, 2020 ("Darfur, Sudan," n.d.). Ahmad Muhammad Harun, former Minister of State, faces 20 counts of crimes against humanity and 22 of war crimes, both including rape. Abdel Raheem Muhammad Hussein, former Interior and Defense Minister, faces 7 counts of crimes against humanity and 6 of war crimes, also including rape. Both remain fugitives, as the ICC "does not try individuals in their absence" ("Darfur, Sudan," n.d.).

Locating the Loopholes: Why Sudan Is Not Getting Justice

Political Constraints and Lack of Cooperation

A key obstacle to prosecuting mass rape in Sudan is the government's refusal to cooperate with the ICC. Unlike the ICTY and ICTR, the ICC faced outright defiance: Sudan shielded suspects, refused extraditions, and blocked investigations. Former president al-Bashir, indicted by the ICC, traveled freely without arrest. Regional politics compound this—many African Union states, critical of the ICC for targeting African leaders, have been reluctant to support its efforts in Darfur.

Jurisdictional and Legal Challenges

The ICC's jurisdiction covers crimes after 2002 but Sudan, not party to the Rome Statute, falls outside unless referred by the UN Security Council (UNSC), which happened in 2005. UNSC politics, where veto powers can block action, weaken this referral. ICC prosecutor Karim Khan states the "international community's failure to execute warrants issued by the International Criminal Court (ICC) and subsequent lack of accountability are fuelling the violence stemming from the war between rival militaries in Sudan" ("World Confronts an 'Ugly and Inescapable Truth' in Darfur, Says ICC," 2024).

Logistical and Resource Constraints

The ICC faces major logistical and resource constraints hindering its ability to prosecute mass rape in Darfur. Investigations in conflict zones are difficult, but Darfur's insecurity, vast distances, and poor infrastructure make it worse. Evidence gathering and witness protection need resources the ICC often lacks.

Cultural and Social Barriers

In Darfur, cultural and social barriers hinder victims from testifying about sexual violence. Rape is taboo, and survivors face stigma and ostracization. Even when sharing stories through reports and media, formal hearings are rare. Amnesty International's 2025 report interviewed 16 rape survivors to document RSF atrocities ("They Raped All of Us": Sexual Violence Against Women and Girls in Sudan, 2025). Human Rights Watch collected dozens of survivor accounts (Gallopin, 2025). Yet few have testified in ICC or Sudanese courts, as trauma and legal barriers dissuade reporting ("Lack of Conviction:

The Special Criminal Court on the Events in Darfur: Part II: The Obstacles," n.d.).

Evidentiary Challenges

Prosecuting mass rape needs strong evidence—testimonies, medical reports, documentation—but Darfur's conflict hampers collection. Many witnesses are in displaced camps or unreachable areas. Sulima Ishaq, head of Sudan's Combating Violence against Women and Children unit, cites "poor phone connections, constant power cuts and the difficulty of tracking survivors who have fled to Chad and other neighbouring countries" (Harter, 2023). Weronika Strzyżyńska adds that "insufficient medical care" drives survivors to seek help abroad (Strzyżyńska, 2023). Male victims are often unrecorded due to gendered assumptions. Gabrielle Ferrales, Hollie Nyseth Brehm, and Suzy Mcelrath explain how "gender-based violence including rape and other forms of sexual assaults were used in Darfur as a means to emasculate the men of the targeted communities" (Ferrales, Brehm, & McElrath, 2016, p. 566).

Natasha Godsiff, in her article "The Failure of the International Criminal Court to Prosecute Sexual and Gender-Based Violence" says:

> The international criminal law engages sexual and gender-based violence not because it is a crime of violence against women, but because it is an assault on the community. The violation of a woman's body is therefore "secondary to the humiliation of the group" and "relegates women to the role of symbolic embodiments of community". This construct of sexual and gender-based violence creates a pattern of gender inequality which perpetuates a gender-biased system of prosecution and accountability in the ICC. (Godsiff, n.d.)

However, despite UN Resolution 1820 (June 19, 2008) addressing sexual violence as a war tactic, the International Criminal Court's prosecution efforts show major shortcomings. The huge gap between rape cases in Darfur and Sudan and indictments highlights this failure.

Possible Solutions

Addressing mass rape impunity in Darfur and Sudan requires survivor-centered international cooperation, legal reform, resources, and cultural change. Strengthening UN Security Council diplomacy and regional cooperation, as seen in the ICTR, can secure arrests and prosecutions. Legal reforms must close jurisdiction gaps, promote Rome Statute ratification, and limit immunity for officials. Trials should include gender-based violence charges with trauma-informed staff, following ICTY Foča precedents.

Operationally, increased funding, ICC field offices, technology for remote evidence, and NGO partnerships are vital. Culturally, stigma must be challenged via education, advocacy, and safe spaces. Local justice, witness protection, psychosocial support, and reparations—modeled on Rwanda's reforms—are essential. Justice demands a multidimensional, survivor-focused strategy dismantling impunity's political and cultural roots.

Conclusion

Samuel Totten, before writing his 2011 book *An Oral and Documentary History of the Darfur Genocide,* interviewed 20 Darfur genocide survivors; only one woman spoke of sexual violence, saying, "I have nothing more to say, but I thank you for coming and listening to my story... It's what I wanted" (Totten, 2011). Her words highlight the need to value survivor testimonies and reveal systemic abandonment rooted in gender, race, geography, and politics. In Sudan, rape is a biopolitical weapon to terrorize, erase identities, and restructure populations. Legal failures to prosecute reflect deep structural inequities that silence victims. Justice demands more than legal reform—it requires transforming systems that render survivors disposable and breaking impunity through moral and political action.

Department of English and Other European Languages
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar, M.P.
[1]bhaswati162@gmail.com
[2]rassingh76@gmail.com

References

1. *#16 Days Survivor Stories: Fatima Gazali – Darfur Women Action Group. (n.d.). Retrieved from https://www.darfurwomenaction.org/16-days-survivor-stories-fatima-gazali/*
2. *#16 Days Survivor Stories: Hawa Mohamed – Darfur Women Action Group. (n.d.). Retrieved from https://www.darfurwomenaction.org/16-days-survivor-stories-hawa-mohamed/#:~:text=I%20thank%20Darfur%20Women%20Action,%E2%80%9D*
3. *Ahmed, K. (2025, March 6). 'We Will Make You Have Arab Babies': Fears of Genocide Amid Rape and Torture in Sudan's Darfur. The Guardian. Retrieved from https://www.theguardian.com/global-development/2024/nov/03/we-will-make-you-have-arab-babies-fears-of-genocide-amid-and-torture-in-sudans-darfur*
4. *Ahmed Sardop. (2011, February 24). Safia Ishag's Rape [Video file]. Retrieved from https://www.youtube.com/watch?v=4qMQ22lLoCY*
5. *Ali, R. (2023, June 19). Sexual Violence in Conflict: 'Terrifying to Be a Woman in Sudan Right Now.' Anadolu Ajansı. Retrieved from https://www.aa.com.tr/en/middle-east/sexual-violence-in-conflict-terrifying-to-be-a-woman-in-sudan-right-now-/2925916*
6. *Arab leaders back "wanted" Bashir. (2009, March 30). BBC. Retrieved from http://news.bbc.co.uk/2/hi/7971624.stm*
7. *Arab leaders snub al-Bashir warrant. (2009, March 31). Al Jazeera. Retrieved from https://www.aljazeera.com/news/2009/3/30/arab-leaders-snub-al-bashir-warrant*
8. *Armstrong, E. A., Gleckman-Krut, M., & Johnson, L. (2018). Silence, Power, and Inequality: An Intersectional approach to Sexual violence. Annual Review of Sociology, 44(1), 99–122. https://doi.org/10.1146/annurev-soc-073117-041410*
9. *Bashir, H., & Lewis, D. (2008). Tears of the Desert: One Woman's True Story of Surviving the Horrors of Darfur. Hodder & Stoughton.*
10. *Bhattacharjee, B. (2024, August 2). Why Rape Survivors' Testimonies Are Rare in Sudan. Retrieved from https://www.genocidewatchblog.com/post/why-rape-survivors-testimonies-are-rare-in-sudan*

11. *Coaston, J. (2019, May 28). The intersectionality wars. Vox. Retrieved from https://www.vox.com/the-highlight/2019/5/20/18542843/intersectionality-conservatism-law-race-gender-discrimination*
12. *Council of the EU. (2022, June 9). Women in Conflicts – Live Talk [Video]. YouTube. Retrieved June 5, 2024, from https://www.youtube.com/live/OAGT6immQBM*
13. *Daly, M. W. (2007). Darfur's Sorrow: A History of Destruction and Genocide. Cambridge University Press.*
14. *Darfur: Rapid Support Forces, Allied Militias Rape Dozens. (2023, August 17). Human Rights Watch. Retrieved from https://www.hrw.org/news/2023/08/17/darfur-rapid-support-forces-allied-militias-rape-dozens*
15. *Darfur, Sudan. (n.d.). In International Criminal Court (ICC-02/05). https://www.icc-cpi.int/darfur*
16. *Fairbanks, B. (2019). Rape as an Act of Genocide: Definitions and Prosecutions as Established in Bosnia and Rwanda. Historical Perspectives: Santa Clara University Undergraduate Journal of History, Series II, 23, 13. https://scholarcommons.scu.edu/historical-perspectives/vol23/iss1/13*
17. *Farge, E. (2024, October 29). Sudan's RSF and allies sexually abused victims from 8-75 years, UN mission says. Reuters. Retrieved from https://www.reuters.com/world/africa/sudans-rsf-allies-sexually-abused-victims-8-75-years-un-mission-says-2024-10-29/*
18. *Felluga, D. (2015). Critical Theory: The Key Concepts. Routledge.*
19. *Ferrales, G., Brehm, H. N., & McElrath, S. (2016). Gender-Based Violence against Men and Boys in Darfur: The Gender-Genocide Nexus. Gender and Society, 30(4), 565–589. http://www.jstor.org/stable/24756217*
20. *Foucault, M. (2003). "Society must be defended": Lectures at the Collège de France, 1975-1976. (D. Macey, Trans.). Penguin Books.*
21. *Foucault, M. (2020). The History of Sexuality: The Will to Knowledge. (R. Hurley, Trans.) (Vol. 1). Penguin Books.*
22. *Gingerich, T., & Leaning, J. (2004). The Use of Rape as a Weapon of War in the Conflict in Darfur, Sudan. Harvard School of Public Health. https://reliefweb.int/sites/reliefweb.int/files/resources/B119C9EFB7DCAA2DC1256F5F004FBEA9-hu-sud-31oct.pdf*
23. *Godsiff, N. (n.d.). The Failure of the International Criminal Court to Prosecute Sexual and Gender-Based Violence. Cambridge University Law Society. Retrieved from https://www.culs.org.uk/per-incuriam/the-failure-of-the-international-criminal-court-to-prosecute-sexual-and-gender-based-violence (abc, 2019)*
24. *Guilbert, K. (2015, June 17). Film shows bravery of Rwandan women in first prosecution of rape as war crime. Reuters. Retrieved from https://www.reuters.com/article/lifestyle/film-shows-bravery-of-rwandan-women-in-first-prosecution-of-rape-as-war-crime-idUSKBN0OW2W6/*
25. *Hagan, J., Rymond-Richmond, W., & Palloni, A. (2009). Racial Targeting of Sexual Violence in Darfur. American Journal of Public Health, 99(8), 1386–1392. https://doi.org/10.2105/ajph.2008.141119*
26. *Harter, F. (2023, August 29). Women in Sudan facing a 'tragedy' of sexual violence as rape cases rise. The Guardian. Retrieved from https://www.theguardian.com/global-development/2023/aug/29/women-in-sudan-facing-a-tragedy-of-sexual-violence-as-cases-rise*
27. *Henry, J. (2023, March). Five years on. Human Rights Watch. Retrieved from https://www.hrw.org/report/2008/04/06/five-years/no-justice-sexual-violence-darfur#:~:text=women%20to%20a%20secluded%20area,are%20part%20of%20the%20problem*

28. *Kapila, M., & Lewis, D. (2023). Against a Tide of Evil: How One Man Became the Whistleblower to the First Mass Murder of the Twenty-First Century. Ivory Books.*
29. *Kaiser, J., & Hagan, J. (2015). Gendered Genocide: The Socially Destructive Process of Genocidal Rape, Killing, and Displacement in Darfur. Law & Society Review, 49(1), 69–107. https://www.jstor.org/stable/43670463*
30. *Khan, A. (2022, April 25). Bakira Hasečić. Retrieved from https://srebrenica.org.uk/survivor-stories/bakira-hasecic*
31. *Lack of conviction: The Special Criminal Court on the events in Darfur: Part II: The obstacles. (n.d.). Retrieved from https://www.hrw.org/legacy/backgrounder/ij/sudan0606/3.htm#:~:text=Major%20legal%20obstacles%2C%20in%20addition,if%20the%20rape%20constitutes%20the*
32. *Landmark Cases | International Criminal Tribunal for the former Yugoslavia. (n.d.). Retrieved from https://www.icty.org/en/features/crimes-sexual-violence/landmark-cases#:~:text=In%20the%20context%20of%20a,%E2%80%9D*
33. *Le Poidevin, O. (2025, April 15). Rape used systematically as a weapon of war in Sudan, UN agency warns. Reuters. Retrieved from https://www.reuters.com/world/africa/rape-being-used-systematically-weapon-war-sudan-un-agency-warns-2025-04-15/*
34. *Michel Foucault (Stanford Encyclopedia of Philosophy). (2022, August 5). Retrieved from https://plato.stanford.edu/entries/foucault/#:~:text=biopower%2C%20a%20form%20of%20power,the%20life%20process%20in%20order*
35. *O. Collins, R. (2006). Disaster in Darfur: Historical Overview. In S. Totten & E. Markusen (Eds.), Genocide in Darfur: Investigating the Atrocities in the Sudan (pp. 3–24). Routledge.*
36. *Ousted Sudanese President Omar al-Bashir held at army hospital. (2023, April 26). Al Jazeera. Retrieved from https://www.aljazeera.com/news/2023/4/26/ousted-sudanese-president-omar-al-bashir-held-at-army-hospital*
37. *Pele, A. (2020, March 2). Achille Mbembe: NecroPolitics. Retrieved from https://criticallegalthinking.com/2020/03/02/achille-mbembe-necropolitics/#:~:text=The%20subjugation%20of%20life%20to,the%20power%20of%20death*
38. *Rice, X. (2009, March 4). Uproar in Sudan over Bashir war crimes warrant. The Guardian. Retrieved from https://www.theguardian.com/world/2009/mar/04/sudan-demostrators-support-bashir*
39. *Scheffer, D. (2008, November 3). Rape as genocide. The New York Times. Retrieved from https://www.nytimes.com/2008/12/03/opinion/03iht-edscheffer.1.18365231.html*
40. *Schröder, A. (2024, September 9). Yayori Matsui: The People's Voice: Organiser of a Pan-Asian Feminist Tribunal for Survivors of Sexual Violence. https://doi.org/10.59704/2440cc5f37bc40c0*
41. *Searcy, K. (2019, June 1). Sudan in crisis. Retrieved from https://origins.osu.edu/article/sudan-darfur-al-bashir-colonial-protest?language_content_entity=en*
42. *SECURITY COUNCIL REFERS SITUATION IN DARFUR, SUDAN, TO PROSECUTOR OF INTERNATIONAL CRIMINAL COURT | Meetings coverage and press releases. (2005, March 31). https://press.un.org/en/2005/sc8351.doc.htm#:~:text=Adopting%20resolution%201593%20(2005)%20by,Prosecutor%2C%20providing%20them%20with%20any*
43. *Simons, M., & Polgreen, L. (2008, July 14). Hague court accuses Sudanese president of genocide. The New York Times. Retrieved from https://www.nytimes.com/2008/07/14/world/africa/14iht-15sudan-cnd.14481819.html*

44. *Strzyżyńska, W. (2023, June 15). Anguish as rape survivors in Sudan unable to access vital medication. The Guardian. Retrieved from https://www.theguardian.com/global-development/2023/jun/14/anguish-as-survivors-in-sudan-unable-to-access-vital-medication*

45. *Sapa. (2024, September 20). Sudan Civil War: History & Implications [6 Root causes]. Retrieved from https://sapa-usa.org/sudan-civil-war/#:~:text=Colonial%20Legacy%3A,to%20internal%20divisions%20and%20conflicts.*

46. *Sudan: Children as young as 12 raped and assaulted, as sexual violence rips through the country. (2023, July 7). Save the Children International. Retrieved from https://www.savethechildren.net/news/sudan-children-young-12-raped-and-assaulted-sexual-violence-rips-through-country?s=08*

47. *Sudan leader in Qatar for summit. (2009, March 29). BBC. Retrieved from http://news.bbc.co.uk*

48. *Sudan women's groups demand UN probe into rape in conflict zones. (2024, March 20). Sudan Tribune. Retrieved from https://sudantribune.com*

49. *"They Raped All of Us": Sexual Violence Against Women and Girls in Sudan. (2025, April). Amnesty International. Retrieved from https://www.amnestyusa.org/reports/they-raped-all-of-us-sexual-violence-against-women-and-girls-in-sudan/#:~:text=The%20conflict%20has%20been%20particularly,the%20Sudan%20conflict%2C%20among%20others*

50. *Totten, S. (2011). An Oral and Documentary History of the Darfur Genocide. Praeger Security International.*

51. *Tounsel, C. (2021). The Equatorial Corps and the Torit Mutiny. In Chosen Peoples: Christianity and Political Imagination in South Sudan (pp. 44–66). Duke University Press. https://doi.org/10.2307/j.ctv1qr6sh6.7*

52. *United Nations. (2023). Conflict-related sexual violence. Report of the Secretary-General.*

53. *U.S. Committee for Refugees: Crisis in Sudan. (n.d.). Retrieved from https://web.archive.org/web/20041210024759/http://www.refugees.org/news/crisis/sudan.htm*

54. *Usher, B. P., & Booty, N. (2025, March 4). One-year-olds among those raped during Sudan civil war, UN says. BBC. Retrieved from https://www.bbc.com/news/articles/cvgpdxk853jo*

55. *US: State Department determines genocide in Sudan. (2025, January 8). Retrieved from Human Rights Watch. https://www.hrw.org/breaking-news/2025/01/08/us-state-department-determines-genocide-sudan*

56. *Wadekar, N., & Flood, Z. (2025, April 17). Activist provides support for Sudanese refugees terrorized by sexual violence. PBS News. Retrieved from https://www.pbs.org/newshour/show/activist-provides-support-for-sudanese-refugees-terrorized-by-sexual-violence*

57. *Wax, E. (2024, March 3). "We want to make a light baby." The Washington Post. Retrieved from https://www.washingtonpost.com/archive/politics/2004/06/30/we-want-to-make-a-light-baby/20ee1d7e-9183-4350-ac3b-0f55039bbfba/*

58. *World confronts an 'ugly and inescapable truth' in Darfur, says ICC. (2024, January 29). Africa Renewal. Retrieved from https://www.un.org/africarenewal/magazine/august-2023/world-confronts-%E2%80%98ugly-and-inescapable-truth%E2%80%99-darfur-says-icc-prosecutor#:~:text=The%20international%20community's%20failure%20to,UN%20Security%20Council%20on%20Monday.*

Working Capital Management, Liquidity and Profitability of Maharatna CPSE In India

Gautam Prasad[1], Garima Dohar[2], Ankita Rajput[3]

Abstract

The purpose of the study is to examine the relationship between working capital management, liquidity, and profitability of Maharatna Companies, central public sector enterprises in India. Working capital management is a crucial component of a company's financial strategy since it spans sector boundaries and organizational sizes. Working capital management and allocation greatly affect an organization's capacity to meet short-term obligations, engage in growth possibilities, and ultimately provide value for its stakeholders. This study is analytical in nature based on secondary data; for the study, all 12 Maharatna companies have been taken into account. The period of the study is from 2019 to 2023. For the analysis of the data Ratio Analysis as well as statistical tools like Correlation Matrix, Regression Analysis and ANOVA with the help of SPSS have been used.

The finding of the research is there is no significant relationship found between liquidity and profitability, except that ROE has a moderately positive correlation with QR. It has been concluded that only QR and ITR have a significant impact on ROE. The research seeks to uncover patterns, correlations, and potential causations that can shed light on best practices and strategies for enhancing the mutually beneficial link between working capital efficiency and profitability. This study is time-bound only from 2019 to 2023. Also, only Maharatna companies. The present study only covers working capital management and other financial management untouched aspects. This study will benefit academics and practitioners in the fields of finance and business management. Also, the study could provide insights into the strategic decision-making processes of Maharatna companies concerning their working capital management.

Keywords: Central Public Sector Enterprises, *Liquidity, Maharatna Companies, Profitability, Working Capital.*

1. Introduction

Companies face constant obstacles as a result of the complicated relationships between profitability, liquidity, and operational efficiency in the dynamic and complex world of modern business. The idea of working capital, a crucial element that supports a company's

daily operations, is key to this equilibrium. The secret to finding a delicate balance between preserving enough liquidity for operational demands and using resources wisely to improve overall financial performance is working capital management (WCM). Working capital management is a crucial component of a company's financial strategy since it spans sector boundaries and organizational sizes. Working capital management and allocation greatly affect an organization capacity to meet short-term obligations, engage in growth possibilities, and ultimately provide value for its stakeholders (Naik, 1990).

Working capital management is of utmost importance in the world of corporate finance since it is crucial to an organization operational effectiveness, financial stability, and overall competitiveness (Singh, 2005). The Maharatna companies in India, an important group of public sector businesses endowed with enormous scale, influence, and strategic relevance to the country's economic development, make this significance even more apparent. (Biswas 2018) says that the prudent management of working capital emerges as a crucial aspect that can have a significant impact on these massive entities' financial performance, sustainability, and capacity to uphold their social obligations as they navigate the complex landscape of economic fluctuations, regulatory dynamics, and global market pressures.

In India, according to the Department of Public Enterprises, the Ministry of Heavy Industries and Public Enterprises is responsible for managing public sector enterprises. Certain Central Public Sector Enterprises (CPSE) are given greater operating autonomy when the Indian government accords them the titles of Maharatna, Navratna, or Miniratna, depending on the profits they generate. The Maharatna category is the newest, having only been established in 2009, whereas the other two have been operational since 1997. For Maharatna Company status, a company must first attain Navratna status, which is a lower category of PSEs. To qualify as a Navratna, a company needs to meet specific financial and operational criteria, such as profitability, net worth, turnover, etc. Also, the company should have an average annual turnover of at least Rs. 25,000 crores over the last three years; its average annual net worth should be at least Rs. 15,000 crores during the past three years; and it should have made a net profit of over Rs. 5,000 crores in the last three years.

The National Informatics Centre stated that Maharatna businesses, given their higher status by the Indian government, are given important responsibilities in a variety of industries, including energy, minerals, banking, and telecommunications. Due to the complexity of these industries, as well as the enormous size and various operations of the organizations, it is crucial to maximize working capital to ensure smooth daily operations and the pursuit of long-term strategic objectives. To understand the distinctive difficulties, approaches, and effects that shape the financial environment of India's Maharatna enterprises, this research paper looks deeply into the complexities of working capital management. This study aims to identify the relationship between liquidity and profitability to reconcile short-term liquidity requirements with the generation of long-term value for stakeholders by analyzing the interaction between

current assets and liabilities. This research paper has two main goals: first, it will provide a thorough analysis of the theoretical foundations of working capital management in

Maharatna companies, illuminating its significance in the context of Maharatna companies; and second, it will empirically analyze and assess the impact of working capital management on the profitability of Maharatna companies. The growing significance of Maharatna companies as significant forces behind India's economic and social development serves as the driving force behind this study. To help policymakers, financial experts, and corporate leaders make decisions that will improve these entities' operational effectiveness and financial robustness, this research paper seeks to analyze each aspect of their working capital management practices.

2. Work Review and Hypothesis Development

According to Dutta et al., (2019) NTPC is used as the case company in this analysis to look at the impact of working capital management components on corporate profitability. In this paper, several issues have been raised concurrently, along with potential answers, and these have also been highlighted. These solutions, among others, include stricter laws against power theft and greater implementation of these laws; opening up distribution sectors to private players to increase competition; investing more in renewable energy projects; opening up the coal mines sector to private players to accelerate efficiency; wise CAPEX use; and proper use of capital budgeting techniques before execution. Biswas (2018), examined the profitability and management effectiveness of two specific public sectors "Maharatna" and "Navaratna" companies manufacturing capital goods, as well as the relationship between profitability and management effectiveness. Except for a few instances, there is a positive correlation between Bharat Heavy Electricals Limited's (BHEL) profitability ratios and management ratios that have been taken into consideration for the study. This is also the case for Bharat Heavy Electricals Limited in general. Profitability and managerial efficiency ratios have a mixed relationship with Bharat Electronics Limited (BEL), showing both a positive and a negative association.

In their related paper, Gahlot, (2019) studied and analysed liquidity, profitability, solvency, and activity ratios from the previous five years to analyze the financial performance of five Maharatna companies: Oil & Natural Gas Corporation Ltd., Coal India Ltd., NTPC Ltd., Steel Authority of India Ltd., and Bharat Heavy Electricals Ltd. Due to their rising efficiency, it has been discovered that NTPC and CIL are the enterprises growing at the fastest rate. Debasish & Chakraborty, (2015) In the current study, the financial performance of Bharat Heavy Electricals Ltd., the only "Maharatna" CPSE in the Indian power equipment manufacturing sector, has been examined across all significant aspects from 2004-2005 to 2013-2014. Relevant statistical measures have been applied during the analysis. While the company's fixed asset management failed to establish itself as a substantial contributor to its wealth generation in the same period, the working capital management of BHEL made a considerable contribution towards strengthening its value-generating potential during the research period. Batth et al., (2018) the study's goal is to shed light on the PSUs' (Public Sector Undertakings) financial performance in India. The study employs the Altman Z Score Model to determine financial performance. The analysis takes into account different financial ratios for the businesses that fall under the Maharatna and Navrana classifications. The study aids in identifying businesses with "good" or "poor" financial performances. Investors can use the study's findings to determine the financial health of PSUs, which is very helpful. It significantly affects the investment choices made by public-

sector businesses. There have been some studies conducted regarding the examination of the almost two decades of financial performance of Indian public sector enterprises. There haven't been many studies on the topic recently that take into account the working capital management of Maharatna companies in India. But in recent years, hardly any thorough research has been done to address all thirteen Maharatna firms in India. The time frame of the study and the sample appear to be separated by a large gap. The current study, which considers all the important aspects of working capital management, has been done to bridge the gap. After reviewing the available research papers, it has been observed that the study needs to be addressed in be different way with a new approach. The main objectives of the study are to analyze the Working Capital Management and Profitability of Maharatna Companies in India, to identify the relationship between Liquidity and Profitability for Maharatna Companies in India and to examine the impact of Working Capital Management on the Profitability of Maharatna Companies.

2.1 Objectives of the Study

The objectives of the study are as follows:

- To study the Working Capital Management and Profitability of Maharatna Companies in India.
- To analyse the relationship between Liquidity and Profitability for Maharatna Companies in India.
- To examine the impact of Working Capital Management on the Profitability of Maharatna Companies.

2.2.Hypotheses of the study

The hypotheses proposed in the research paper are as follows:

H01- There is no significant relationship between Working Capital Management and Profitability of Maharatna Companies in India.

H02- There is no significant impact of Working Capital Management on the Profitability of Maharatna Companies.

3.0.Methodology Databases and Variables

3.1 Databases

This study is based on secondary data that is extracted and retrieved from the company's websites, government publications, magazines, and national and international research papers over the period 2019 to 2023. For the study, secondary data from all thirteen Maharatna companies has been taken. They are Bharat Heavy Electricals Limited (BHEL), Bharat Petroleum Corporation Limited (BPCL), Coal India Limited (CIL), GAIL India Limited, Hindustan Petroleum Corporation Limited (HPCL), Indian Oil Corporation Limited (IOCL), NTPC Limited, Oil & Natural Gas Corporation Limited (ONGC), Power Finance Corporation (PFC), Power Grid Corporation of India Limited (POWERGRID), Rural Electrification Corporation Limited (RECL), and Steel Authority of India Limited (SAIL), according to the Department of Public Enterprises under the Ministry of Heavy Industries and Public Enterprises (2023, May 10). The period of the study is from 2019 to 2023. The Accounting and statistical analyses have been performed on the gathered

data. Ratio analysis is used to examine profitability and working capital management. We then use correlation analysis to see how liquidity and profitability are related. Moreover, multiple linear regressions have been employed to investigate how working capital management affects profitability.

3.2 Empirical model

We developed a functional model to identify and evaluate the working capital management component's contribution to company profitability.

$$ROE = \beta 0 + \beta 1\ (ITRt) + \beta 2\ (DTRt) + \beta 3(QRt) + \beta 4(CRt) + et \quad (1)$$

3.3 Variables

The profitability and working capital management of Maharatna companies have been measured through ratio analysis, and we have taken an average of five years for every company. Working capital management is analyzed using the current ratio (CR), quick ratio (QR), debtor turnover ratio (DTR), inventory turnover ratio (ITR), and working capital turnover ratio (WCTR). The profitability ratio is measured through net profit margin (NPM), gross profit margin (GPM), return on capital employed (ROCE), return on assets (ROA), and return on equity (ROE).

3.4 Working Capital Management and Profitability of Maharatna Companies in India

The current ratio reflects the company's capability to meet its current obligations. The ideal current ratio should be 2:1. Table I demonstrated that, except for CIL and RECL, neither company had an above-ideal ratio. This means they have faced a little bit of a challenge in meeting their short-term liabilities. The quick ratio shows the company's capacity to meet short-term obligations from quick assets. It can be calculated as (current assets minus inventory) minus current liabilities. The ideal norm for a quick ratio is 1:1. BHEL, NTPC, and POWERGRID meet the standard norm, but CIL, PFC, and RECL are overly liquid in the short term and do not put money to work efficiently. All the other remaining companies are far from the standard norm of quick ratio, which implies these companies have some problems meeting their current obligations. The debtor turnover ratio illustrates how effectively debts are managed. A higher DTR number indicates more effective handling of sales or receivables. However, BPCL, HPCL, and IOCL show very high DTR, which means the companies restrained loan sales and caused a loss of revenue. The inventory turnover ratio is a financial indicator that shows how effectively a company maintains its inventory. The ideal ITR is generally between 5 and 10. BPCL, GAIL, HPCL, NTPC, ONGC, POWERGRID, and RECL with a high ITR typically sell their items quickly, effectively manage their inventory, and refrain from overstocking. BHEL and SAIL have low ITR. Possibly as a result of excessive inventory, weak sales, or inadequate marketing tactics, a corporation is having trouble moving its items.

The working capital turnover ratio shows how efficiently a business uses funds for the effective manufacturing of goods or services. BHEL, CIL, PFC, RECL & SAIL, have positive WCTRs, indicating that a company is properly allocating its working capital. On the other hand, a negative WCTR indicates that the business is investing more in inventories. It might also imply that the company owes its suppliers too much money, which raises the possibility of bad debts.

Table No. 1

Profitability and Working Capital Management ratio of Maharatna Companies

RATIOS	CR	QR	DTR	ITR	WCTR	NPM	GPM	ROCE	ROA	ROE
BHEL	1.56	1.69	4.14	3.08	2.75	-2.94	-2.97	0.3	81.17	-1.65
BPCL	0.62	0.35	46.57	13.47	-125.05	2.86	2.74	15.25	217.92	16.84
CIL	2.94	2.98	6.23	6.49	4.86	1.01	1.82	4.29	31.72	0.21
GAIL	0.71	0.68	17.1	27.22	-40.78	8.16	8.68	16.38	121.56	13.47
HPCL	0.49	0.28	53.68	12.95	-15.63	1.5	1.62	8.86	218.42	8.81
IOCL	0.51	0.31	38.45	7.67	-13.66	2.85	4.22	11.77	116.33	12.24
NTPC	0.81	1.17	7.91	11.08	-33.03	12.32	18.48	8.46	124.26	11.27
ONGC	0.64	0.65	12.85	13.23	-37.64	23.27	27.63	16.31	174.98	11.52
PFC	1.85	42.41	4.34	7.58	1.09	23.75	92.68	11.34	203.32	23.75
POWERGRID	0.84	1.15	7	28.71	-2.88	33.77	56.18	11.66	119.38	18.34
RECL	4.41	15.26	8.94	12.06	0.23	23.32	90.99	8.54	208.55	17.86
SAIL	0.6	0.43	14.41	3.52	11.18	5.1	10.36	12.46	109.22	9.27

Source: Self Complied

An analysis revealed that NTPC, ONGC, PFC, POWERGRID, OIL INDIA, and RECL meet its standards Table No. 1, other than the mentioned companies, NPM may signify operational inefficiencies or poor pricing tactics as the company's costs continue to cut into its earnings. Gross profit margin gives insight into a business's capacity to control production costs and make a profit from its primary activities. PFC, POWERGRID, and RECL show that a business is successfully managing its manufacturing costs and producing more gross profit per unit of revenue. Other companies have a low GPM, which means that, in terms of overall sales, a company is making relatively less money from its main operations. Return on Capital Employed shows how profitable and effective a company's capital investments are. BPCL, GAIL, IOCL, ONGC, PFC, POWERGRID, and SAIL, have a good financial position. Out of 12 companies, 5 show low ROCE and have ineffectiveness in operations or capital allocation. Return on assets (ROA) assesses how well a business generates profits from the value of all of its assets. All Maharatna companies have a higher return on assets (ROA), which shows that they are often more effective at turning their assets into earnings. Return on equity assesses how effectively a business makes a profit off of the capital put into it by its shareholders. BPCL, PFC, POWERGRID, and RECL effectively use their shareholder's funds. BHEL shows a negative ROE, which means the company's net income is insufficient to pay off the capital that its shareholders have invested in it. The net profit margin is a crucial financial metric since it offers information on how profitable a firm may be based on its revenue. Since its standard ratio is between 10 percent and 20 percent.

4.0 Empirical Analysis and Result

The matrix of the Pearson correlation coefficients between profitability (ROCE, ROA,

and ROE) and liquidity (CR and QR), together with the accompanying p-values for significance, was also recommended by an analysis Table No.2, the correlation coefficient ranges from -1 to 1, where -1 indicates a perfect negative linear correlation, 1 indicates a perfect positive linear correlation, and 0 indicates no linear correlation. The p-values help determine whether the observed correlations are statistically significant. ROCE has a correlation of -0.470 with CR (current ratio), indicating a moderately negative correlation. This correlation is not statistically significant (p = 0.892). ROCE has a correlation of -0.042 with QR (Quick Ratio), which is a very weak negative correlation. This correlation is not statistically significant. ROA has a weak positive correlation of 0.267 with CR. This correlation is not statistically significant (p = 0.378). ROE has a correlation of -0.003 with CR, suggesting a very weak negative correlation. This correlation is not statistically significant (p = 0.994). only in the case of ROE, which has a correlation of 0.553 with QR, indicating a moderately positive correlation. This correlation is statistically significant at the 0.05 level (p = 0.050). So overall, we failed to reject the null hypothesis (H01), which means there is no significant relationship between the liquidity and profitability of Maharatna companies in India.

Table No. 2

Correlation Matrix

Correlation Matrix						
		ROCE	**ROA**	**ROE**	**CR**	**QR**
ROCE	**Pearson Correlation**	**1**	**0.454**	**.645**	**-0.470**	**-0.042**
	Sig. (2-tailed)		**0.120**	**0.017**	**0.105**	**0.892**
	N		**13**	**13**	**13**	**13**
ROA	**Pearson Correlation**		**1**	**.592**	**-0.074**	**0.267**
	Sig. (2-tailed)			**0.033**	**0.811**	**0.378**
	N			**13**	**13**	**13**
ROE	**Pearson Correlation**			**1**	**-0.003**	**0.553**
	Sig. (2-tailed)				**0.994**	**0.050**
	N				**13**	**13**
CR	**Pearson Correlation**				**1**	**0.439**
	Sig. (2-tailed)					**0.133**
	N					**13**
QR	**Pearson Correlation**					**1**
	Sig. (2-tailed)					
	N					
***. Correlation is significant at the 0.05 level (2-tailed).**						

Source- Compiled by Author's (SPSS)

4.1 Multiple Linear Regression Analysis

The regression analysis has been used to examine the hypothesis as there is a significant impact of working capital management on the profitability of Maharatna companies. The independent variable is the one whose value has been used for prediction, and the dependent variable is the one whose value is predicted. ROE can be used to efficiently measure the profitability of companies.

Table No. 3

Model Summary

Model	R	R Square	Adjusted R Square	Std. Error of
1	.	0.695	0.542	4.71151
a. Predictors: (Constant),				
b. Dependent Variable: ROE				

Source- Compiled by Author's (SPSS)

The results of Model 1's regression analysis are shown in Table No. 3, the multiple correlation coefficient (R) value is 0.833, which shows a strongly positive correlation between the model's variables. According to the value of R square, ITR, DTR, QR, and CR are responsible for 69.5 percent of the variability in ROE. It implies that ROE and the working capital management component have a close relationship.

Table No.4

ANOVA Analysis Summary

Model		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
1	Regression	404.019	4	101.005	4.550	.
	Residual	177.587	8	22.198		
	Total	581.605	12			
a. Dependent Variable: ROE						
b. Predictors: (Constant),						

Source- Compiled by Author's (SPSS)

Table No. 4, indicates that because the constructed model is statistically significant, it may be used to forecast ROE. The value of the F-stat is determined to be 4.550, which is significant because the level of significance is less than 5 percent. Thus, it was discovered that the firm's quick ratio, current ratio, debtor turnover ratio, and inventory turnover ratio all have an impact on the return on equity of Maharatna companies in India. This leads to our rejecting the null hypothesis (H02).

Table No.5

Coefficient Analysis Summary

Model	Unstandardized Coefficients			Standardized Coefficients	t	Sig.
	B		Std. Error	Beta		
1	(Constant)	2.757	4.059		0.679	0.516
	CR	-0.789	1.398	-0.132	-0.564	0.588
	QR	0.462	0.130	0.788	3.550	0.008
	DTR	0.097	0.091	0.235	1.065	0.318
	ITR	0.489	0.179	0.550	2.732	0.026

Source- Compiled by Author's (SPSS)

The beta coefficient and significance of the independent variable are displayed in Table No.5, ITR and QR's p-values are less than 0.05, indicating that they significantly impact how much ROE is valued. Now Model 1 can be written as:

ROE = 2.757 + 0.489 (ITRt)+ 0.097 (DTRt) + 0.462 (QRt) + -0.789 (CRt) + e***t***

Table No. 6

Distinctive Model Summary & ANOVA of Maharatna Companies

Company	R	R	Adjuste	df	F	P-	Significant or	Inference
BHEL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
BPCL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
COAL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
GAIL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
IOCL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
HPCL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
NTPC	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
ONGC	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
PFC	.995	0.990	0.961	3	33.813	.126	Not	Accept
POWERGR	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
RECL	1.000	1.000	-	4	-	0.000	Significant	Reject
SAIL	.94	0.887	0.547	3	2.607	.420	Not	Accept

Source- Compiled by Author's (SPSS)

The results of Model 1's regression analysis are displayed in Table No.6, the multiple correlation coefficient (R) value is 1.000 for the mentioned companies, which shows a perfect positive correlation between the model's variables. According to the value of R square, ITR, DTR, QR, and CR are responsible for 100 percent of the variability in ROE of BHEL, BPCL, CIL, GAIL, HPCL, IOCL, NTPC, ONGC, POWERGRID & RECL. It implies that ROE and the working capital management component have a perfect relationship.

TABLE No. 7

PFC Model Summary and ANOVA

Model summary			ANOVA		
R	R Square	Adjusted R Square	df	F	Sig.
.995	0.990	0.961	3	33.813	.126
a. Dependent Variable: ROE					
b. Predictors: (Constant),					

Source- Compiled by Author's (SPSS)

Table No. 7, displays the findings of the regression analysis of Model 1. The multiple correlation coefficient (R) value is 0.887, which shows a strongly positive correlation between the model's variables. According to the value of R square, ITR, DTR, QR, and CR are responsible for 54.7 percent of the variability in ROE. It implies that ROE and the working capital management component have a close relationship.

TABLE No. 8

SAIL Model Summary and ANOVA

Model summary			ANOVA		
R	R Square	Adjusted R Square	df	F	Sig.
.942	0.887	0.547	3	2.607	.420
a. Dependent Variable: ROE					
b. Predictors: (Constant),					

Source- Compiled by Author's (SPSS)

The results of Model 1's regression analysis are displayed in Table No.8, the multiple correlation coefficient (R) value is .995, which shows a perfect positive correlation between the model's variables. According to the value of R square, ITR, DTR, QR, and CR are responsible for 96.1% of the variability in ROE. It implies that ROE and the working capital management component have a close relationship.

4.2. Result of the study

Bharat Heavy Electronic Limited, Bharat Petroleum Corporation Limited, COAL INDIA, Gas Authority of India Limited, Indian Oil Corporation Limited, Hindustan Petroleum Corporation Limited, National Thermal Power Corporation, Oil and Natural Gas Corporation Limited, POWERGRID and Rural Electrification Corporation Limited. companies have R, R Square, and Adjusted R Square values of 1.000, indicating a perfect fit of the model. The p- values are 0.000, suggesting that the relationship between the variables is statistically significant. Therefore, the null hypothesis is rejected, implying that there is a significant relationship between the variables for each of these companies. PFC has slightly lower R, R Square, and Adjusted R Square values compared to the other companies. The R Square value is 0.990, and the Adjusted R Square is 0.961. Although these values are high, they are not perfect like the others. The p-value is 0.126, which is greater than the typical significance level of 0.05. Therefore, the null hypothesis is not

rejected, suggesting that there is not a significant relationship between the variables for PFC.SAIL has lower R, R Square, and Adjusted R Square values compared to the other companies. The R Square value is 0.887, and the Adjusted R Square is 0.547. The p-value is 0.420, which is greater than 0.05. Therefore, the null hypothesis is not rejected, suggesting that there is not a significant relationship between the variables for Steel Authority of India Limited.

5.0 Conclusions

The judicious management of working capital emerges as a crucial aspect that can have a significant impact on Maharatna Company's financial performance, sustainability, and capacity to uphold its social obligations as it navigates the complex landscape of economic fluctuations, regulatory dynamics, and global market pressures. it has been concluded that the management of the working capital of Maharatna companies is not as good as it has to be. CIL and RECL are the only Maharatna companies that are good at managing their working capital. DTR and ITR are higher than standard norms for most companies, but CR, QR, and WCTR are far from ideal ratios. GAIL, NTPC, ONGC, PFC, POWERGRID, RECL & SAIL, are profitable since their NPM, GPM, ROCE, ROA, and ROE meet their standard norms. Findings also show that there is no significant relationship between liquidity and profitability, except that ROE has a moderately positive correlation with QR. The outcome of Model 1 determines that QR and ITR have a significant impact on ROE. All companies except PFC and SAIL show a statistically significant relationship between the variables, as indicated by their extremely high R, R Square, and Adjusted R Square values, along with very low p-values.

Department of Commerce
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.)
[1]yourgautamprasad@gmail.com
[2]garimadohar17@gmail.com
[3]ankita96rajput@gmail.com

References

1. *Dr. Gautam Prasad, Assistant Professor, Department of Commerce, Dr. Harisingh Gour V.V. Sagar (M.P.)*
2. *Ms. Garima Dohar, SRF Research Scholar, Department of Commerce, Dr. Harisingh Gour V.V. Sagar (M.P.)*
3. *Ms. Ankita Rajput, M.com (Gold Medalist), SRF Research Scholar, Department of Commerce, Dr. Harisingh Gour V.V. Sagar (M.P.)*
4. *Abuhommous, A. at el. (2022). "The impact of working capital management on credit rating", Financial Innovation, Vol. 8 No. 1, 1–20.*
5. *Ahmad, M. A., at el. (2021). "How Working Capital Management Efficiency Impacts on Profitability of Maruti Suzuki in India?", Ilkogretim Online, Vol. 20 No. 1, 4270–4282.*
6. *Asaduzzaman, M. and Chowdhury, T.F. (2014). "Effect of Working Capital Management on Firm Profitability: Empirical Evidence from Textiles Industry of Bangladesh", Research Journal of Finance and Accounting, Vol. 8, 175–184.*
7. *Batth, V., at el. (2018). "The Study of Financial Performance of Indian Public Sector Undertakings", Global Journal of Finance and Management, Vol.10 No. 1, 21– 43.*

8. *Biswas, B. (2018). "Evaluation of Financial Performance of Select Indian Maharatna and Navaratna Public Sector Undertakings", Mizoram University Journal of Humanities & Social Sciences, Vol. 4 No.1, 76–90.*
9. *Dutta, B., at el. (2019). "Corporate Profitability as a Function of Working Capital Management: A Case Study on Power Sector", Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, Vol. 6 No. 6, 599–602.*
10. *Farhan, N. H. S., at el. (2021). "An analysis of working capital management in India: An urgent need to refocus", Cogent Business and Management, Vol. 8 No. 1, 1–25.*
11. *Gahlot, R. (2019). "Financial Performance Analysis of Maharatna Companies", International Journal of Research in Engineering, IT and Social Sciences, Vol. 9 No.3, 163–168.*
12. *Habib, A. M., and Mourad, N. (2022). "Analyzing the Efficiency of Working Capital Management: A New Approach Based on DEA-Malmquist Technology", Operations Research Forum, Vol. 3 No. 3, 1–20.*
13. *Maheshwari. (2017). "Impact of Working Capital Management on Liquidity, Profitability, and Risk: A Case Study of Hindustan Petroleum Corporation Limited", International Journal of Trade & Commerce-IIARTC, Vol. 6 No.1, 282–300.*
14. *Singh, M. (2005), Working Capital Management in Public Enterprises in India – A Case Study, thesis, Jaunpur.*
15. *Morshed, A. (2020). "Role of working capital management in profitability considering the connection between accounting and finance", Asian Journal of Accounting Research, Vol. 5 No. 2, 257– 267.*
16. *Naik, J.M. (1990), Management of Working Capital in Sugar Industry, thesis, Surat.*
17. *Ojha, P. R. (2019). "Working Capital Management and Its Impact on the Profitability of Pukar International Co. Ltd.", NCC Journal, Vol. 4 No. 1, 141–147.*
18. *Pasupati, N. (2012). "Operational Adequacy of Working Capital Management of Selected Indian Automobile Industry-A Bivariate Discriminant Analysis", Indira Management Review, 28–45.*
19. *Shajar, S. N., and Farooqi, S. A. (2016). "Impact of Working Capital Management on the Profitability of Automobile Industry in India Empirical Study of Selected Automobile Companies", Pacific Business Review International, Vol. 1 No. 1, 197–203.*
20. *Sivaranjani, R., and Kishori, B. (2016). "A Study on Comparative Analysis of Working Capital Management", International Journal of Innovative Research in Technology, Vol. 2 No. 11, 49– 57.*
21. *Sharma, S. (2022). "An Analytical Study of Financial Performance Using Ratio Analysis of Public Sector Enterprise with Special Reference to "SAIL" Post Covid 19", Journal of Pharmaceutical Negative Results, Vol. 13 No.9, 98–108.*
22. *Shekhar, S., and Jena, N. (2020). "The Impact of Liquidity Management on Profitability of Steel Authority of India Limited (SAIL): An Empirical Assessment", Solid State Technology, Vol. 63 No.6, 23118–23133.*

Spatial Identity and Ageing in Goa: Reconstructing the Social Space in Long-Term Care Homes

Rakshanda Ramesh Mayekar[1], Arvind N. Haldankar [2]

Abstract

This paper investigates the sociological importance of spatial environments in Long-Term Care Homes (LTCHs) with a focus on the interplay between the space of living and the space of attachment. It examines how spatial arrangements affect older adults' autonomy, dignity, identity, and emotional well-being, drawing on contemporary literature, sociological and gerontological frameworks, and empirical insights from Goa, India. Thematic analysis of the interview data revealed that while many residents gradually adjust to the new institutional environment and form new attachments, they often continue to yearn for their former homes and the meaningful spaces and relationships associated with them.

Keywords : Social Spaces; Long-Term Care Homes; Older Adults; Autonomy; Attachments

Introduction

Population ageing and changing family structures in India have led to a growing number of older adults living in institutional care settings. The move from one's lifelong home into a Long-Term Care Home represents not just a change of residence but also a profound shift in space. Henri Lefebvre's (1991) theory of space provides a valuable starting point for understanding this shift. Lefebvre distinguishes between physical space (perceived space), mental space (conceived space), and lived space (experienced space). Physical space refers to the concrete, real-world environment; mental space is an imagined or conceptualised space; and lived space embodies the meanings, symbols, and emotional associations people attach to physical environments (Makinde & Lanrewaju, 2024).

In the context of Long-Term Care Homes (LTCHs), this three-fold model helps explain how older people: 1) perceive the institutional environment, 2) conceive of it in relation to their life story, and 3) live in it with social and symbolic meaning. In sociological terms, space is not just a neutral backdrop for human activity but a multidimensional construct that shapes and is shaped by social interaction, well-being, and identity. Space has physical, social, and symbolic dimensions deeply interwoven with the quality of life (Lefebvre, 1991; Giddens, 1984). For older adults, especially those transitioning from private homes to LTCHs, space plays a pivotal role beyond mere shelter. The physical environment of an LTCH, like its building design, layout, privacy arrangements, lighting,

and security, can profoundly affect residents' mobility, independence, and sense of autonomy. Equally important are the social aspects of space: communal areas and opportunities for interaction can alleviate loneliness or, if poorly designed, exacerbate isolation.

The symbolic meaning of space is the sense of home or personal significance an environment holds can sustain or diminish an older person's identity and dignity. The concept of environmental gerontology explicitly studies the relationship between ageing and the environment (Rowles & Bernard, 2013). It posits that the well-being of older adults is influenced by the fit between individuals' abilities and their living environment, encompassing ideas of place attachment, autonomy, and environmental press.

Prior research indicates that well-designed physical environments can support older adults' independence and safety. Features such as accessible pathways, ramps and handrails, appropriate lighting, and comfortable seating have been found to reduce fall risks and enhance mobility, thereby promoting a sense of security and dignity among residents (Oswald et al., 2007; Sixsmith & Sixsmith, 2008). For example, providing handrails in hallways or non-slip flooring in bathrooms empowers residents to move around confidently, allowing them to perform daily tasks with less fear of injury. Such design elements give older adults greater control and autonomy in their daily lives. Beyond physical safety, the social environment of a care home is crucial for addressing emotional needs. Communal spaces like gardens, lounges, and dining halls are not merely architectural features; they serve as social arenas that can encourage or inhibit interaction. Research indicates that thoughtfully planned social spaces can help combat the isolation and loneliness common among older adults by facilitating connection and community participation (Cattan et al., 2005). For instance, a common lounge area with inviting seating can encourage residents to converse or engage in group activities, fostering friendships. Participation in social activities in these spaces has been linked to better emotional health and a stronger sense of belonging. Victor et al. (2000) found that communal environments that facilitate social engagement contribute to emotional well-being by integrating residents into a supportive community.

On the other hand, if an LTCH's layout lacks welcoming common areas or schedules few social activities, residents may feel isolated or left out, which can negatively impact their mental health. Equally significant is the symbolic dimension of space. Spaces carry meanings derived from personal and cultural histories. In later life, familiar environments often become repositories of cherished memories and part of one's identity. In an institutional setting, enabling older people to personalise their space with photos, memorabilia, or culturally significant items can help maintain continuity with their past and affirm their identity (Peace et al., 2006; Rowles & Bernard, 2013). A private room or a personal corner decorated with one's own furniture, family photographs, or religious symbols transforms an impersonal facility into one's own place. This personalisation imbues the space with symbolic significance, meaning, it becomes a space of attachment that reflects the resident's life story and values, thereby promoting psychological comfort and well-being. Space in an LTCH is multidimensional: the physical layout must ensure safety and accessibility; the social spaces should encourage interaction and community; and the symbolic aspect should allow residents to feel "at home" and connected to their

identity. All these dimensions are interrelated and central to residents' daily experiences. If well-designed and managed, the care home environment can sustain autonomy, facilitate social integration, and preserve dignity (Peace et al., 2006). If neglected, space can become a source of disempowerment or alienation. Therefore this study is important to understand the social space of older adults in reference to Goan Old age homes.

Materials and Methods

This paper investigates the social space of living and attachment in the long-term care homes of Goa. This research adopted a qualitative design to gain an understanding of the lived experiences of older women residing in Long-Term Care Homes in Goa. A case study method was utilised, focusing on two distinct care settings operated by the government and privately managed. A total of six women, aged between 64 and 98 years, were selected through purposive sampling. To maintain confidentiality, all names in the study are pseudonyms, and any potentially identifying information has been modified or generalised. The government-run institution is referred to as Ashraya Home, and the private institution is referred to as Sunshine Home. Each interview lasted approximately an hour and was conducted either in Konkani or English, depending on the participant's preference. In reporting the findings, identifiers were omitted, and anonymised pseudonyms were used to ensure participant anonymity. The data were analysed thematically following Braun and Clarke's (2006) approach. Three central themes were identified, highlighting core aspects of how residents perceived their living environment and sense of belonging. Each theme included a comparative perspective between the two homes to offer a richer understanding of institutional care experiences.

Results

1. Adjusting to Institutional Life vs. Longing for Home

All participants described an initial period of adjustment upon moving into the Long-Term Care Home, often coupled with intense feelings of homesickness or loss. This theme captures the push-and-pull between trying to settle into the space of living (the care home) and the persistent emotional pull of the space of attachment (their previous home or community).

Most participants recalled their early days in the LTCH as challenging. "The first few weeks, I cried quietly every night," said the Resident, Sunshine Home. She had left her ancestral house in a village when her health deteriorated, and her children, who live abroad, found this facility for her. Despite acknowledging that the staff were kind and the place comfortable, she said, "I kept thinking of my kitchen at home, my bedroom where I spent my life, the neighbours who used to drop in. Here, everything was new, and I felt like a guest who did not belong." This quote illustrates the classic yearning for one's own space filled with familiar people and routines. However supportive, the care home was initially an alien environment for her, highlighting a strong attachment to her former home. Over time, all interviewees noted some degree of adjustment, though the extent varied. Participants commonly mentioned that establishing a routine in the institution helped."At first, I had a problem understanding the rules. Nevertheless, gradually, I fell into the rhythm. Now, the days have a pattern. In a way, it keeps me going. There are some benefits here – I do not worry about food or medicines. The nurse gives me medicines on

time."- Inmate of Ashraya Home. A 74-year-old resident of Sunshine Home, who had been there for 3 years, said: "Of course, I wish I were in my own house, but I tell myself that at least here I am not alone and helpless because of my paralysis. This statement indicates a begrudging acceptance that transformed into reliance. The institutional life provided structure that, while very different from the freedom of his past home, became a new normal for her. she still missed being able to "get a cup of tea whenever I want" or "walk to the marketplace," but she acknowledged that there are some benefits to stay in LTCHs. On the other hand, the longing for home never entirely disappeared for most residents. This longing was often triggered by memories or events. Festivals were particularly challenging, as they brought personal traditions into sharp relief against the collective atmosphere of the care home. One woman described how festivals were particularly emotional times: "During Christmas, I used to prepare food in my home, and my grandchildren would come. Here, they cook food, but it is not the same. I just sat and remembered my house all day."- Resident, Sunshine Home. While the institution attempted to celebrate the festival, it could not replicate the atmosphere of her home, where her family and personal traditions made the occasion special. Such moments could even set back someone's adjustment progress, resurfacing feelings of grief for the life left behind. For some, adjustment was a matter of reframing their experience."Home is home, but this is where I live now. I joined prayer meetings and chatted with the other ladies." 74-year-old resident, Sunshine Home. Her outlook reflects a coping strategy: by engaging in the community and focusing on the positives (company and care), she mitigates the ache for home. It suggests a cognitive reframing – she distinguishes between the irreplaceability of her original home ("home is home") and the need to emotionally invest in her current setting ("this is where I live now"). Yet there is hope to go home. This delicate balance is at the heart of adjusting: finding room in one's heart for a new attachment while not negating the old. However, not all residents embraced this reframing."If my son's situation improves, I will leave this place tomorrow. I pray for that day." This resident's story highlights that not all residents come to terms with institutional life; some maintain a hopeful expectation of return, which keeps them emotionally distant from their current environment. It's a form of attachment refusal – by not accepting the place. Her Emotional distance from the institution was further symbolised by a chain she wore: "I keep this to remember that I have a home waiting." Another respondent communicates with her family, so she does not feel distanced. "When I miss my children, I do video calls, and they show me grandchildren, the house, and the new things they buy." Across these accounts, it is evident that the psychological transition lags behind the physical transition. Even after their bodies have moved into the care home, their hearts and minds take time to catch up – if they ever fully do. They want to be with family, see their grandchildren, and be in their homes where they spent their long lives. Staff support and peer support were mentioned as factors that eased adjustment. Adjustment to a new place is a process, not a one-time event. It involves navigating grief and nostalgia, gradually building new habits, and sometimes finding unexpected comforts in the new environment. Yet, almost all participants retained an enduring attachment to their past homes and lives. The space of attachment (their previous home) continues to exert an emotional pull, even as they learn to live in the space of living (the care home).

2. Personal Space, Privacy, and Autonomy

This theme explores the residents' experiences with personal space and privacy within the communal living setting of the care homes, and how these experiences relate to their sense of autonomy and self. The degree of privacy available and the control residents have over their immediate surroundings emerged as a significant determinant of their comfort and contentment. In the privately run Sunshine Home, residents generally had more personal space. Two of the interviewees there had their own small room or a partitioned area. They described these private spaces as sanctuaries.

"This little room is mine. I keep it how I like. When I shut the door, I feel I am in my own world." Another respondent said: "At least I did not end up in a hall with many beds. I have my own small place here." The ability to exert control – deciding when to have the door open or closed, arranging her belongings as she wished – contributed to her sense of dignity. It's clear that her personal space functioned as a microcosm of home, giving her autonomy over physical territory. She had decorated her modest room with family photographs, her own calendar, and personal belongings an act of reclaiming identity within a new space. In contrast, Ashraya Home presented a shared dormitory setup, reducing privacy and amplifying vulnerability. "Here, you can't even sneeze without everyone knowing… Sometimes I just want to be alone, but it is not possible." To cope, residents developed creative strategies for solitude. "That is my private time – when all are asleep, I walk outside behind the home." This strategy shows agency, but it also underlines that the environment did not inherently provide space for solitude; she had to carve it out creatively. The lack of personal space in such settings can make residents feel that their individuality is being subsumed into the institution. Autonomy in daily routines further enhanced well-being. In Sunshine Home, residents could exercise choice in small but meaningful ways. "I feel like an adult, not a child… If I want to lie down after lunch, I do. If I want to skip the group exercise, I tell them."

In Ashraya Home, the picture was mixed. Resources were scarcer, so routine tended to be uniform for efficiency. Yet, the staff did try to grant small autonomy when possible. The staff does not force them to sit together; they allow them to spread out in the home for their meals, while in Sunshine's home, for meals, everyone has to sit outside the room so that no food is thrown on the bed. The staff of Ashraya Home allowed this deviation from the norm, and it was clearly meaningful to the inmates. Even though the space is limited, they do not restrict it. This instance shows that even within institutional constraints, allowing residents some personal routines or spaces can significantly impact their well-being. "We can eat inside or in the veranda, that is good. No one forces us." Inmate of Ashraya Home. Concerns about safety and shared space were more pronounced in the initial weeks. "I have never been around so many strangers in my room. It took time to feel safe." Personal belongings emerged as symbols of self and continuity. Over time, trust can develop among co-residents and staff, mitigating fear, but initial anxiety is understandable. Personal belongings emerged as a sub-theme: having one's own things was tied to personal space. Those who had a private or semi-private area had more room to display and keep belongings. In Sunshine Home, residents had cupboards and decorated nightstands. A resident in Ashraya pointed to a locked box under her bed where she kept her belongings. "Those things are my whole life. I keep them locked." - Resident, Ashraya

Home (referring to a box under her bed). Privacy is also extended to visits from family. Another aspect is the privacy of visitors coming to meet the inmates. Ashraya Home did not have a dedicated visiting area, so visits often happened in the common hall or outside on benches. This lack of a private family visiting space made some residents feel embarrassed or frustrated. It affected how connected they remained to family.

Ashraya's lack of a private meeting area was a cause of discomfort. Which can be seen from

Inmates who said, "They come to meet in the common hall. It is not the same as talking in your room." This indicates that spatial arrangements can even influence external relationships and the maintenance of those attachments. The private home had a big meeting room often used for praying and watching TV, which was also used for visitors or allowed visits in the residents' own room, which residents found much more agreeable for maintaining family bonds. In terms of autonomy beyond physical space, daily choices like meal options or activities were limited in both homes. While not directly "space," these factors contribute to a sense of personal autonomy within the space. In Ashraya, outings were rarer due to staffing and mobility issues of residents, so many felt "stuck inside," which can diminish one's feeling of autonomy over the environment; one cannot change the scenery or take a break from the institutional space.

3. Community and Social Bonds in the Long-Term Care Home

The final theme highlights the role of social relationships and community within the care homes, examining how connections with fellow residents and staff can become a new source of attachment and emotional support, or conversely, how social difficulties can hinder one's well-being in the institutional space. One of the most significant findings is that many residents gradually develop a "second family" dynamic in the care home. Living together and sharing daily experiences led to genuine bonds of friendship and kinship-like feelings. "We are like a small family here. If someone is sick, we all worry and check on them. We celebrate each other's birthdays. I never expected to find new friends at this age, but here we are. We share our family story, and we all know about each other's reasons for coming into this home"

This solidarity clearly added an element of space of attachment to the long-term care home– the social environment became emotionally significant. In Ashraya Home, communal routines such as shared dining and gardening contributed to the development of friendships. "The backyard was where we picked up tamarinds together, just like in our village." Residents often used familial terms for one another, indicating emotional closeness. "Mai, bai... we use these words like in a real family." These routines and interactions imbued the environment with a sense of community. Of course, not everyone found it easy to socialise. Some new residents or naturally introverted individuals struggled. Most people here like to talk about their village or family gossip. The relationship with staff also plays a role in feeling attached or content. Several participants expressed gratitude and affection for particular caregivers. Positive staff interactions, where the caregiver goes beyond perfunctory duties to show personal regard, significantly improved the residents' emotional state. They felt seen as individuals. Positive interactions with staff played a crucial role in emotional adjustment. "Some staff joke with me or listen to my stories.

That makes a big difference." These human connections transformed the institutional space into something more emotionally resonant: a space of attachment. When social needs are unmet, due to personal barriers or environmental factors, the institution can feel isolated despite the many people around. The findings here emphasise that fostering a healthy social environment (through activities, conducive spaces for interaction, conflict resolution, and bridging to the outside community) is as important as providing food and shelter. For many, these bonds were what ultimately made life in the care home not only bearable but sometimes even joyful, turning peers and staff into a surrogate family that gave new meaning to their days.

Discussion

The findings of this study highlight the intricate relationship between the space of living, that is, the physical and social setting of the care home, and the space of attachment, referring to the emotionally significant places and bonds that older adults carry with them. Analysing these results through sociological and gerontological lenses, as outlined in the literature review, helps us understand how they resonate with and extend existing knowledge.

The participants' ongoing yearning for their former homes reflects the concept of place attachment, as discussed by Altman and Low (1992). Older individuals often form deep emotional ties with their home environments, which come to represent memories, identity, and comfort. When participants reminisced emotionally about their kitchens or prayer rooms spaces in which they had spent much of their adult lives it exemplified Rowles' (1983) notion of autobiographical insideness, where home serves as a repository of life experiences and personal history. Thus, even when physically relocated, the emotional pull of the former home persists. This dual awareness being physically situated in the care facility while mentally dwelling in the past home reflects what some geographers term a dual residency of the heart.

A central question, raised both in literature and in our findings, is whether the new residence can eventually become a space of attachment. Environmental Gerontology (Rowles & Bernard, 2013) posits that attachment to new spaces is possible when the environment fosters continuity. Participants who decorated their rooms, maintained religious routines, or built new social connections were seen to form attachments to the care home. Referring to the care home as "home" indicated this shift, likely facilitated by the development of a supportive, community-like atmosphere. This supports Peace et al. (2006), who argue that identity and belonging can be cultivated in institutional settings through sensitive design and management.

The findings affirm that attachment is not fixed but can evolve in response to context and support. Gieryn (2000) argued that place is central to identity; this study suggests that identity can, under the right conditions, adapt and expand to new settings. Themes of autonomy and personal space are also key, closely linked to dignity and personhood within institutional settings. Cohen-Mansfield and Werner (1999) warned that institutionalisation can lead to loss of autonomy and depersonalisation. Instances where female residents had to undergo counselling from a male therapist despite their discomfort point to threats to dignity and adult identity. These experiences align with findings by Shoemark et al. (2022),

which show how dignity can be compromised when autonomy is overlooked in elder care. Conversely, residents who had access to private spaces reported feeling more in control, which ties in with Foucault's (1977) observations on space as a mechanism of power: when residents exercise control over their environment, institutional power structures are somewhat neutralised.

Residents adapted in various ways, such as creating quiet moments for themselves or personalising parts of their room. These behaviours align with Lawton's environmental press theory, wherein individuals respond to environmental demands based on their competencies. A home that offered privacy naturally reduced environmental pressure, making adaptation easier. Oswald et al. (2007) emphasised the importance of person–environment fit, and in our study, this was more evident in the privately run Sunshine Home than in Ashraya, the government facility, where adjustments were more challenging. The role of social bonds within care homes emerged as a key factor in well-being. The work of Cattan et al. (2005) and Victor et al. (2000) affirms that social connections are essential to reducing loneliness. This study provides concrete examples when residents formed friendships and shared communal ties, the care home transitioned from a mere institution into a space of belonging. This supports Giddens' (1984) understanding of locale as a setting for interaction and meaning-making. Similarly, Goffman's (1961) work on total institutions suggests that residents often create their own social systems. While Goffman portrayed this as leading to identity loss, our findings offer a more balanced view, residents were able to reconstruct elements of an everyday social life, particularly in the private home, which felt less like an institution.

Comparing the government and private homes reveals structural differences. The private home, with better resources and staffing, enabled more individualised care, which resonates with the principles of person-centred care (Keady et al., 2012). Though residents in the private home reported weaker attachment to the facility itself, they expressed greater comfort and control. In contrast, the government home had residents with strong place attachment but faced greater institutional constraints. This reflects broader challenges identified in Indian elder care literature, such as underfunding and inadequate staff training (Shoemark et al., 2022). These findings carry policy implications, improvements in infrastructure and human resources in government homes could help bridge the gap.

The cultural context of India further complicates the experience of institutional care. The importance of rituals and family connections in our findings aligns with broader South Asian gerontology. Maintaining religious practices within the care homes, for instance, echoes Chakraborty's (2022) argument that rituals reaffirm identity and aid coping. Lefebvre's concept of lived space also applies here, residents reimagine and reinvest institutional spaces with cultural and personal meaning. While the joint family ideal may no longer be the norm, its symbolic presence shapes expectations. Many participants never envisioned living in a care home, perceiving it as a sign of familial neglect. This social stigma heightened feelings of guilt and shame, highlighting the need for psychosocial support to help residents reframe institutionalisation as a proactive and dignified choice.

The concept of ageing in place traditionally implies growing old in one's own home. However, none of the participants had that option. Instead, the care home had to function as a surrogate, replicating familiar routines and fostering continuity. Elements of this were visible: personalisation, routine, and social connections allowed some residents to gradually develop a feeling of being at home in the new setting. This reflects Sixsmith & Sixsmith's (2008) emphasis on the subjective experience of home, even when the location has changed. Dignity and human rights also underpin the findings. Empowering practices and respectful treatment reinforced a sense of dignity among residents. This resonates with the WHO's (2015) framework, which underscores autonomy and respect as key elements in elder care. It follows that, beyond physical infrastructure, training staff in person-centred communication and treating residents as individuals with rich life histories is essential. Such an approach encourages micro-level improvements in everyday care interactions. Continuity Theory (Atchley) is also relevant, suggesting that older adults seek consistency in psychological traits and social behaviours. Participants who were able to maintain familiar routines, such as prayer or craft adjusted more easily. In contrast, those unable to do so, particularly bedridden individuals, expressed a loss of self. This reinforces the importance of enabling continuity as a strategy for smoother transitions. Similarly, identity theory reminds us that institutional settings must support diverse identities rather than impose a singular "elder" role. The opportunity to adopt multiple roles and partake in meaningful activities reflected an environment conducive to identity preservation and even renewal.

Conclusion

Some residents redirected their attachment needs from absent family members to fellow residents and caregivers. In the Goan context, this underlines the need for culturally adapted care models. Western institutional models may not adequately reflect Goan or Indian elders' preferences. For instance, communal cooking or culturally specific celebrations may play a bigger role in fostering well-being. Some participants missed the taste and smell of home-cooked meals, suggesting policy changes like allowing resident participation in meal preparation or involving families more closely in care events could improve the environment. Living somewhere is a physical reality; feeling "at home" is an emotional state built on familiarity, freedom, and meaningful connections. Bridging the gap between the space of living and the space of attachment will be key to ensuring that senior citizens do not just survive in long-term care homes but truly live and belong there in the later years of their lives.

Sociology Programme
D.D. Kosambi School of Social Sciences and Behavioural Studies
Goa University
[1]raksha17mayekar@gmail.com
[2]arvindhaldankar@unigoa.ac.in

References

1. *Altman, I., & Low, S. M. (1992). Place Attachment. Plenum Press.*
2. *Cattan, M., White, M., Bond, J., & Learmouth, A. (2005). Preventing social isolation and Loneliness among older people: a systematic review of health promotion interventions. Ageing and Society, 25(1), 41–67.*
3. *Braun, V., & Clarke, V. (2006). Using thematic analysis in research. Qualitative Research in Psychology, 3(2), 77101.*
4. *Chakraborty, A. (2022). Rituals and Reminiscence in Indian Elderly Homes. Indian Journal of Gerontology, 36(2), 107–121.*
5. *Cohen-Mansfield, J., & Werner, P. (1999). Stigma and placement in institutional care. International Psychogeriatrics, 11(3), 287–298.*
6. *Foucault, M. (1977). Discipline and Punish: The Birth of the Prison. Vintage Books.*
7. *Gieryn, T. F. (2000). A space for place in sociology. Annual Review of Sociology, 26, 463–496.*
8. *Giddens, A. (1984). The Constitution of Society: Outline of the Theory of Structuration. Polity Press.*
9. *Keady, J., Campbell, S., Barnes, H., & Ward, R. (2012). Re-thinking dementia care: Personhood and space. Dementia, 11(3), 343–359.*
10. *Lefebvre, H. (1991). The Production of Space. Blackwell.*
11. *Makinde, O. O., & Lanrewaju, A. F. (2024). Henri Lefebvre's theory of space and social production philosophy: A critical interpretation. Global Journal of Arts, Humanity and Social Sciences, 4(1), 67–80.*
12. *Oswald, F., Wahl, H.-W., Schilling, O., Nygren, C., Fänge, A., Sixsmith, A., et al. (2007). Relationships between housing and healthy aging. The Gerontologist, 47(1), 96–107.*
13. *Peace, S., Kellaher, L., & Holland, C. (2006). Environment and Identity in Later Life. Open University Press.*
14. *Rowles, G. D. (1983). Place and personal identity in old age. Journal of Environmental Psychology, 3, 299–313.*
15. *Rowles, G. D., & Bernard, M. (Eds.). (2013). Environmental Gerontology: Making Meaningful Places in Old Age. Springer.*
16. *Shoemark, E. Z., Maruthakutti, R., Chaudhary, A., & Maddock, C. (2022). Dignity and the provision of care and support in 'old age homes' in Tamil Nadu, India: a qualitative study. BMC Geriatrics, 22, 577.*
17. *Sixsmith, A., & Sixsmith, J. (2008). Ageing in place in the United Kingdom. Ageing International, 32(3), 219–235.*
18. *Victor, C. R., Scambler, S. J., Bond, J., & Bowling, A. (2000). Being alone in later life: loneliness, social isolation and living alone. Reviews in Clinical Gerontology, 10(4), 407– 417.*
19. *World Health Organization (WHO). (2015). World Report on Ageing and Health.*

Impact of Examination stress on students' academic achievement: A Comparative Analysis

Jyoti Sengar

Abstract

Students today in an emerging country like India are coping with severe mental health issues that bargain their academic and career performance. As a result, students are dealing with a number of concerns, including anxiety about their declining social stratification, social disorders, emotional instability, and suicide thoughts. This research aims to scrutinize the bond between examination stress & academic achievement on students' studying in higher education institutes. Through standardized questionnaire data has been collected. A sample of 70 students was used in the investigation. Examination stress scale developed by Dr. Poorva Jain & Nisha Vyas (2016) used as a tool. Our findings reveal that girl students experience significantly higher levels of examination stress compared to their boy counterparts. Study also investigated the disparity in examination stress levels between science and arts students & findings reveal a significant difference, with science students experiencing higher levels of examination stress compared to their arts counterparts.

Keywords : Anxiety, Examination stress, Mental health, Academic achievement, Emotional instability.

Introduction

Examinations play a crucial role in any educational organization; it considered as a prime tool to measure students' apprehension and potential across different subjects. However, in spite of their intended objective of assessing academic progress, exams often become a major source of stress for learners. The enormous pressure to perform well, fear of failure, and anxiety over possible outcome contribute significant feeling of students stressed and upset nature. Around the world, educators and institutions are progressively alarmed by the toll that exam-related stress takes on students' mental welfare. This stress can explicit in various ways, including sensible signs, anxiety disorders, depression, and sleeplessness. If not convey, it can sorely affect a student's emotional health, academic achievements, and overall subjective well-being. It is very important for teachers, decision-makers, and healthcare providers to understand how complex and harmful exam stress can be. If we clearly understand how badly exam stress can affect a student's mental and emotional health, then we can take early steps to help. This understanding makes it easier to plan ways

to reduce the stress before it gets too serious. These early actions, like giving emotional support, reducing pressure, and creating a friendly learning environment, can really help students feel better and do well. Such efforts are requisite in cultivating a benevolent and empathetic academic atmosphere favourable to the comprehensive development of learners. Good mental health is the basic foundation needed for a person to take part in any activity and give their best effort. Without a healthy mind, it becomes difficult to focus, stay motivated, or handle challenges, which affects how well someone can work, learn, or interact with others. However, mental strength and good fortune are subject to considerable alternative form, influenced by individual circumstances and the social surroundings. In a developing nation such as India, now days students are dealing with serious mental health problems that negatively affect both their academic and professional performance. Students' mental health is impacted by a variety of factors, including social media use, career stress, family, friends, and peer groups. Negative effects like sadness, tension, worry, exhaustion, etc., could result from this. As a result, students are dealing with a number of issues, including anxiety about their declining social standing, social disorders, emotional instability, and suicide thoughts.

Background information

Exam stress is the term used to describe the emotional and physical reactions students have both before and during an exam. It's a frequent occurrence, especially for students taking high-stakes exams like entrance exams for college, summative exams, or standardized tests. In the past, students' uneasiness rose as educational institutions became more ruthless and test-focused, placing more emphasis on scholarly achievement. Exam stress is commonly accepted as a big problem that affects not only students' overall mental health but also their academic performance. It can make students feel worried, tired, and unable to concentrate, which can harm both their well-being and their success in studies. Stress often gets worse because of things like comparing yourself to friends, not being fully prepared, pressure from parents, and worrying about what others will think. According to educational psychology studies, tolerable stress can improve performance by raising interest and awareness. But too much stress can have harmful effects including worry, insomnia, poor focus, low self-esteem, and even generic symptoms like headaches and nausea. In extreme situations, exam stress can exacerbate mental health conditions like burnout or depression. To lessen this stress, educators and psychologists have pushed for more comprehensive methods of instruction and evaluation in recent years. To help students effectively manage test stress, coping mechanisms like time management, mindfulness, counselling, peer support, and exam innovations (such continuous evaluation) have been suggested. Exam stress can result from a number of things, such as:

i. Fear of failure- Students may be concerned about falling short of their own or others' standards in their academic performance.

ii. Perform- Stress can be caused by having high expectations of oneself as well as those of one's parents, instructors, and classmates.

iii. Time constraints- It can be difficult and unpleasant to juggle study time with other obligations.

iv. Perceived importance- In every field we may come across the process of examination

so that stress levels may increase due to the important of exams in determining future possibilities.

v. Lack of preparation- Due to insufficient preparation, feelings of inadequacy can lead to heightened stress.

Impact of Exam Stress

It is often seen that when an important exam is about to come, students experience stress. This stress can reduce their confidence. When the stress increases, problems like insomnia, lack of interest in studies and unnecessary anxiety can occur, due to which students may perform poorly in the exam and their health may also be affected. Students fear that they will not be able to perform well in the exam and will fail. Such thoughts also affect their emotional health, as a result of which it becomes difficult to concentrate on anything. If stress is not controlled, students may face problems like headache, fatigue. If this stress increases day by day, it can affect the memory and cognitive activities of students. If the cognitive activities of a student are affected, then despite good preparation, he may perform poorly in the exam. Therefore, it can be said that educational success depends on the identification and control of exam stress.

- Physiological Symptoms: If body reveal some physical indications like headaches, fatigue, tense muscles, wakefulness, peptic issues, and appetite swings, it can be the symptoms of exam stress.
- Psychological Impact: Exam stress can cause students to feel a variety of emotions, such as anxiety, restlessness, irritation, melancholy, frustration, and self-doubt.
- Neuropsychological Effects: Stress can obstruct mental processes including centre of attention, memory, and problem-solving skills, all of which are essential for doing well on tests.
- Behavioural Shifts: Some students may show changes in their behavior if they are suffering from stress. They might start using unhealthy ways to cope, like drinking or smoking, avoid doing their schoolwork, feel unwilling to participate, and stay away from friends or social activities.
- Long-Term Effects on Mental Health: If stress can be prolonged it also damage their self-confidence, making them doubt on their abilities. When students face exam stress for a long time or at very high levels, it can lead to serious mental health problems such as anxiety disorders and depression. These conditions make it hard for students to feel calm or happy and can affect their daily life. This loss of confidence, along with feeling overwhelmed, can reduce their interest and motivation to study or achieve their goals. If not addressed, these mental health issues may get worse over time, affecting both their academic performance and overall well-being.

Literature review

Kristina Callaghan et al., (2025) This study looks at how well two-stage final exams work. These exams have two parts: one where students work alone and another where they work together in groups. Callaghan and others highlight that this exam style not only helps thinking skills but also improves how students feel emotionally. This kind of exam can help lessen

that negative impact and boost students' success. So, understanding and using such exam formats is important when studying how exam stress affects students' academic achievement. Feruza Asqarova, (2024) This study looks at how anxiety and stress affect the brain's ability to focus and remember things, which can lower students' academic performance. When students are stressed, it's harder for them to concentrate and recall what they've learned. The study also talks about helpful ways to cope with stress, like cognitive-behavioral therapy (CBT)—which helps change negative thinking—and mindfulness, which means staying calm and focused in the present moment. These methods can help students manage stress better and improve their learning.

Subhalakshmi S et al., (2024) This study looks at how common anxiety is among first-year medical students. It finds that many of them experience high levels of stress, which harms their academic performance. The stress also affects their thinking abilities, like focusing, remembering, and problem-solving, making it harder for them to learn and do well in exams. It also shows how stress affects important thinking skills like memory and focus, which are essential for academic success. So, this study helps explain how and why exam stress lowers students' academic achievement.

Mandeep Kaur and Jeenat Rani, (2024) The study looks at how academic stress affects teenagers' performance. It finds that fear of failing, low self-confidence, and not having enough study materials are major reasons for stress that can lower their academic results. These stress factors directly affect academic achievement, proving that exam stress has a harmful impact on students' success.

Roopali Sharma, (2024) explains the impact of exam stress on cognitive processes such as memory and learning. It highlights how stress can affect the processes of encoding, consolidation, and retrieval, which can have a detrimental effect on academic achievement.

Rashmi Mishra, (2023) examines the sources of academic stress, including high expectations, workload, and test anxiety, as well as how these factors affect students' mental health and academic performance. Interventions like time management and counselling are also covered.

Eleonora Sadykova, et al., (2023) gave an empirical study demonstrates that students' academic performance and psychological and physical health are adversely affected by exam stress. It suggests supportive learning environments and stress management training.

Habeeb Ur Rahiman et al., (2023) examines academic stress during the COVID-19 pandemic, emphasising elevated stress levels in postgraduate courses and students from poorer socioeconomic backgrounds. highlights how crucial it is to have healthy coping mechanisms.

Firoz Ahmed et al., (2023) According to a study evaluating the effects of exam stress on medical students' blood pressure and memory, there is a substantial correlation between elevated blood pressure and memory impairment.

Nadia Youcefi et al., (2023) demonstrates how higher anxiety levels affect cognitive processes necessary for academic activities by examining the negative impact of anxiety on working memory among Algerian EFL undergraduates.

Dr. Sristidhar Bera, (2023) reveals a strong inverse relationship between exam anxiety and academic performance in upper secondary pupils, with considerable variations by student category and gender.

Daisy Rure et al., (2023) Academic stress among high school students switching from online to offline tests after COVID-19 was investigated in this retrospective study. The need for supportive interventions during such adjustments is highlighted by the study's finding of elevated stress levels throughout this transition.

Ahmad, F., et al., (2023) Observed a clear increase rate in stress level 3 days before the examination, compared to 5 months prior to the examination which in turn affected both blood pressure and memory perception. But, slow-learners were more pompous compared to fast-learners.

Mishra, L., & Biswas, S., (2022) The findings stipulate a statistically significant difference in exam stress between mentees in rural and urban areas. Additionally, the study shows that students in the arts scheme experience more exam stress than students in the science and commerce schemes. There was no noticeable difference between scientific and commerce students' exam stress levels.

Parul, (2022) The study's findings indicate that senior secondary school girls experience high-level of exam stress than boys execute. Students in the science stream experience preeminent level of stress for exam than those in the art stream. Singh, M. K., (2022) The results disclosed that there is an antipathetic interconnection between examination stress and academic achievement.

Goswami, M. (2021) The study's findings exemplify that there is a noteworthy distinction in exam stress proportion between male and female students as well as between students in rural and urban areas. Research was detected that, in contrast to students in the Science and Commerce streams, students in the Arts stream addressed far higher levels of exam stress. However, there was no distinguishable difference between the Science and Commerce stream students' levels of exam stress.

Research Gap Identified:

On the basis of the review of literature, there seems a dearth of studies based on the Indian context. Most studies assured that exam stress negatively affects academic performance through poor memory, high anxiety, or cognitive overload. However, few studies explore practical solutions or alternative exam methods (like Callaghan’s two-stage exam) in Indian educational settings. There's also a lack of comparative studies on how specific interventions or formats reduce stress among different student categories (rural vs. urban, science vs. arts, boys vs. girls). Therefore, further research is needed to test effective exam formats and stress-reduction strategies in diverse academic contexts.

All the reviewed literature is closely linked to the central theme of this study, as each source highlights different ways in which examination stress affects students' academic performance. Together, these studies build a strong foundation for exploring the negative consequences of examination stress and the importance of finding effective coping strategies.

Objectives

1. To scrutinize the bond between examination stress & academic achievement on students' studying in higher education institutes.
2. To juxtapose the examination stress level of boys' and girls' students of higher education institutes.
3. To compare the examination stress level of arts and science stream students of higher education institutes.

Hypothesis

1. There is no momentous bond between examination stress & academic achievement of students studying in higher education institutes.
2. There is no notable variation between level of examination stress among boys' and girls' students of higher education institutions.
3. There is no substantial distinctiveness between examination stress level of arts and science stream students of higher education institutes.

Methodology

The Rationale of the Study:

The goal of this study is to determine what influences students' mental health and how it relates to their exams. This study made the researcher interested in finding out the main reasons why students perform poorly in academics due to their unstable mental health. Following a thorough examination and comparative analysis, we can try to identify workable ideas and solutions to address its issues. This prompted researchers to plan a study on this specific subject.

Method

This research is based on survey responses & results are based on data not opinions so that, Quantitative research method has been used & data has been collected through standardized questionnaire. For analyzing the data Pearson's Correlation Coefficient (r) and t- test has been applied.

Sample

Through Random sampling method 70 students were used as a sample for the investigation. Of them, 35 came from science and 35 have an arts background. There were 35 females and 35 males among them.

Tools for data collection

For any study, evaluation, or assessment approach to be successful and effective, data collection tools are essential. They help gather accurate, relevant, and reliable information that is used to begin analysis and make decisions. Empiricist can reduce human biases and mistakes and take guarantee of objectivity in the data they collect by employing regulated instruments including questionnaires, interviews, observation schedules, psychological tests, and rating scales. The following standardized tool has been used to assess the impact of examination stress.

Examination stress scale developed by Dr. Poorva Jain & Nisha Vyas (2016). According to the tool there are 21 items. Respondents have been rated their levels on a five-point Likert scale. Those who scored 55 and above will come under high examination stress and those who will score below 55 will come under less examination stress.

Technique for data analysis

In this study, computable technique has been selected for data analysis due to their ability to quantify relationships, patterns, and trends within the dataset. By employing statistical methods and numerical analysis, we aim to objectively measure variables, test hypotheses, and derive generalizable conclusions. This approach allows for the rigorous examination of large datasets, enabling us to identify correlations, make predictions, and uncover underlying patterns that may not be immediately apparent. Furthermore, the use of calculable analysis facilitates the replication of findings and enhances the study's reliability and validity through systematic and structured data processing. Overall, the decision to utilize assessable techniques aligns with the study's objectives of obtaining precise, measurable insights into the phenomena under investigation.

Variables of the study

Independent Variable: The variable that the investigator manipulates or modifies is known as the independent variable. In a causal relationship, it is regarded as the cause.

Dependent Variable: The variable that is measured in order to determine the impact of the independent variable is known as the dependent variable. It is the result or outcome.

Variables	Types of Variables	Sub. Variables
Examination Stress	Independent	01
Academic achievement	Dependent	01

Data analysis

The process of gathering, collocating, analysing, and interpreting data in order to find appropriate information, make assumptions, and assistant in decision-making is known as data analysis.
For calculating Pearson's (r)

$$r = \frac{\sum(x_i - \bar{x})(y_i - \bar{y})}{\sqrt{\sum(x_i - \bar{x})^2}\sqrt{\sum(y_i - \bar{y})^2}}$$

Where:

- x_i and y_i are the individual sample values
- $\bar{x}$ is the mean of the x values
- $\bar{y}$ is the mean of the y values
- r ranges between -1 and +1

Tables & graphs

To investigate the relationship between examination stress & academic achievement on students' studying in higher education institutes.

Table 1.1

Variables	No. of students	Value of r	Type of correlation	Result (sig./ non sign.)
Examination stress & academic achievement	70	-0.1531	Negative	Not significant at 0.01 level.

Scatter Diagram 1.1

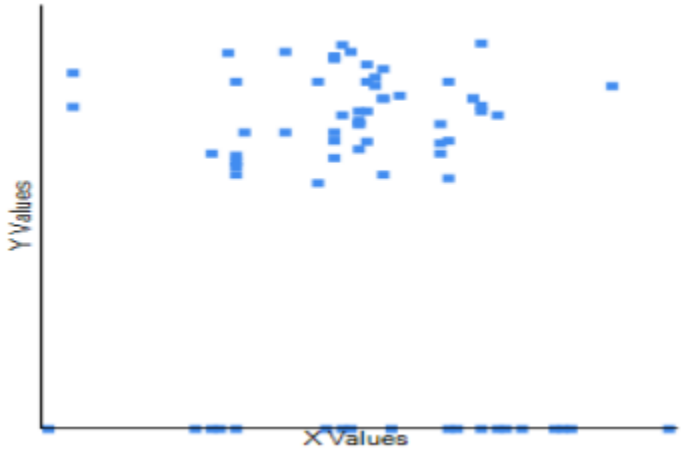


Table 1.1 shows that the value of correlation between examination stress & academic achievement is -0.1531 (after testing the level of significant of correlation), which is negative and not significance at 0.01 level of significance. This means that there is negative & non-significant relationship between examination stress & academic achievement of higher education students. It indicates that as examination stress increase or decrease amongst higher education students then their academic achievement is vice versa.

Therefore, the hypothesis, 'There is no significant relationship between examination stress and academic achievement of students of higher education institutions has been accepted at 0.01 level of significance.

To compare the examination stress level of male and female students of higher education institutes.

Mean

$$\bar{x} = \frac{\sum x_i}{n}$$

Where:

- $\bar{x}$ = sample mean
- x_i = each individual value
- n = number of values

Table 1.2

Gender	N	Mean	SD	Df	Table value	t-value	Level of significance
Male	35	55.37	12.03	68	2.639	-2.66733	Significant at 0.01 level
Female	35	64.42	16.08				

Mean of examination stress of female students is 64.42 & the mean value of examination stress of male students is 55.37. Standard deviations of values of females & males are 16.08 & 12.03 respectively.

The t-value is -2.66733. The p-value is .009548. The result is significant at $p < .01$.

Table & figure shows that in higher education institutions, there is disparity in examination stress levels between male and female students, suggesting that both genders experience different levels of stress during examinations, the p-value (0.009548) is less than the significance level (0.01) so null hypothesis i.e.- There is no significant difference between examination stress level of male and female students of higher education institutions has been rejected.

To compare the examination stress level of arts and science stream students of higher education institutes.

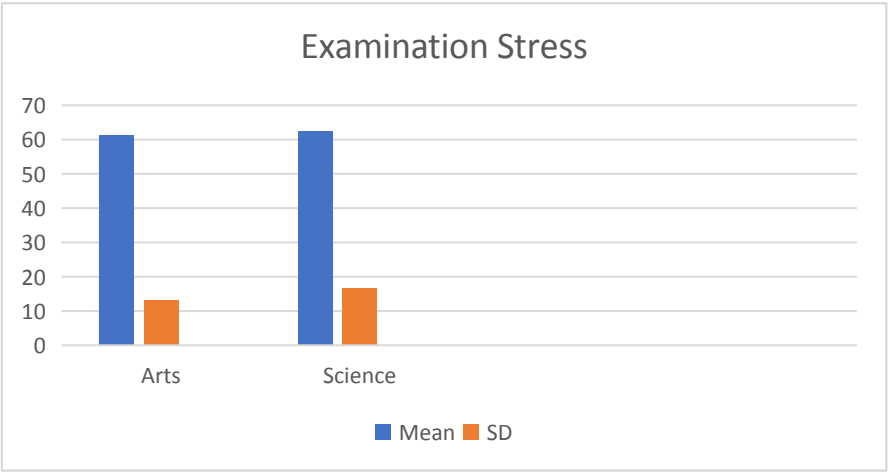
$$t = \frac{\bar{x} - \mu}{s/\sqrt{n}}$$

Where:

- $\bar{x}$ = sample mean
- μ = population mean
- s = sample standard deviation
- n = sample size

Table 1.3

Stream	N	Mean	SD	Df	Table value	t-value	Level of significance
Arts	35	61.4	13.17	68	2.639	0.31369	Not significant at 0.01 level
Science	35	6	1				



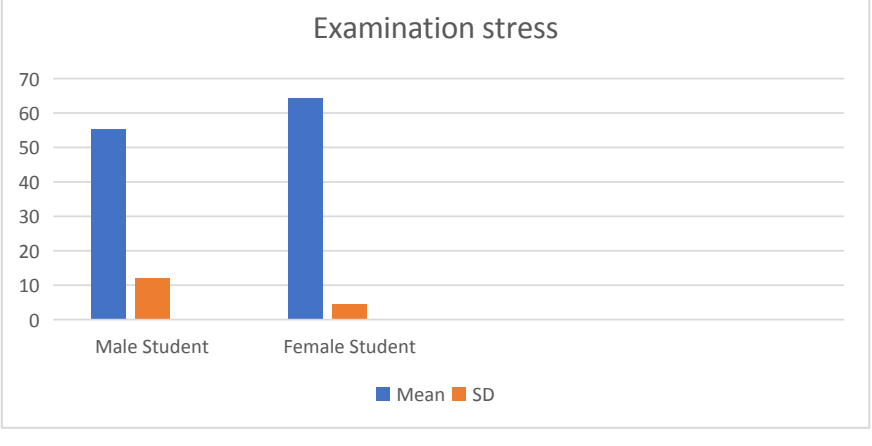
Mean of examination stress level of arts students is 61.4 & the mean value of examination stress level of science students is 62.51. Standard deviations values of arts & science students are 13.17 & 16.55 respectively.

The t-value is 0.31156. The p-value is 0.756326. The result is not significant at $p < .01$.

Table & figure shows that in higher education institutions, both streams' students experience stress during examinations, the p-value (0.756326) is greater than the significance level (0.01) so null hypothesis i.e.- There is no significant difference between examination stress level of arts and science stream students of higher education institutes has been accepted.

Results & findings

In this study, we investigated the levels of examination stress among students in higher education institutions, focusing on gender differences. Our findings reveal that female students experience significantly higher levels of examination stress compared to their male counterparts. This disparity underscores the need for targeted interventions and support systems to address the unique stressors faced by female students in academic settings. This paper also focuses on the relation between examination stress & academic achievement & finding disclose that there is no relationship between them. Study also



investigated the disparity in examination stress levels between science and arts students & findings reveal there is no significant difference, with science students experiencing higher levels of examination stress compared to their arts counterparts. This observation underscores the need for tailored support and interventions to address the unique stressors faced by science students, ultimately fostering a more conducive learning environment within higher education institutions.

Conclusion & Implementations

This study embarks to explore how examination stress impacts academic achievement in higher education. While the consequences indicate no strong association between high levels of exam stress and low academic achievement. There is significant difference between examination stress level of male and female students of higher education institutions, if we talk about on the basis of stream, there is no significant difference between examination stress level of arts and science stream students of higher education institutes, but the existence of moderate negative effects—such as anxiety, sleep disturbances, and poor time management—cannot be ignored. These findings suggest that although not all students are similarly affected, a significant number quiet struggle with stress in ways that can obstruct their academic potential.

We understand that things like how students cope, the support they get from their college, and the learning environment may have affected the results. Still, this does not change the main point: exam stress may not lower every student's grade, but it does affect their well-being and learning. This shows why it is important to have stress management and mental health support in schools and colleges. By recognizing and addressing these challenges early on, institutions can support not only academic success but also the holistic development of their students.

Even though the study had limitations like sample size and variation in academic environments, on the whole the findings highlight the need for stress to be perceived and communicated in educational settings without concluding it affects all students in the same way.

Limitations

1. Study may be conducted on a large population to increase its comprehensiveness.
2. Examination stress of rural students could have been assessed to make it a comparative one.
3. Qualitative analysis of examination stress could have proved more useful.
4. It could have been better if some remedial measures for examination stress had been found out.
5. Examination stress of government institution students could have been assessed to make it a comparative one.

Delimitations

The delimitation of this research work will be as follows-

1. Only the students of Gwalior district have been selected for the study.
2. Only the students of higher institutions of Gwalior district have been selected.
3. Only the students of private institutions of Gwalior district have been selected.

Future suggestions

Examination stress requires a collaborative approach involving students, teachers, and institutions. With proper planning, emotional support, and healthy routines, students can face exams with greater confidence and less anxiety. Here are some suggestions through which we can reduce the examination stress of the student.

1. Students can develop time management skills; create realistic study schedule.
2. Practice retrieval techniques & avoid cramming.
3. Get adequate sleep, eat balanced diet & also engaged in physical activities like muscle relaxation exercise, deep breathing & meditation.
4. Focus on self-improvement rather to competing with others.
5. Open communication with teachers & teachers also supports them & create a supportive environment.
6. Organization should conduct workshops on time management, stress relief & memory techniques.
7. Teachers should avoid clustering too many exams or short span of deadlines.

ITM University, Gwalior
jyotisengar1985@gmail.com

References

1. *Ahmad, F., & Others. (2023). Effects of examination-induced stress on memory and blood pressure. Retrieved from https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC10771144/*
2. *Bedewy, D., & Gabriel, A. (2015). Examining academic stress and its sources among university students. The International Journal of Humanities and Social Science, 5(1), 123–132.*
3. *Bisht, D., & Sudha, I. S. (2017). A study of relationship between examination stress and academic achievement among higher secondary school students in Kancheepuram district. Aarhat Multidisciplinary International Education Research Journal, 250–264.*
4. *Chauhan, S. S. (2007). Advanced educational psychology (7th ed.). New Delhi, India: Vikas Publishing House.*
5. *Cole, M., Cole, S. R., & Lightfoot, C. (2004). The development of children (5th ed.). New York, NY: Worth Publishers.*
6. *Dash, M. (2003). Educational psychology. New Delhi, India: Deep & Deep Publications.*
7. *Deb, S., Strodl, E., & Sun, J. (2015). Academic stress and mental health among adolescents: A cross-sectional study. Child and Youth Services, 37(2), 128–143. https://doi.org/10.1080/014593 5X.2015.1052193*
8. *Effect of examination stress on academic performance. (n.d.). Retrieved from https://doaj.org/ article/f8f7349382af4b3aaf85d1808b97df0c*
9. *Kalaivani, S., & Sivasankari, B. (2017). A study on examination stress and achievement of high school students studying in Cuddalore district. International Journal of Applied and Advanced Scientific Research, 2(2), 359–361.*
10. *Kalita, B. C., Tripathi, Y., Garg, R., & Chaudhary, L. (2019). Effect of examination stress on cognitive performance and EEG of medical students. International Archives of Integrated Medicine, 6(12), 15–20.*
11. *Kaplan, L. S., & Owings, W. A. (2011). Educational administration: Concepts and practices (6th ed.). Belmont, CA: Wadsworth.*

12. *Kaur, R., & Yadav, A. (2019). Influence of academic stress on academic achievement of IX standard students of Kamrup (Rural) District of Assam. Journal of Critical Reviews, 6(3), 156–166.*
13. *Kumar, L. (2021). Impact of examination anxiety on academic achievement in secondary level male students. Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language, 9(48), 11825–11833.*
14. *Kyriacou, C. (2001). Stress-busting for teachers. Cheltenham, UK: Nelson Thornes.*
15. *Lazarus, R. S., & Folkman, S. (1984). Stress, appraisal, and coping. New York, NY: Springer.*
16. *Lefrancois, G. R. (2000). Psychology for teaching (10th ed.). Belmont, CA: Wadsworth/Thomson Learning.*
17. *Mangal, S. K. (2007). Essentials of educational psychology. New Delhi, India: PHI Learning Pvt. Ltd.*
18. *Meece, J. L., & Daniels, D. H. (2008). Child and adolescent development for educators (3rd ed.). Boston, MA: McGraw-Hill.*
19. *Mishra, L., & Biswas, S. (2022). A study on examination stress among higher secondary school students in Dhanbad district of Jharkhand. International Journal of Humanities, Education, and Social Management (IJHESM), 3(2), 89–97. Retrieved from http://jcreview.com/admin/Uploads/Files/624128e8d52794.45418270.pdf*
20. *Misra, R., & McKean, M. (2000). College students' academic stress and its relation to their anxiety, time management, and leisure satisfaction. College Student Journal, 34(2), 236–245.*
21. *Mohan, K., & Devi, U. (2010). Academic stress: Coping and strategies. New Delhi, India: Discovery Publishing House.*
22. *Parul. (2022). Examination stress among senior secondary school students in relation to their gender and stream. International Journal of Multidisciplinary Educational Research (IJMER), 11(2[4]), 47–50. Retrieved from http://s3-ap-southeast-1.amazonaws.com/ijmer/pdf/volume11/volume11-issue2(4)/9.pdf*
23. *Rao, N. S. (2008). Counselling and guidance (2nd ed.). New Delhi, India: Tata McGraw-Hill.*
24. *Rehman, S. U., Javed, E., & Abiodullah, M. (2021). Effects of test anxiety on academic achievement at secondary school level in Lahore. Bulletin of Education and Research, 43(3), 67–80.*
25. *Santrock, J. W. (2011). Educational psychology (5th ed.). New York, NY: McGraw-Hill.*
26. *Sasikumar, N., & Bapith, R. (2019). Examination stress and academic achievement in English of ninth standard students in Pudukottai educational district. American Journal of Educational Research, 7(9), 654–659.*
27. *Sharma, C., & Jain, S. (2022). Impact of examination anxiety on academic performance of adolescent. International Journal of Current Research, 14(4), 21374–21377.*
28. *Singh, K., Garg, R., Jain, P., Jain, N., & Garg, N. (2021). Assessment of examination stress and its outcome on visual reaction time and hand grip dynamometer endurance in undergraduate medical students. National Journal of Physiology, Pharmacy and Pharmacology, 11(9), 960–963.*
29. *Singh, M. K. (2022). A study of the impact of examination stress on academic achievement of students of higher education. An International Journal of Educational Technology, 27–36. Retrieved from http://www.aarhat.com/amierj/wpcontent/uploads/2017/12/oct_nov_2017_25.pdf*
30. *Tuckman, B. W. (1996). Educational psychology: From theory to application (6th ed.). Fort Worth, TX: Harcourt Brace College Publishers.*
31. *Von der Embse, N., Barterian, J., & Segool, N. (2013). Test anxiety and academic performance: A meta-analysis. Psychology in the Schools, 50(3), 263–276. https://doi.org/10.1002/pits.21673*
32. *Woolfolk, A. (2013). Educational psychology (12th ed.). Boston, MA: Pearson Education.*
33. *World Health Organization. (n.d.). Stress. Retrieved March 1, 2023, from https://www.who.int/news-room/questions-and-answers/item/stress*

Global Research Trends in Psychological Well-being of Orphans: A Bibliometric Analysis Using Web of Science

Sameer Ahmad Wani[1], Dharmendra Kumar Sarraf[2]

Abstract

A large number of children at global level are orphans and the number is increasing each day. Orphanages and foster care institutions has been an endeavour to provide better life to orphans. Research has shown that many orphans are vulnerable and face various problems. Psychological well-being is considered most important aspect in anyone's life. Extensive research has been conducted in past and is still being conducted on orphans and their psychological well-being. The purpose of the present bibliometric analysis was to understand the contemporary global research trends and how the literature has evolved in the field of psychological well-being of orphans in the past two decades, i.e. 2005 to 2025. The bibliometric data was analysed quantitatively. The Web of Science database was used for literature search and 915 documents were identified for final analysis after refining the search. The results were visualized with the help of software like Biblioshiny, VOS Viewer for mapping networks and tables were exported to Microsoft Excel for recording the table details. The results revealed that the area of psychological well-being of orphans is the emerging area of research. There has been continuous rise in the publication of documents in this area and sudden increase after the year 2019. The findings also show that USA has published the most number of documents and has received the maximum number of citations and also has the highest collaboration with other countries. Frontiers in psychology is the leading journal with highest number of publications. Depression, Mental health, Orphan, Psychological well-being were the most prominent keywords in this field of research.

Keywords : Psychological Well-being, Orphans, Bibliometric Analysis, Research Trends and Web of Science

1. Introduction

The accepted definition of orphan is a child who is below the age of 18 year and has lost one parent or both. UNICEF puts the number of orphans as 152 million at global level and each day around 5700 become orphans due to war, poverty, disasters, disease and other reasons. Among these about 5.4 million children are institutionalised (Desmond, et al., 2020). Orphanages play an important role in providing shelter, care and the basic facilities to a large number of orphans around the globe (Akram et al., 2015; Groark et

al., 2005; Hayati, 2022; Wolff & Fesseha, 1998). However, orphanhood can have physical impact (Dercon et al., 2016), psychological impact (Nyamukapa et al., 2010; Yosef et al., 2023), social impact (Abejirinde et al., 2024) on orphan children. Orphans experience exploitation, discrimination, child labour, educational neglect and also face physical, psychological and sexual abuse (Frank et al., 1996; Madihie & Noah, 2013; Morantaz et al., 2013).

Considering the adversities and vicissitude orphans go through, the psychological well-being holds a paramount importance in their lives. For a long period of time research in the field of mental health was mainly focused on mental problems or psychological dysfunction. Conventionally health is defined as absence of illness instead of presence of wellness (Ryff & Singer, 1996). With the paradigm shift, positive psychologists have addressed the positive psychological functioning with extensive research and replaced the definition of well-being as mere absence of illness and also described in detail what good psychological health mean. Huppert (2009) has conceptualized psychological well-being as "lives going well". He further explains that painful emotions are part of life and sustainable well-being is the ability to cope with these emotions. However, long lasting extreme negative emotions affect the psychological well-being badly. Ryff (1989, 1996) came up with the scientifically and empirically verified multidimensional model of psychological well-being, the six components include; self-acceptance, positive relationships with others, autonomy, environmental mastery, purpose in life and personal growth. Developing these components is important for living virtuously. For orphans enhancing psychological well-being fosters a caring and nurturing atmosphere. There is need to look after the emotional needs of orphans, promoting positive relationships, personal growth and purpose in life.

One bibliometric study by Priyadarshini & Jose (2024) was found on psychological well-being of children in foster care homes. The study was conducted by using Scopus database and documents from 2003 to 2023 were analysed. The results of this study highlighted that over the time the publications in this field have shown continues rise. This study utilised Scopus database and no other study using bibliometric analysis was found on orphans. Therefore, a gap was found to carry out bibliometric analysis using another database.

The literature on psychological well-being has increased rapidly in past few decades, extensive researches are being carried out in this field. There is global focus on the well-being, which was also reflected in the sustainable development goals of United Nations, as well-being was included in one of its goals. Sustainable development goal 3 (SDG-3) Good Health and Well-being is ensuring healthy lives and promoting well-being for all at all ages by 2030 (UNO, 2015). Psychological well-being is part and parcel and important aspect of well-being. In recent past area of psychological well-being of orphans has also seen increase in the literature but this area of research is still embryonic. A significant number of research has been conducted in this area of research in western countries. In India it is a nascent research area. Limited studies have been conducted particularly using bibliometric analysis. No bibliometric analysis study using web of science database was found. This paper endeavours to fill this gap by using Biblioshiny and VOS viewer software to analyse the research on psychological well-being of orphans in past two decades utilizing web of science database. Bibliometric analysis employs

quantitative techniques and visualisation tools to analyse and map the bibliometric data. It presents better understanding of the development of area of research and also ushers the future directions of the field of research. Therefore, present study aims to analyse the bibliometric data in this particular field of research.

1.1. Research questions

RQ1: What is the growth of literature on psychological well-being of orphans in past two decades?

RQ2: What are the collaboration patterns, core journals and research clusters of psychological well-being of orphans?

2. Methodology

The quantitative analysis was conducted in present study and for visual analysis bibliometric analysis tool was used. Bibliometric analysis is a scrupulous method for exploring and analysing large amount of scientific data. It not only unearths the emerging trends and patterns in a field but also enables us to unpack the nuances of a specific field (Donthu, et al., 2021; Passas, 2024). This study employed bibliometric analysis to explore and analyse the two decades research in psychological well-being of orphans.

2.1. Data source

Web of Science was used as the primary source of data. To avoid the duplication of documents other data sources were excluded and only one database was used. Clarivate Analytics currently owns Web of Science. It is the oldest database created by Eugene Garfield in 1964, the social science citation index was started in 1973 (Singh, et al., 2021). As of now core collection of Web of Science include 22k+ peer-reviewed journals indexed cover to cover of 254 subject areas, 2.3b+ cited references and 95m+ records for journals, conference and book content (Clarivate, 2025). Web of Science offers comprehensive publication details, including name of the journal, publication year, author affiliations, document type, citations, and h-index, which help in analysis and meaningful insights.

2.2. Data collection

The identification and selection of keywords is considered important step in bibliometric analysis. The search focused on the title/abstract field within Web of Science database and Boolean operators "AND/OR" were applied to keywords. The search strings were executed on April 3rd, 2025 as TS (Topic (title + abstract + key words plus + author keywords), PY (2005-2025), DT (article, reviews), LA (English). Keywords used psychological well-being are ("Psychological Well-being" OR "Psychological Wellbeing") and for orphan ("Orphan" OR "Semi-Orphan" OR "Institutionalized Children" OR "Foster Care Homes" OR "Residential Care"). The initial search produced 11322 results which included publications from 01-01-2005 to 01-01-2025. Then PRISMA guidelines were applied for identification and screening of documents as shown in Figure 1. Then in next step refining the search and restricting the scope to research articles & reviews in the area of psychology & education published in English language. This resulted in excluding 10407 documents and leaving 915 documents for final analysis. These 915 documents were exported as BibTeX file format with full records and cited references for analysis.

2.3. Data analysis

The present bibliometric analysis study used Biblioshiny, VOS Viewer and Microsoft Excel software for analysis. Biblioshiny is web-interface of Bibliometrix package in RStudio software. Biblioshinhy provides comprehensive analytical techniques, including Data filtering, Analytics and Plots for four different level metrics: Sources, Authors, Documents and Clustering by Coupling. It also provides analysis of three structures of knowledge: Conceptual structure, Intellectual structure and Social structure. VOS Viewer is the open-source software used to create the network visualization of the bibliometric data (Arruda, et al. 2022).

3. Results

The proceeding section discusses the findings of the study. The findings are divided into three sections i.e., Overview of the results, Citation Analysis and Co-Citation Analysis. The findings are further elucidated with the help of tables, graphs, Biblioshiny and VOS Viewer outputs. To find out and comprehend the current publication trends, progress of literature, key research areas and themes emerging in psychological well-being of orphans, 915 documents published from 2005 to 2025 were analysed.

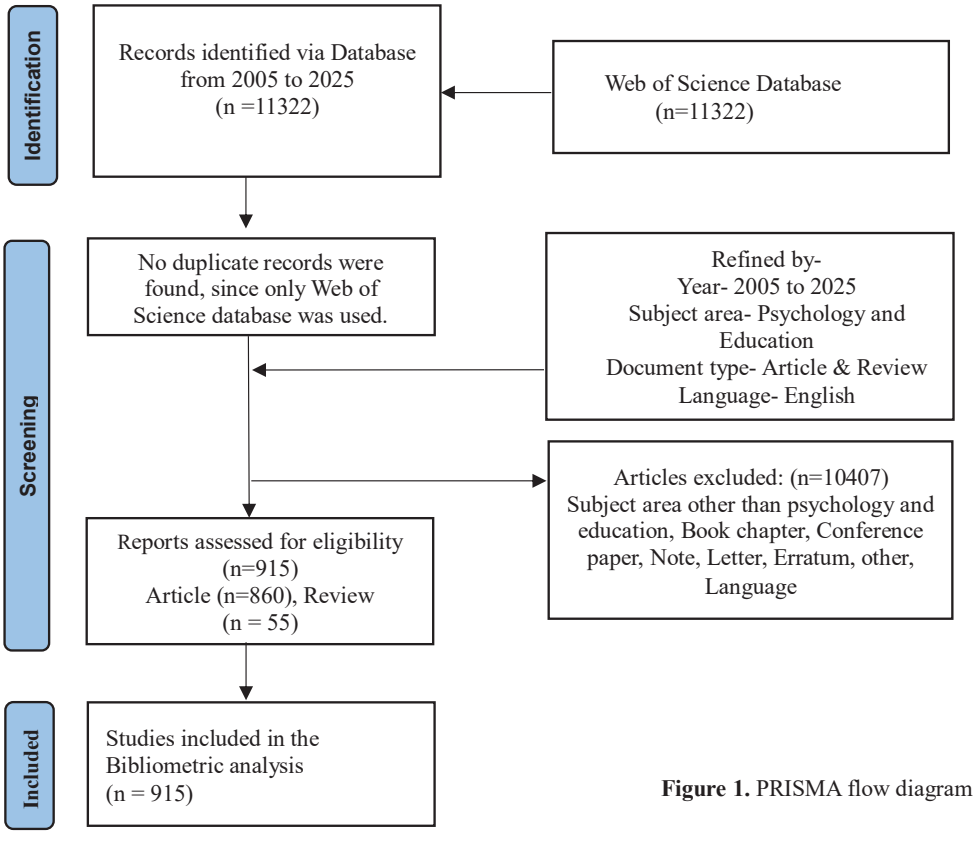


Figure 1. PRISMA flow diagram

4.1. Overview of the results

Table 1 shows the overview of the results. From the year 2005 to 2025 in the area of psychological well-being of orphans 915 (articles 860 and reviews 55) documents were published in 279 journals (as on 15th April 2025) with an annual growth rate of -0.34% and average citations per doc 20.95. There were 3302 authors who contributed in this research area.

Table 1. An overview of Web of Science results

Parameters	Results
Timespan	2005-2025 (As on
Number of Sources	279
Number of Documents	915
Type of Documents	Articles (860) and Reviews (55)
Annual Growth Rate	-0.34%
Document Average Age	7.37
Average citations per doc	20.95
Number of Authors	3302

4.2. Citation Analysis

4.2.1. Growth in the number of documents

Figure 2. depicts the number of documents published each year from 01-01-2005 to 01-01-2025. It could be seen in the figure that there is upward trend in the publication of documents from the year 2011. However, a sharp increase can be noticed after the year 2019 before a slight dip. Which is post pandemic, the rise in the interest of researchers in this field could be associated to COVID-19. The sharp decrease in the line is because only one day of year 2025 is included.

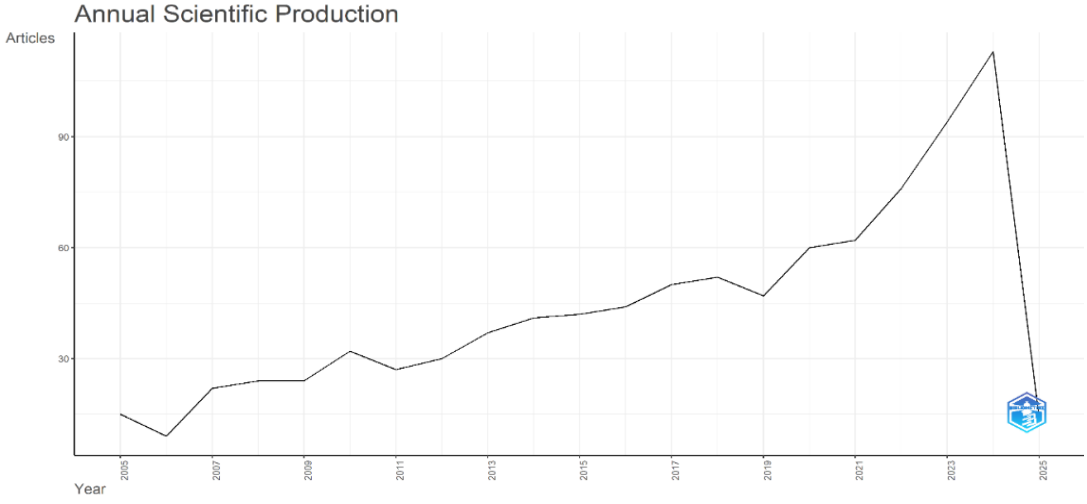
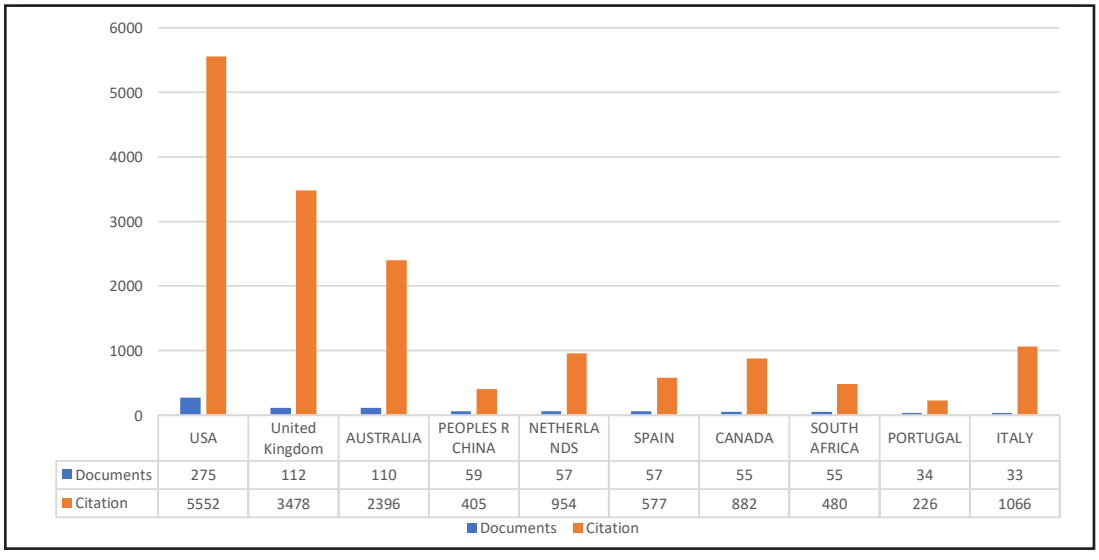


Figure 2. Number of documents year-wise (Source: Biblioshiny)

4.2.2. Country dynamics

The top ten countries who have published most in the area of psychological well-being of orphans and citations these publications have received are presented in the Figure 3. The USA leads the publications with 275 followed by United Kingdom, Australia, China, Netherlands and Spain with 112, 110, 59, 57, 57 respectively. However, looking at citations these publications have received the USA leads with 5552 followed by United Kingdom, Australia, Netherlands, Spain and China with 3478, 2396, 954, 577 and 405 respectively.



	USA	United Kingdom	AUSTRALIA	PEOPLES R CHINA	NETHERLANDS	SPAIN	CANADA	SOUTH AFRICA	PORTUGAL	ITALY
Documents	275	112	110	59	57	57	55	55	34	33
Citation	5552	3478	2396	405	954	577	882	480	226	1066

Figure 3. Countries with documents and citations received (Source: Web of Science).

When we look at these countries the countries who have most publications in this area are high-income economy countries. World Bank divides countries into four economies i.e. low-income economies, lower middle-income economies, upper middle-income economies and high-income economies based on their Gross National Income. Table 2. Shows the countries and their economies as classified by the World Bank. The top ten countries publishing in this area are high income economies except China and Soth Africa however both are upper middle-income economy. There is no low-income country among the top ten countries.

Table 2. Showing countries and type of economy (Source: World Bank)

Country	Type of Economy
USA	High income economy
United Kingdom	High income economy
Australia	High income economy
China	Upper middle-income economy
Netherlands	High income economy
Spain	High income economy
Canada	High income economy
South Africa	Upper middle-income economy
Portugal	High income economy
Italy	High income economy

Figure 4 depicts the collaboration of countries publishing in the area of psychological well-being of orphans. USA is leading the list of country collaboration. USA has collaboration with 37 countries and has published the highest number of documents 145 followed by United Kingdom collaborating with 27 countries and has published 58 documents. Then Australia has collaboration with 14 countries and published 37 documents and China by collaborating with 13 countries has published 17 documents. The highest number of publications between two countries is 13 (USA + Kenya = 13, USA + UK = 13 and USA+ South Africa = 13).

USA has the greatest number of publications, citation and collaboration which highlights that USA is paying much attention on the research in field of psychological well-being and also spending good amount on research as being the developed country.

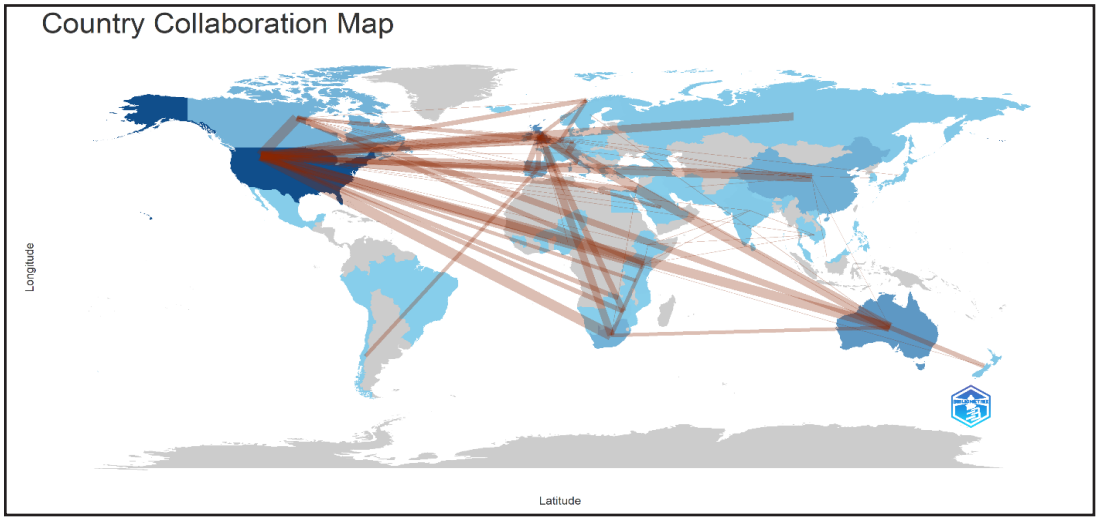


Figure 4. Mapping the collaboration of countries.

4.2.3. Word dynamics

Keywords are most important elements in academic literature as they represent the whole content. Keywords help researchers to find relevant papers. Analysis of keywords help us to comprehend the central themes and trends in a particular research field. Top ten author keywords were used with occurrences as cumulative. The increase in the use of author keywords over the time is shown in the Figure 5. An increase in the 'orphan' keyword started from the year 2007 and it kept increasing steadily till the year 2025. Another keyword which got prominence in the researches is 'residential care'. It also started being used from the year 2007 and its use was gradual till the year 2013 and from the year 2013 it showed an upward trajectory and became the most used keyword from the year 2014 till year 2025. 'Mental health' was also studied significantly from the year 2007 and it showed sharp increase after the year 2020. All other keywords showed sharp increase post 2020. Keywords which got the sharpest increase from the year 2021 are 'wellbeing' and 'psychological wellbeing'. Covid-19 also became significant focus area after the year 2020. The sudden increase in all other keywords after year 2020 can also be associated to Covid-19. It can be inferred that researchers took keen interest in the psychological wellbeing of orphan's post Covid-19.

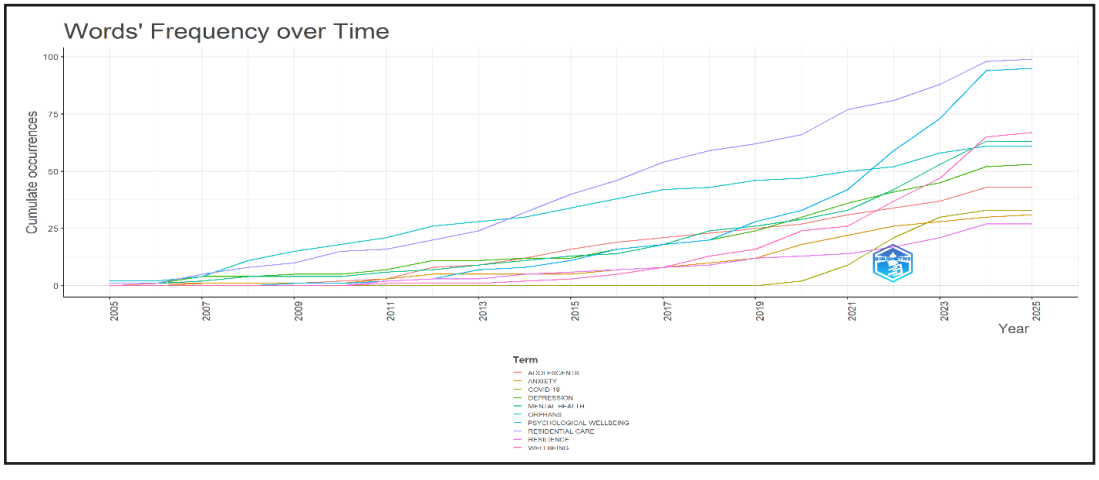


Figure 5. Word frequency over time (Source: Biblioshiny).

The same trends can be seen in the trend topics depicted in the Figure 6. Author keywords were used with word frequency set at ten and words per year at three. There is apparent change and focus on the wellbeing, psychological wellbeing, residential care and mental health post pandemic. Pandemic changed the structure of living in whole word and its impact was also seen in the researches in psychological wellbeing of orphans.

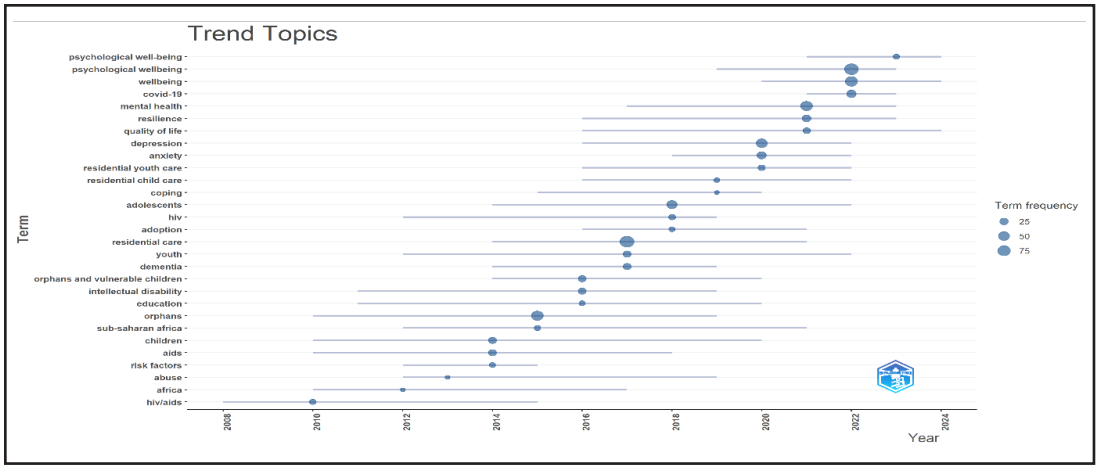


Figure 6. Trend topics over the years (Source: Biblioshiny).

4.2.4. Source Dynamics

The 915 articles in Web of Science data base were published in 279 journals. The top ten journals which are publishing in the area are shown in the Table 3 with metrics. The Frontiers in Psychology has published most 70 articles and this journal has impact factor (IF) 2.6. The second journal leading with the publications is Aids Care-Psychological and Socio-Medical Aspects of AIDS/HIV with 53 articles and IF of 1.2. among these top ten journals every journal has published articles in double figures with lowest number being 15. However, International Psychogeriatrics has the highest IF 4.6, followed by Child Abuse & Neglect with 3.4.

Table 3. Top Journals according to number of articles published with metrics.

Sources	Articles	IF
Frontiers in Psychology	70	2.6
Aids Care-Psychological and Socio-Medical Aspects of	53	1.2
Child Abuse & Neglect	36	3.4
International Psychogeriatrics	30	4.6
Child & Youth Care Forum	26	1.7
Journal Of Child and Family Studies	18	1.6
Behavioral Sciences	16	2.5
Current Psychology	16	2.5
Journal Of Adolescent Health	15	5.5
Journal Of Intellectual Disability Research	15	2.1

Further sources are visualised in Figure 7 by using Bradford's law in biblioshiny software. Bradford's law is also called Law of scattering; it illustrates how the literature on particular subject is scattered across different journals.

Analysis shows that out of 279 journals, 11 journals are in Zone 1 contributing 306

articles out of 915, 57 journals are in Zone 2 contributing 308 and 211 journals are in Zone 3 contributing 301 articles.

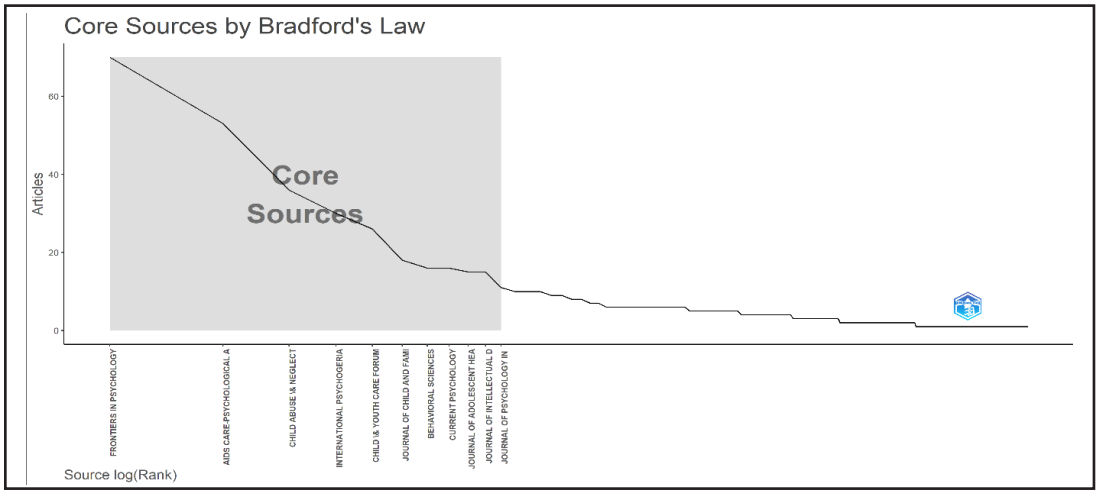


Figure 7. Core sources by Bradford's law (Source: Biblioshiny).

4.2.5. Article Dynamics

The Figure 8 depicts the most cited documents in this area of research. The most cited article is by Mandolesi et al. (2018) which got 548 citations. This paper investigates the biological and psychological positive effects of physical exercise. The paper on the second number on the list got 350 citations entitled as 'Attachment in Institutionalized and Community Children in Romania' (Zeanah et al., 2005). The paper explored the attachment in institutionalised and community children and the study found that the institutionalised children showed disturbed attachment. The paper titled 'Psychological distress amongst AIDS-orphaned children in urban South Africa' (Cluver et al., 2007) got 287 citation and stands on third number. The study examined the psychological consequences of AIDS orphanhood compared to children orphaned by other reasons and non-orphans. The results revealed that children orphaned by the AIDS were psychologically more distressed. Dawson & Moghaddam (2020) and Agteren et al. (2021) are at number four and number five with 279 and 251 citations respectively.

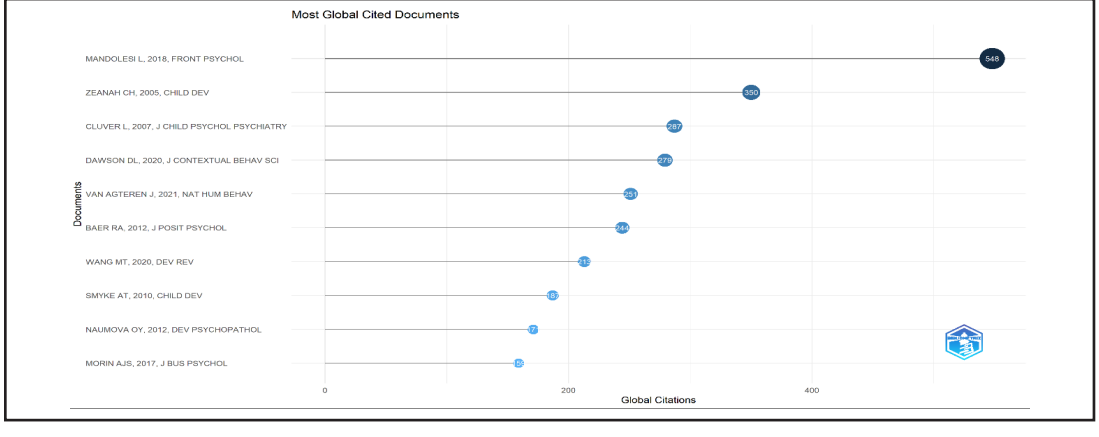


Figure 8. Most cited documents (Source: Biblioshiny).

4.2.6. Thematic Map Analysis

The thematic map analysis presents the visual representation of dominant and main themes in a field. It helps in comprehending the present status and future directions of research within a field. On the basis of author's keywords, a thematic map was plotted by using dimensions of density and centrality (see Figure 9). The dimension density, denotes degree of development of the themes. The dimension centrality, denotes the relevance of the themes. The thematic map comprises of four quadrants: (i) motor themes (high density and centrality), (ii) basic themes (low density and high centrality), (iii) niche themes (high density and low centrality), and (iv) emerging/declining themes (low density and centrality) (Wilczewski & Alon, 2022).

Themes were analysed by selecting 250 author keywords and minimum frequency for the cluster was maintained at 10 per thousand documents. The size of the circle denotes the strength of keywords in that cluster. Looking at the Figure 9, we can see that there are seven clusters in total. 'Wellbeing' being the most prominent cluster with 10 author keywords and 439 cumulative occurrences. Followed by 'Residential care' with 10 author keywords and 287 cumulative occurrences. On third number is 'Orphans' with nine author keywords and 179 cumulative occurrences.

The emerging themes (bottom left quadrant) indicates the themes which are not fully developed and are of less importance such as residential treatment, it provides opportunity for further research. The basic themes (bottom right quadrant) present the themes which have high relevance such as psychological wellbeing, wellbeing, depression, residential care, mental health and adolescents. More attention must be paid on them in future. Psychological wellbeing, wellbeing and depression has become most prominent in recent years. The niche themes (upper left quadrant) show themes which are well-developed, dense and peripheral. Keywords such as residential youth care, caregivers, dementia, residential aged care and older adults which should be given more attention. The motor themes (upper right quadrant) represent highly developed, dense and central themes. The themes in this quadrant are orphans, aids and orphans & vulnerable children. Very less themes in this quadrant signify that this area of research is new and more researches are needed in this field. This quadrant also highlights that most research has been conducted on orphans resulted due to aids and on vulnerable orphans. Which clearly shows that orphans are vulnerable and aids is contributing in increasing their number. It also shows that residential care is one alternative which is being used widely. The thematic map helps to understand the directions and opportunities for future research.

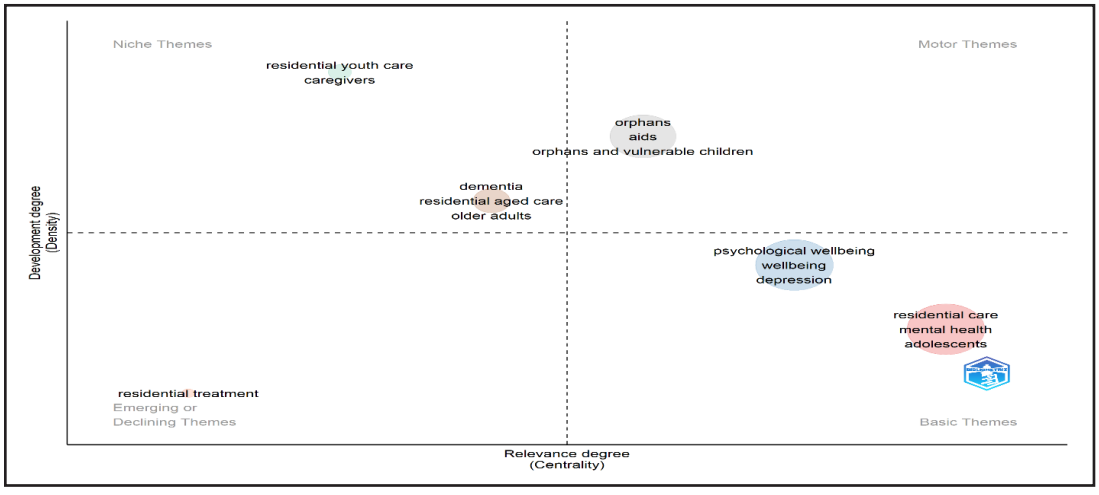


Figure 9. Thematic map (Source: Biblioshiny).

4.2.6. Three-Field Plot

The three-field plot is also known as Sankey diagram is an analysis method in biblioshiny software which visualizes the relationship between three fields of the bibliometric data. The height of the box denotes its significance and width of lines between the nodes denotes the number of connections. In present three-field plot the number of items selected was 20 for each field (see Figure 10). The most active country is USA with outgoing flow count of 18(which means 18 keywords out of 20 were used by the authors of the country). Followed by United Kingdom and Australia. The top three important keywords are 'residential care', 'wellbeing' and 'psychological wellbeing'. The results of the three-field plot are in sync with the results of Country dynamics, Word dynamics and Source dynamics.

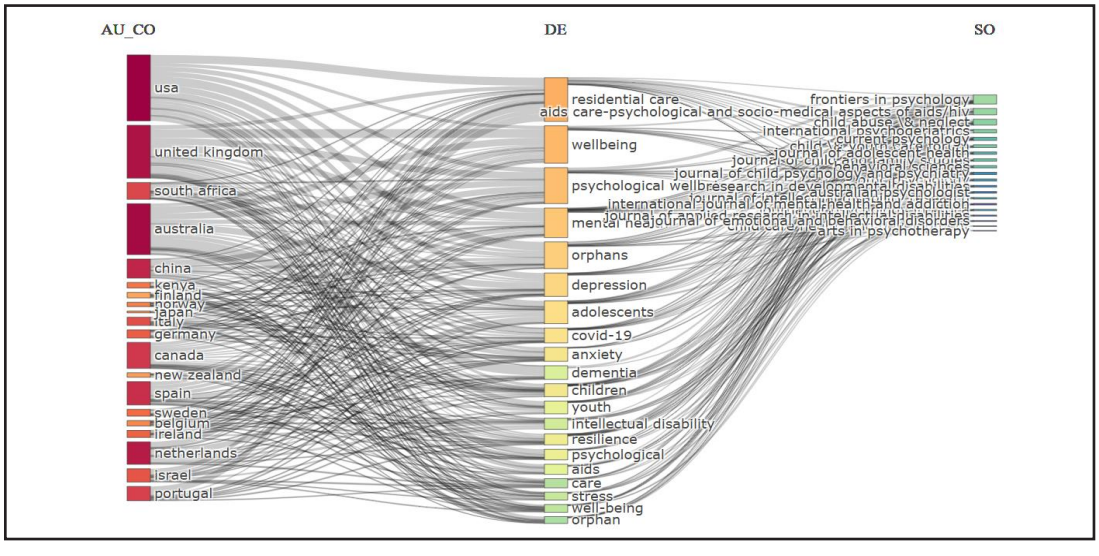


Figure 10. Three-Field Plot between Country, Author Keywords and Sources (Source: Biblioshiny).

4.3. Co-citation Analysis

4.3.1. Co-occurrence of author's keywords

Co-occurrence analysis is a network which explores the relationship and patterns between different elements of the bibliometric data. The co-occurrence analysis of the author keywords identifies the emerging trends and patterns and also identify the important topics in a particular research area (Rautela, et al. 2024). The VOS Viewer software was used for mapping this network. The nodes represent the author keywords and size of node is directly proportional to the number of times the keyword appear in the documents (see Figure 11).

For the analysis the minimum number of occurrences of a keyword was set at 6 and of the 2363 keywords 102 meet the threshold. These 102 keywords are scattered into 8 clusters with 769 links and 1283 link strength. The five most prominent keywords as per link strength were: 'Depression' with 53 links, 137 link strength and 52 occurrences. 'Mental Health' with 61 links, 121 link strength and 63 occurrences. 'Orphans' with 41 links,118 link strength and 61 occurrences. 'Psychological wellbeing' with 46 links, 97 link strength and 95 occurrences. 'Wellbeing' with 41 links, 97 link strength and 67 occurrences.

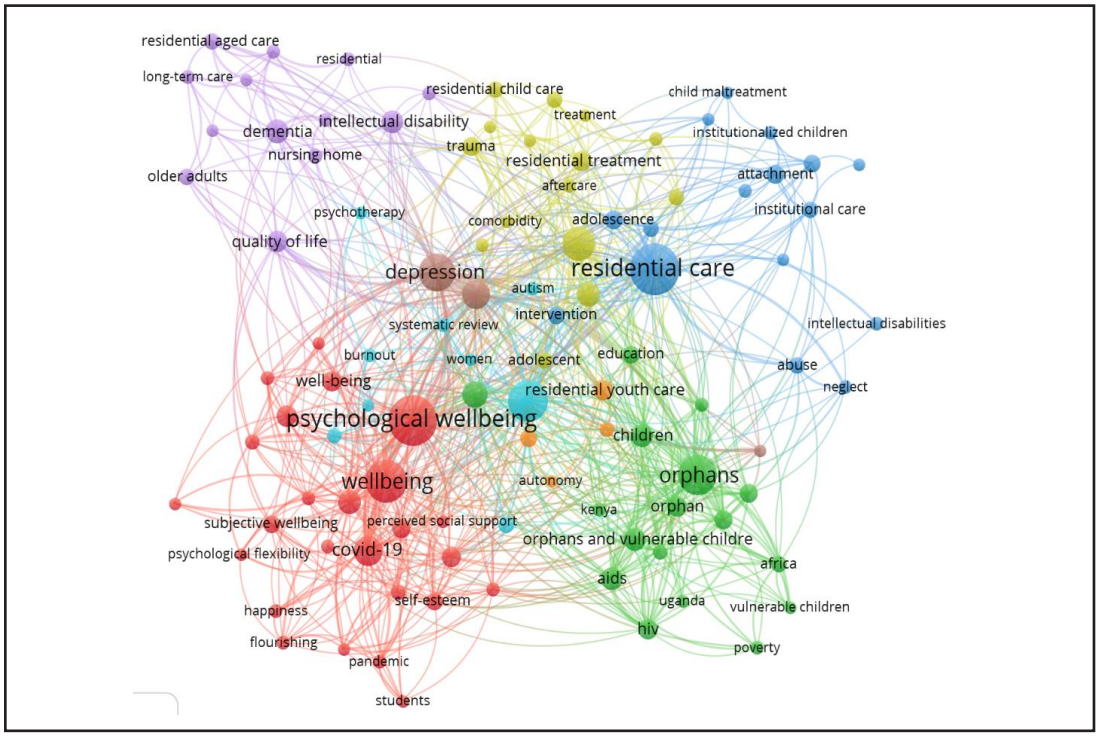


Figure 11. Mapping of keyword co-occurrence network

4.3.2. Hot Research Topics

From the analysis of the keyword co-occurrence network eight distinct clusters emerged (see figure 11) the clusters are discussed in detail.

- Cluster 1 (Red): This cluster deals with the psychological wellbeing of orphans. This is the biggest cluster with 25 keywords in this cluster. 'Psychological wellbeing' appears to be the largest node; it connects to 46 keywords followed by 'wellbeing' and 'covid-19' as largest nodes. The cluster explores the factors that contribute to the psychological wellbeing of orphans. The 25 keywords associated with this cluster include 'positive psychology', 'psychological capital', 'psychological distress', 'happiness', 'perceived social support', 'self-esteem' etc.
- Cluster 2 (Green): This cluster explore the factors related to orphans. The cluster comprises of 17 keywords. 'Orphans' being the biggest node having connection with 41 keywords. This cluster deals with the issues of orphans mainly education, resilience, vulnerability, poverty, HIV/AIDS etc. Particularly about the orphans of Africa, Kenya, Uganda and Zimbabwe.
- Cluster 3 (Blue): This cluster delves into the institutionalisation or residential care of orphans and the problems they face there. There are 16 keywords in this cluster. The largest node in this cluster is 'residential care' connecting with 43 keywords. This cluster explores in detail the residential care provided to orphans and how it impacts their psychological wellbeing. The keywords which represent the institutionalisation include 'residential care', 'institutional care', 'institutionalized children' and the problems are represented by keywords like 'child maltreatment', 'abuse', 'intellectual disabilities and 'maltreatment'.
- Cluster 4 (Yellow): The focus of this cluster is on the foster care provided to adolescents. This cluster comprises of 15 keywords and the largest node being 'adolescents' with 37 connections. This cluster highlights trauma & diseases of adolescents and care and treatment provided to them. The keywords include 'trauma', 'comorbidity', 'foster care', 'out of home care', 'residential treatment', 'residential child care', 'treatment', 'after care'.
- Cluster 5 (Purple): This cluster focuses on the psychological problems of orphans in residential care. There are 13 keywords in this cluster. The largest node being 'dementia' which is a cognitive dysfunction, this keyword has connection with the 17 other keywords. The other keywords include, 'quality of life', 'intellectual disability', 'psychotherapy'.
- Cluster 6 (Pink): This cluster deals with the mental health of the orphans. The cluster consists of nine keywords. 'Mental health' appears as the largest node in this cluster and this keyword connects with 61 other keywords which is highest among all the keywords and it connects with the keywords of every cluster. It denotes that lot of research has been carried out on the mental health as it has been widely used in the researches. The other keywords include 'autism', 'burnout', 'coping', 'mindfulness'.
- Cluster 7(Orange): The emphasis of this cluster is on the risk factors in residential care of orphans and their autonomy. This cluster comprises of four keywords and largest node appears to be 'residential youth care'. This cluster is the smallest cluster in terms of links and link strength. The keywords include 'autonomy', 'caregivers', residential youth care' and 'risk factors'.

- Cluster 8 (Brown): The last and smallest cluster (in terms of number of keywords) deals with the most important aspect of orphans which is depression. There are only three keywords in this cluster. The most prominent and largest node is 'depression' it is connected to 52 other keywords. The cluster highlights the psychological problems of orphans like depression, anxiety, post-traumatic stress.

5. Discussion and Conclusion

The present study was focused on to map the research trends and explore how the literature has progressed in the field of psychological well-being of orphans in past two decades. Highlight of this study is that bibliometric analysis was employed. To accomplish the objectives of the study, literature available from past two decades on web of science database in this domain was analysed by employing bibliometric analysis. The results revealed that the topic has become an important area of research in last decade as the publications in this area has increased in abundance. The increasing number of publications in this area underscore the prominence and relevance of this area of research.

The study analysed the 915 documents published in 279 journals from the year 2005 to 2025. Initially the studies in this area were minimal it started increasing gradually from the year 2011 and the publication in this area of research has shown sharp upward trend especially from the year 2019 onwards which could be attributed to COVID-19 as researchers took interest in the wellbeing of orphans particularly psychological well-being which shows the impact of COVID-19. Keyword analysis also endorses this as COVID-19 is frequently used keyword in studies. The findings further show that USA emerged as the leading country in the publication and citation with 275 and 5552 respectively, followed by UK and Australia with 112 and 110 publications respectively. Notably, out of top 10 countries with highest publications eight countries are high-income economies and remaining two are upper-middle-income economies. There is no lower-middle-income economies and low-income economies country among top 10 publishing countries. This highlights the concern that there is trivial focus on the psychological well-being of orphans residing in poor countries. However, SDG-3 (good health and well-being) seems to be unachievable in poor countries as negligible attention is paid on psychological well-being of orphans in these countries. This insufficient research from the low-income and lower-middle-income economies outcries the need for research in this field and especially collaboration from authors of high-income and upper-middle-income economies with authors of low-income and lower-middle-income economies in this field of research. The important journals which provided the platform for publication are: Frontiers in Psychology, Aids Care-Psychological and Socio-Medical Aspects of AIDS/HIV, Child Abuse & Neglect, International Psychogeriatrics, Child & Youth Care Forum.

The researcher further identified the key research areas and emerging trends by applying the keyword analysis. This analysis depicts the frequently used author keywords. The author keywords found by this analysis are: Depression, Mental Health, Orphans, Psychological wellbeing, wellbeing, Residential care, COVID-19, Dementia. Depression being the most used keyword highlights that orphans are dealing with depression and also have mental health issues. Interestingly COVID-19 which appeared first time in the year 2019 is also one of the frequently used keywords which reveals the impact of

COVID-19 on orphans as it isolated the people. Furthermore, the co-citation network mapping found eight clusters that represent the emerging research trends in psychological well-being of orphans. The clusters were centered around the impact psychological wellbeing on orphans in residential care and their mental health concerns. The biggest cluster has been psychological wellbeing and the second biggest cluster is orphan. This illustrates that psychological wellbeing and orphans are most emerging trends in this area of research. However, we should not forget the fact that most of the research is conducted by the developed countries. Therefore, there is dire need of focus on this research by poor countries.

6. Implication of the Study

The psychological well-being concerns of orphans are ubiquitous thus efforts and interventions are needed from both the researchers as well as from policy-makers. As SDG-3 ensures healthy lives and promote well-being for all at all ages by 2030, this study could help in identifying the areas where intervention strategies are needed by stakeholders. The study calls for more discussion and dialogue on enhancing the psychological well-being of orphans.

7. Limitation of the Study

The present study offers the insights into research conducted on psychological well-being of orphans and also presents current literature published on web of science database in past two decades. The major limitation of this stud is that only one database was used, duplication of documents is controlled by using only one database however it can lead to missing out the important studies.

8. Future Research

As only one database is used the more studies could be conducted by utilising two or more databases. The other analysis options available on Biblioshiny can be used. Future research could also be conducted by utilising other bibliometric analysis software and techniques for better understanding of this field of research.

Department of Education
Doctor Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar M.P.
[1]Y21496009.rs@dhsgsu.edu.in
[2]dksarraf@dhsgsu.edu.in

References

1. *Abejirinde, A. A., Iruo, L. A., Ivovo, J. A. & Forster, J. (2024). Assessment of the Social Impact of the Institutionalization of Orphans and Vulnerable Children in Orphanage Homes in Bayelsa Southern Nigeria. International Journal of Research in Medical Surgical Nursing, 5(3), 16-27. Retrieved May 21, 2025 from https://www.researchgate.net/publication/387218397*
2. *Akram, M., Anjum, F. & Akram, N. (2015). Role of Orphanages to Uplift the Socio-Economic Status of Orphans Focusing on SOS Children's Villages in Punjab, Pakistan. Mediterranean Journal of Social Sciences, 6(3), 177-182. https://doi.org/10.5901/mjss.2015.v6n3s2p177*
3. *Arruda, H., Silva, E. R., Lessa, M. Proença, D. & Bartholo, R. (2022). VOSviewer and Bibliometrix. Journal of the Medical Library Association. 110(3), 392–395. https://doi.org/10.5195/*

jmla.2022.1434

4. *Clarivate (2025). Web of Science Core Collection. Retrieved April 04, 2025 from https://clarivate.com/webofsciencegroup/solutions/web-of-science-core-collection/*
5. *Cluver, L., Gardner, F. & Operario, D. (2007). Psychological distress amongst AIDS-orphaned children in urban South Africa. Journal of Child Psychology and Psychiatry, 48(8), 755–763. https://doi.org/10.1111/j.1469-7610.2007.01757.xÓ*
6. *Dawson, D. L. & Moghaddam, N. G. (2020). COVID-19: Psychological flexibility, coping, mental health, and wellbeing in the UK during the pandemic. Journal of Contextual Behavioral Science, 17, 126-134. https://doi.org/10.1016/j.jcbs.2020.07.010*
7. *Dercon, S., De, W. J., & Beegle, K. (2016). The Long-Run Impact of Orphanhood. SSRN. Retrieved May 21, 2025 from https://ssrn.com/abstract=1014745*
8. *Desmond, C., Watt, K., Saha, A., Huang, J. & Lu, C. (2020). Prevalence and number of children living in institutional care: global, regional, and country estimates. The Lancent, Child and Adolescent Health. 4(5), 370-377. Retrieved May, 19, 2025 from https://www.thelancet.com/journals/lanchi/article/PIIS2352-4642(20)30022-5/fulltext?rss=yes*
9. *Donthu, N., Kumar, S., Mukherjee, D., Pandey, N. & Lim, W. M. (2021). How to conduct a bibliometric analysis: An overview and guidelines. Journal of Business Research, 133, 285-296. https://doi.org/10.1016/j.jbusres.2021.04.070*
10. *Frank, D. A., Klass, P. E., Earls, F. & Eisenberg, L. (1996). Infants and Young Children in Orphanages: One View from Pediatrics and Child Psychiatry. Pediatrics, 97(4), 569-578. https://doi.org/10.1542/peds.97.4.569*
11. *Groark, C. J., Muhamedrahimov, R. J., Palmov, O. I., Nikiforova, N. V. & McCall, R. B. (2005), Improvements in early care in Russian orphanages and their relationship to observed behaviors. Infant Ment. Health Journal., 26, 96-109. https://doi.org/10.1002/imhj.20041*
12. *Hayati, Y. U. (2022). The Role of Orphanages in The Welfare of Abandoned Children. Socio Politica, 12(1), 19-26. http://dx.doi.org/10.15575/socio-politica.v12i1.22624*
13. *Huppert, F. A. (2009). Psychological Well-being: Evidence Regarding its Causes and Consequences. Applied Psychology: Health and Well-Being, 1(2), 137-164. https://doi.org/10.1111/j.1758-0854.2009.01008.x*
14. *Agteren, J. V., Iasiello, M., Lo, L., Bartholomaeus, J., Kopsaftis, Z., Carey, M. & Kyrios, M. (2021). A systematic review and meta-analysis of psychological interventions to improve mental wellbeing. Nature Human Behaviour, 5, 631-652. https://doi.org/10.1038/s41562-021-01093-w*
15. *Madihie, A., and Noah, S. M. (2013). An application of the Sidek module development in Rebt counseling intervention module Design for Orphans. Procedia. Social and Behavioural Sciences, 84, 1481-1491. https://doi.org/10.1016/j.sbspro.2013.06.777*
16. *Mandolesi, L., Polverino, A., Montuori, S., Foti, F., Ferraioli, G., Sorrentino, P. & Sorrentino, G. (2018). Effects of Physical Exercise on Cognitive Functioning and Wellbeing: biological and Psychological Benefits. Frontiers in Psychology, 9. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2018.00509*
17. *Morantz, G., Cole, D., Vreeman, R., Ayaya, S., Ayuku, D., & Braitstein, P. (2013). Child abuse and neglect among orphaned children and youth living in extended families in sub-Saharan Africa: What have we learned from qualitative inquiry? Vulnerable Children and Youth Studies, 8(4), 338-352. https://doi.org/10.1080/17450128.2013.764476*
18. *Nyamukapa, C. A., Gregson, S., Wambe, M., Mushore, P., Lopman, B., Mupambireyi, Z., Nhongo, K. & Jukes, M. C. H. (2010). Causes and consequences of psychological distress among orphans in eastern Zimbabwe. AIDS Care, 22(8), 988-996. https://doi.org/10.1080/09540121003615061*

19. *Passas, L. (2024). Bibliometric Analysis: The Main Steps. Encyclopedia, 4(2), 1014-1025. https://doi.org/10.3390/encyclopedia4020065*

20. *Priyadarshini, D. S., and Jose T. P. (2024). Global research trends on psychological wellbeing of children in foster care homes from 2003 to 2023: a bibliometric analysis using Scopus database. Frontiers in Psychology, 1-16. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2024.1397624*

21. *Rautela, S. Sharma, A. & Panackal, N. (2024). Exploring the mental well-being of higher educational institutions students: a bibliometric analysis. Cogent Education, 11(1). https://doi.org/10.1080/2331186X.2024.2343522*

22. *Ryff, C. D. (1989). Happiness is everything, or is it? Explorations on the meaning of psychological well-being. Journal of Personality and Social Psychology, 57(6), 1069-1081. https://doi.org/10.1037/0022-3514.57.6.1069*

23. *Ryff, C. D. & Singer, D. (1996). Psychological Well-Being: Meaning, Measurement, and Implications for Psychotherapy Research. Psychother Psychosom, 65(1), 14-23. https://doi.org/10.1159/000289026*

24. *Singh, V.K., Singh, P., Karmakar, M., Leta, J. & Mayr, P. (2021). The journal coverage of Web of Science, Scopus and Dimensions: A comparative analysis. Scientometrics, 126, 5113-5142. https://doi.org/10.1007/s11192-021-03948-5*

25. *UNICEF (2024). AIDS-Related Orphanhood. Retrieved May 19, 2025 from https://data.unicef.org/topic/hivaids/orphanhood/#status*

26. *UNO (2015). Sustainable Development Goals. Retrieved May 29, 2025 from https://www.un.org/sustainabledevelopment/health/#tab-3f22056b0e91266e8b2*

27. *Wilczewski, M. & Alon, I. (2022). Language and communication in international students' adaptation: a bibliometric and content analysis review. Higher Education. 85, 1235-1256. https://doi.org/10.1007/s10734-022-00888-8*

28. *Wolff, P. H. & Fesseha, G. (1998). The Orphans of Eritrea: Are Orphanages Part of the Problem or Part of the Solution? American Journal of Psychiatry, 155(10). https://doi.org/10.1176/ajp.155.10.1319*

29. *Yosef, T., Assef, T. & Zinabie, H. (2023). Psychological impacts of orphanhood in Southwest Ethiopia. Heliyon. 9. https://doi.org/10.1016/j.heliyon.2023.e15301*

30. *Zeanah, C. H., Smyke, A. T., Koga, S. F. & Carlson, E. (2005). Attachment in Institutionalized and Community Children in Romania. Child Development, 76(5), 1015-1028. https://doi.org/10.1111/j.1467-8624.2005.00894.x*

ISSN 0974-0066

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर, मध्यप्रदेश - 470 003
दूरभाष : (07582) 297133
ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com